ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

पृथ्वीराज रासो : औत्पत्तिक संदर्भ एवं काव्यात्मक न्याय

डॉ. के.आर. महिया
सहायक आचार्य, राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर

भारतीय साहित्येतिहास में श्रृंगार एवं वीर रस के अक्षुण्ण निर्वाहक चौहान वंशीय शासक पृथ्वीराज चौहान के जीवन की सम्पूर्ण अन्विति महाकवि चन्दरबरदाई द्वारा प्रणीत 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य में देखने को मिलती है। आदिकालीन हिंदी रासो काव्य परम्परा के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' में सम्पूर्ण महाकाव्योचित लक्षण विद्यमान है। इसी आधार पर रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखा है कि—''यह हिंदी का प्रथम महाकाव्य है।[1]'' 'पृथ्वीराज रासो' के पीछे हिंदी में रासो-काव्यों की एक विशाल परंपरा है। अपभ्रंश, गुजराती, डिंगल और पिंगल भाषाओं में अनेक रास और रासो काव्यों का प्रणयन हुआ है।

रासो साहित्य में 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति पर कई विमर्श हुए हैं। कतिपय विद्वान् रासो शब्द की व्युत्पत्ति 'रास' शब्द से मानते हैं। 'रास' का एक अर्थ 'विलास' भी होता है।[2] विलास शब्द चरित इतिहास आदि के अर्थ में भी प्रचलित है। जय विलास, भीम विलास आदि ऐतिहासिक ग्रंथ है। प्राचीन गुजराती भाषा में कई राजाओं के इतिवृत्त 'रास' नाम से प्रसिद्ध है।[3]

संस्कृत की दृष्टि से 'रासो' शब्द 'रास्' धातु के साथ 'घञ्' प्रत्यय जोड़ने से बनता है, जिसका अर्थ है—कोलाहल, शोरगुल, शब्द, ध्वनि, एक प्रकार का नाच जिसका अभ्यास कृष्ण एवं गोपिकाएँ करती थीं—**उत्सृज्य रासे रसं गच्छन्तीम्**— वेणीसंहार 1/2 ।[4] यह धातु 'शब्द करने' या 'गर्जन' के अर्थ में भी आती है। इसमें उल्लास एवं उत्साह की भावना सन्निविष्ट है।

कतिपय विद्वान् वीरतापरक साहित्य का संबंध रासो से जोड़ते हैं। यह तर्क कोई अधिक पुष्ट प्रमाण नहीं है; क्योंकि कई रासो ग्रन्थ श्रृंगार प्रधान भी हैं। जैसे—संदेश रासक, बीसलदेव रासो आदि। रासो साहित्य में विविध रसों की उपस्थिति देखते हुए इन्हें स्थूलत: 'रास कथा' कहा जा सकता है। जहाँ समस्त नव रसों का महाकाव्यात्मक निबंधन होता है। पृथ्वीराज रासो के समापन पर चंदरबरदाई ने लिखा है—

रासउ असंभु नवरस सरस, छंदु चंदु किअ आमिअ सम।
श्रृंगार वीर करुण विभछ भय अद्‌भुत्तह संत सम॥

इस पद के माध्यम से महाकवि चन्दरबरदाई अपनी रचना में समस्त नवरसों की उपस्थिति का संकेत कर रहे हैं। अत: रासो ग्रन्थों का संबंध केवल वीरत्व से जोड़ना असंगत होगा। रामचन्द्र शुक्ल ने 'रासो' शब्द का उद्‌भव 'रसायण' (**नालह रसायन आरम्भई, शारदा तुठी ब्रह्मकुमारी**) शब्द से माना है।[5] गार्सा द तासी (फ्राँसिसी विद्वान्) ने अपने हिंदी साहित्य इतिहास में 'राजसूय' शब्द के बिगड़े रूप से 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति मानी है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेद्वी, चंद्रबली पाण्डेय एवं पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'रासो' शब्द का विकास संस्कृत के 'रासक' शब्द से माना है। डॉ. श्यामसुन्दरदास, कवि श्यामलदास, डॉ. काशिप्रसाद जायसवाल आदि ने 'रहस्य' शब्द से, नरोत्तम स्वामी 'रसिक' से, डॉ. गौरीशंकर हीरानंद ओझा, मोहनलाल पाण्ड्या एवं दशरथ शर्मा 'रास' से रासो शब्द की व्युत्पत्ति मानते है। इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के मतों का सम्यक्

अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि 'रासो' शब्द की उत्पत्ति राजसूय, रसायण, रसिक एवं रहस्य से न होकर संस्कृत के 'रासक' अथवा 'रास' शब्द से हुई है। रास शब्द से रासो शब्द बनने का सर्वप्रथम उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' की भूमिका में मिलता है एवं 'रासक' शब्द से 'रासो' बनने का प्रमाण अब्दुल रहमान कृत 'संदेश रासक', ग्रन्थ में मिलता है जिसमें लिखा है—''**कह बहरू विणि वरउ रासउ भासियई**'' इस पंक्ति में आया 'रासउ' शब्द 'रासक' का ही अपभ्रंश रूप है। यही 'रासउ' शब्द 'अ' तथा 'उ' की संधि को प्राप्त हो जाने पर 'रासो' बन जाता है। अत: 'रासो' शब्द की उत्पत्ति 'रासक' से ही मानना सबसे उपयुक्त है।[6]

डॉ. नामवरसिंह ने इसे मध्यकालीन भारतीय जीवन महासागर कहा है।[7] डॉ. नगेन्द्र इस ग्रन्थ को 'घटनाकोश' नाम से संबोधित करते हैं।[8] बाबू श्यामसुंदरदास एवं उदयनारायण तिवारी ने इस रचना को 'विशाल वीरकाव्य' कहा है एवं डॉ. बच्चन सिंह इसे 'राजनीति की महाकाव्यात्मक त्रासदी' कहते हैं।

इस आधार पर रासो साहित्य विशेषकर पृथ्वीराज रासो को हम महाकाव्य परंपरा की कड़ी मान सकते हैं। पृथ्वीराज रासो में महाभारत सदृश वैराट्य के दर्शन होते हैं। 69 समयों (सर्गों) की इस विशद रचना में पृथ्वीराज चौहान के जीवन का सांगोपांग वर्णन है। महाभारत जैसा ही इसका क्रमिक परिवर्धन भी हुआ है। अंतर इतना है कि महाभारत के प्रारंभिक संस्करण 'जय' एवं 'भारत' संहिता आज उपलब्ध नहीं है; परन्तु '**पृथ्वीराज रासो**' लघुत्तम, लघु, मध्यम और वृहद् रूपान्तरों में उपलब्ध है। कम-से-कम लघुतम रूपान्तर तो निर्विवाद रूप में चन्दरबरदाई की रचना है। शुक्ल जी के मतानुसार 'रासो' के पिछले भाग को जल्हण द्वारा पूर्ण किया गया। जब शहाबुद्दीन गौरी पृथ्वीराज को क़ैद करके गज़नी ले गया तब कुछ समय बाद चन्दरबरदाई भी गज़नी चले गए, जाते समय अपने पुत्र जल्हण के हाथ में रासो ग्रंथ देकर उसे पूर्ण करने का संकेत किया—''**पुस्तक जल्हण हत्थ दे चलि गज्जन नृपकाज।**''[9] इसकी ऐतिहासिकता एवं प्रामाणिकता को लेकर जो संदेह व्यक्त किया जाता रहा है वह सत्य से परे है; क्योंकि एक तो पृथ्वीराज रासो साहित्यिक रचना है। साहित्यिक रचना से शुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों के अनुकरण की प्रत्याक्षा नहीं की जा सकती। जैसा कि प्रेमचंद कहते हैं—''इतिहास में घटनाएँ एवं तिथियाँ सत्य होती; बाकी सब झूठ; जबकि साहित्य में घटनाएँ, तिथियाँ झूठ होती है; किन्तु बाकी सब सत्य होती है।'' दूसरे पुरातन प्रबंध संग्रह में मिले पृथ्वीराज रासो के चार छप्पयों के आधार पर तो यह निर्विवाद है कि यह रचना अपने मूल रूप में 12वीं शताब्दी की रचना रही होगी।[10]

जिस प्रकार 'महाभारत' की विशालता को लेकर प्रसिद्ध है कि—**यदिहास्ति तद् अन्यत्र। यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥**

उसी भाँति पृथ्वीराज रासो के रचयिता भी इसकी विराट्ता को लेकर आश्वस्त हैं। रासो में एक छंद है—

उक्ति धर्म विशालाय राजनीति एवं रस।
षट् भाषा पुराणं च, कुरानं कथितं मया॥

अर्थात् इसमें राजनीति के साथ धर्म विषयक उक्तियाँ, नवरस, छह भाषाएँ, पुराण-कुरान आदि सभी समाहित हैं।

पृथ्वीराज रासो इस अर्थ में भी हिंदी का विलक्षण महाकाव्य है कि इसका रचयिता स्वयं रासो की कथा का एक पात्र भी है। परंपरा से हमें जो दो महाकाव्य रामायण एवं महाभारत के रूप में प्राप्त हैं, उनके रचयिताओं वाल्मीकि एवं व्यास की ही भाँति चन्दरबरदाई भी पृथ्वीराज के बालसखा[11], उपासक एवं दरबारी के रूप में कथा के एक महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। अत: इस ग्रन्थ की विलक्षणता यह है कि—किसी ग्रंथ के संदर्भ में रचयिता एवं भोक्ता का जो द्वैत दिखाई देता है वह द्वैत इस रचना में पूर्णत: तिरोहित हो जाता है। इस प्रकार पृथ्वीराज रासो भी अपनी रचनाशीलता में अद्वैत के दर्शन की एक सूक्ष्म व्याख्या है।

इन महाकाव्यात्मक विशेषताओं के अतिरिक्त पृथ्वीराज रासो का महत्त्व हिंदी भाषा के विकास की दृष्टि से भी रेखांकनीय है। यदि परसर्गों के उदय को हम हिंदी की आरम्भिक पहचान मानें तो स्वयंभू एवं सरहपा आदिकवि नहीं; अपितु चन्दरबरदाई ही हिंदी के आदिकवि एवं पृथ्वीराज रासो हिंदी की आदि रचना प्रतीत होती है। डॉ. ग्रियर्सन ने पृथ्वीराज रासो का अध्ययन हिंदी भाषा के ऐतिहासिक विकास को समझने के लिए भी आवश्यक माना है।[12] 'भाषा और संवेदना दोनों ही स्तरों पर पृथ्वीराज रासो हिंदी को प्रथम स्वर देता है।

प्रस्तुत शोध आलेख में पृथ्वीराज रासो महाकाव्य का काव्यात्मक न्याय के सिद्धान्त के संदर्भ में परीक्षण किया जाना प्रस्तावित है। 'काव्यात्मक न्याय' का विचार पौराणिक कथाओं में दैवीय निर्णय की अभिव्यक्ति से लेकर प्राचीन ग्रीक एवं रोमन साहित्य में 'कर्म-न्याय' के विचार को संदर्भित करते हुए उपस्थित है। काव्य न्याय एक साहित्यिक उपकरण अथवा एक ऐसी काव्यरूढि है जो **'कर्म की मज़दूरी'** की अवधारणा पर आधारित है। यह अवधारणा कई संस्कृतियों में इतिहास एवं साहित्यिक कृतियों में विद्यमान है। वस्तुत: नाटक से महाकाव्य पर्यन्त काव्यात्मक न्याय अन्याय को एक संगत कार्य के साथ संतुलित करने की एक साहित्यिक अवधारणा के रूप में मौजूद है। काव्य न्याय का सिद्धान्त **'जो जाता है वह आता है'** के ऋत को संदर्भित करता है। यह न्याय किसी भी काव्यकृति के अंत में एक विडंबनापूर्ण मोड़ के रूप में भी ध्वनित हो सकता है। अनेक साहित्यिक रचनाएँ काव्यात्मक न्याय के उदाहरणों से युक्त हैं, जिनमें से कुछ प्रत्यक्ष है; जबकि कुछ सूक्ष्म हैं। काव्यात्मक न्याय को नैतिक सिद्धान्त के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसके अनुसार व्यक्तियों को उनके कार्यों के लिए पुरस्कृत या दंडित किया जाना चाहिए। जैसा कि भारतीय पौराणिक ग्रंथों में उल्लेख है कि—

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात्।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

अर्थात् जो मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। मनुष्य द्वारा किए गए शुभ-अशुभ कर्म का फल परिणामों को प्रभावित करता है। यह अवधारणा सदियों से चली आ रही एवं इसे सभ्य समाज के लिए आवश्यक माना गया है।

क्या काव्यात्मक न्याय एक विडंबना है? वस्तुत: काव्यात्मक न्याय की अवधारणा न्याय को कर्म की अवधारणा के संदर्भ में सिर्फ एक संयोग ही नहीं मानती वरन् यह अवधारणा इस तर्क से भी पुष्ट है कि न्याय मनुष्यों में अन्तर्निहित चारित्रिक विषमताओं से उपजी एक अनिवार्यता भी है। काव्यात्मक न्याय तब घटित होता है जब एक व्यक्ति को वही सजा मिले, जो उसने किसी अन्य को दी है। यह एक वाक्यांश है जिसका अर्थ है—**'एक उचित या योग्य परिणाम'**। यह अर्थ मानवीय रिश्तों और साहित्यिक कृति की कथावस्तु के कई पहलुओं में अभिलक्षित होना चाहिए। भाव यह है कि—मनुष्य द्वारा जैसा कर्म किया जाता है, उसका पुरस्कार अथवा दंड अवश्य ही मिलता है। यद्यपि यह न्याय नैतिक प्रतिशोध पर आधारित है तथापि काव्यात्मक न्याय के अन्तर्गत सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही दृष्टियाँ फलित होती देखी गईं हैं।

काव्यात्मक न्याय का रूप कृति-सापेक्ष होता है, जिसका उपयोग पाठकों को संतुष्ट करने के लिए किया जाता है। काव्यात्मक न्याय सामान्यत: अच्छे या बुरे कर्मों या घटनाओं के मध्य संतुलन स्थापित करने के लिए साहित्यिक कृति में उपस्थित रहकर नैतिक सीख को सुदृढ करने में सहयोग करता है। मनुष्यों के रूप में व्यक्ति सदैव अपनी कमियों को दुरुस्त करने की तलाश में रहता है एवं दंड के माध्यम से समाज में व्यवस्था बनाए रखता है।

काव्य न्याय की अवधारणा इस दृष्टान्त को व्यवहृत करती है कि—ब्रह्माण्ड कैसे संतुलित होता है! माना जाता है कि यह सिद्धांत एलेक्जैंड्रिया के कवि कैलिमेचस के विचारों से प्रेरित है, जिन्होंने प्रतिपादित किया कि—**''आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत।''**

पृथ्वीराज रासो ग्रन्थ **काव्यात्मक न्याय का एक श्रेष्ठ उदाहरण है**। इस न्याय का आधार बनता है, इस काव्य का कैमास वध। इस विशाल रचना के लगभग प्रारंभ में ही 'कैमास वध' प्रसंग निबद्ध है। काव्य सौष्ठव एवं कथा तत्त्व के विकास की दृष्टि से यह रासो का एक महत्त्वपूर्ण अंश है। यह रासो के कतिपय उन प्रसंगों में से हैं, जिनकी पुष्टि अन्य स्रोतों से भी होती है। कैमास वध का मूल प्रतिपाद्य पृथ्वीराज द्वारा अपने मंत्री कैमास का वध है। **'पृथ्वीराज रासो'** के नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण में **'समय 57, अथ कैमासवध प्रस्ताव'** के नाम से कैमासवध का प्रसंग आया है। उदयपुर से संपादित संस्करण में समय-55 **'कैमासवध'** नाम से निर्दिष्ट है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित **'पृथ्वीराज रासउ'** में समय आदि का उल्लेख न करके केवल शीर्षक ही दिए गए हैं। इसका एक शीर्षक **'कयमास वध'** नामक है।

कैमास पृथ्वीराज चौहान के एक अमात्य का नाम है। पृथ्वीराज चौहान के बहुत से शूर-सामंत थे। उदयपुर की प्रति में उनकी संख्या 9 उल्लेखित हैं। जो इस प्रकार है—कन्ह, चामुंडराय, हरिसिंह, वीरसिंह, गुरुराम, सलखानी, कनकराय, रामराय

और कैमास। इनमें कैमास पृथ्वीराज चौहान का सबसे अधिक योग्य, शूरवीर एवं विश्वासपात्र है। पृथ्वीराज चौहान के साथ कैमास ने अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं एवं जीतीं भी। फलत: कैमास योग्यता के कारण पृथ्वीराज चौहान ने उसे अपनी जगह राजकार्य सम्पादित करने हेतु नियुक्त कर रखा था एवं स्वयं संयोगिता की विरहाग्नि के शमनार्थ आखेट में व्यस्त रहता था। पृथ्वीराज चौहान ने एक बार करनाटक पर आक्रमण करके उसे परास्त किया था, वहाँ से उसे एक नर्तक एवं एक सुंदर गणिका मिली थीं। उस गणिका का नाम, करनाटक की होने के कारण 'करनाटी' रखा गया—**ले आयौ नाइक्क सथ करनाटी प्रिथिराज।**[13]

नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति में वर्णन में आया है कि— करनाटी के नाच-गान पर प्रसन्न होकर पृथ्वीराज चौहान ने करनाटी से साथ आए नाईक यानी नर्तक से उस वेश्या का मूल्य पूछा। नायक ने कहा कि मैं इसका क्या मोल बतलाऊँ! जैसा पात्र है एवं राजा जिस योग्य उसे समझें वह मोल दें। तब पृथ्वीराज ने नाइक को 10 मन स्वर्ण देकर उस वेश्या (करनाटी दासी) को अपने राजप्रासाद में रख लिया।[14]

पृथ्वीराज चौहान ने अपने प्रधान सामंत शूर कैमास को दिल्ली का राजकार्य सौंप रखा था। पृथ्वीराज चौहान की जगह कैमास ही सारे राजकार्य सम्पन्न करता था। एक दिन वह राजकार्य करता हुआ सभा में बैठा था। उस सभा स्थल के सम्मुख ही वह महल था जिसमें करनाटी नाम की दासी रहा करती थी। कवि वर्णन करता है कि—वह दैव की इच्छा थी कि कैमास काम के वशीभूत हो गया। उस समय वर्षा का आगमन हो रहा था। बादल छाए हुए थे, बिजलियाँ चमक रही थीं। करनाटी दासी भी कामाधीन होकर अपनी दूती को कैमास को बुलाने के लिए भेज देती है। उस समय ड्योढ़ी पर स्त्री सेविकाएँ नियुक्त थीं। कैमास दासी की ओट में होकर करनाटी के महल में प्रविष्ट होकर करनाटी के साथ शृंगार क्रीडा करने लगा। करनाटी के महल के पास पृथ्वीराज चौहान की बड़ी रानी 'इच्छिनी परमारनी' का महल था। उसने बिजली के प्रकाश में देखा कि करनाटी के पास कोई व्यक्ति है। रानी ने तुरंत पान की पीक से एक चिट्ठी लिखकर एक दासी को पृथ्वीराज चौहान के पास भेज दिया।

पृथ्वीराज चौहान तुरंत ही महल में आ गए। बड़ी रानी से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर पृथ्वीराज चौहान ने एक तीर कैमास पर छोड़ा; परन्तु वह तीर कैमास की छाती से होता हुआ बगल से निकल गया और निशाना चूक गया। रानी ने उसे फिर कहा और पृथ्वीराज ने दूसरा बाण संधान करके कैमास का वध कर दिया। उसे जमीन में गढ़वा दिया और रात में ही शिकार स्थल को चला गया। प्रात:काल दरबार लगाया। उसने कहा कि कैमास कहाँ है? कोई न बता पाया तो चन्दरबरदाई से पूछा कि कैमास कहाँ है?

पृथ्वीराज ने हठ की तो कवि ने कहा कि अभयदान दें तो मैं कैमास का प्रसंग वर्णन करूँ। पृथ्वीराज से वचन पाकर चन्दरबरदाई ने कहा कि हे पृथ्वी नरेश! आपने एक बाण कैमास पर छोड़ा पर वह बाण हृदय में खरभराता हुआ उसकी बगल की ओर निकल गया फिर आपने दूसरा बाण साधा और कैमास का वध कर दिया। उसे जमीन में गाड़ दिया। वह वहीं गढ़ा हुआ है और उस जगह को नहीं छोड़ रहा। भूमि ने उसे अपने कठोर गुणों से जकड़ रखा है। चन्दरबरदाई कहता है कि महाराज अब इस प्रलय से कैसे निबटोगे?

चन्दरबरदाई ने राजा को समझाया कि वह कैमास के शव को उसकी पत्नी को सौंप दे; क्योंकि अनाचार का दण्ड देना तो औचित्यपूर्ण है; परन्तु शव को गाड़ देना नीति और परंपरा-विरुद्ध है। कवि मित्र के परामर्श को मानकर पृथ्वीराज कैमास के शव को उसकी विधवा पत्नी को सौंप देता है। कैमास वध के प्रसंग में व्यक्ति की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति का चित्रण सामने आता है। व्यक्ति के अनेक भीतरी अवगुणों में काम, क्रोध और लोभ को माना गया है। गीता में तो इन तीनों को नरक का द्वार कहा गया है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।[15]

मनुष्य क्रोध में आकर अपने आपे से बाहर हो जाता है। वह उसके परिणाम की ओर ध्यान नहीं देता। दूसरे क्रोध के वश होकर शरीर का संतुलन भी गड़बड़ा जाता है। पृथ्वीराज चौहान लक्ष्यसंधानार्थ बाण चलाने के लिए जगद्विख्यात हैं। उनके लिए यह प्रसिद्ध है कि—वे शब्द भेदी बाण चलाने में सिद्धहस्त थे। अर्थात् जहाँ शब्द हो उसी जगह अचूक निशाना लगा देते थे। मुहम्मद गौरी को भी शब्द करते ही उन्होंने नेत्र ज्योति नष्ट होने की स्थिति में भी शब्द सुनकर ही बाण से मार दिया था;

परंतु यहाँ कैमास पर क्रोध की दशा में जब वे बाण चलाते हैं तो क्रोध के कारण उनकी मुट्ठी और दृष्टि डोल गई और इस कारण उनका एक बाण लक्ष्य से चूक गया, व्यर्थ गया। यह क्रोध का प्रभाव ही था।

भारिग बान चहुआन, जानि दुरि देव नाग नर।
मुट्ठि दिट्ठि रिस डुलिग, चुक्कि निक्करिग एक सर॥

क्रोध के साथ काम भी इस संदर्भ में समाया हुआ है। संयोगिता के अनुराग और संदेश से वह काम तप्त हैं। उसके बीच में क्रोध और भी स्वाभाविक है—'**कामात्क्रोधोऽभिजायते**'[16] इस पंक्ति की दृष्टि से करनाटी के और पृथ्वीराज चौहान के काम-प्रेम में कैमास का पक्ष उसको कैसे स्वीकार हो सकता था; इसलिए बिना किसी परिणाम का विचार किए वह क्रोध में आकर कैमास को मार देता है।

कैमास वध की काव्यात्मक प्रासंगिकता (काव्यगत न्याय) खुलती है—महाकाव्य के अंत में। जब पृथ्वीराज गौरी का बंदी है और अपने पतन पर ग्लानि भाव से विवेचना कर रहा है। कैमास के कामांध हो जाने के कारण पृथ्वीराज ने उसका वध किया था, पर स्वयं वह भी इस दोष से मुक्त कहाँ रह पाया! रचना के अंतिम चरण में गौरी के दरबार में नेत्रविहीन पृथ्वीराज बैठा हुआ है और चंदरबरदाई उद्‌बोधन की मुद्रा में कहता है—

किछु दिउ कयमासं किअउ अप्पनउ सु पायउ।

कैमास को जो कुछ (प्राणदंड) तूने दिया था, वह अपना किया तुझको भी मिल गया। यहाँ इस काव्य के दो खण्ड परस्पर मिल गए और रचना की मेहराब पूरी हो गई, जिस पर इतनी विशाल काव्य-कथा आधारित है। यहाँ नैतिक औचित्य जितना प्रबल है, उतना ही काव्यात्मक न्याय का औचित्य भी दृष्टिगत है। नैतिक औचित्य का एक और संतुलन कवि बनाता है देने और पाने के बीच। पिछले प्रसंग के अनुक्रम में चंद की मार्मिक उक्ति है—

दीन मान दिन पाइयइ।

दिए हुए के बराबर ही दिन में मिलता है। कई शताब्दी बाद के अँगरेज़ी कवि की पंक्ति याद आती है—

ओ लेडी! वी रिसीव बट वॉट वी गिव

भद्रे! हम महज उतना ही पाते हैं, जितना देते हैं। प्रसंगवश महाकवि चन्दरबरदाई महाकाव्य के अन्त में काव्यात्मक न्याय का प्रयोग एक ऐसी स्थिति का वर्णन करने के लिए करते हैं जो पृथ्वीराज के क्रूर एवं अन्यायपूर्ण कर्म का परिणाम है। काव्य की नियति की रचना कवि स्वयं करता है। प्रतीत होता है कि इस महाकाव्य में चन्दरबरदाई काव्यात्मक न्याय के सिद्धान्त को, जिसे कर्म-न्याय के रूप में भी जाना जाता है, को संबाधित करते हुए ऐसी स्थिति का वर्णन करता है, जहाँ ग़लत करने वाला व्यक्ति दंडित होने के दुर्भाग्य का अनुभव करे। काव्यात्मक न्याय पृथ्वीराज के जीवन में उसके कार्यों के माध्यम से सर्वांगत: दर्शित होता है। यह न्याय ऐसे समय में घटित होता है जब संबंधित व्यक्ति के पूर्वकृत कर्म द्वारा उसे उचित ठहराया जाता है, जो नैतिक प्रतिशोध के विचार पर आधारित है। इसका आशय हमेशा यह नहीं कि—काव्यात्मक न्याय घटना के तुरंत बाद ही घटित है; वरन् यह उपयुक्त समय तक विलम्बित भी हो सकता है। 'पृथ्वीराज रासो' में काव्यात्मक न्याय की अभिव्यक्ति इस अर्थ में विडंबनापूर्ण है कि घटनाएँ किसी के साथ उसी रूप में घटित होती हैं, जिसका वह पात्र है। अर्थात् वह पात्र जो अपने जीवन में किसी बिन्दु पर दु:ख या दुर्भाग्य लाने के लिए ज़िम्मेदार हैं, वह स्वयं उसका अनुभव भी करता है एवं यह अनुभव इस काव्य के माध्यम से पृथ्वीराज चौहान के जीवन में भी विलम्बित रूप से घटित होता है। वस्तुत: कैमास वध प्रसंग व्यक्ति के अन्त:करण में निहित दुर्भावों को उद्‌घाटित करने के साथ ही पाठक के लिए काव्यात्मक न्याय को संतोषजनक रूप से सिद्ध करता है। यह प्रसंग सूक्ष्मता से यह भी संसूचित करता है कि महानायक अपने स्वयं के अन्तर्विरोधों के कारण ही पराभव के शिकार होते हैं। पृथ्वीराज रासो का कैमास वध प्रसंग ग्रीक ट्रेजेडी के अनुरूप एक ऐसी रचना है जो कि महाकाव्य में काव्यात्मक औचित्य की सृष्टि करती है।

निष्कर्षत:

एक साहित्यिक कृति के रूप में काव्यात्मक न्याय के सिद्धान्त का विनिमय करते हुए 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य की

कथा यह स्थापना करती है कि समाज में नैतिक सिद्धान्तों को बनाए रखना चाहिए। कथावस्तु को तर्क के साथ-साथ नैतिकता के नियमों का पालन भी करना चाहिए। पाठक को सही नैतिक व्यवहार का निर्देश प्रदान करना ही किसी काव्यकृति का वास्तविक लक्ष्य होता है; क्योंकि यहाँ काव्यात्मक न्याय को 'परिणाम की उपयुक्ता एवं समरूपता की भावना' से परिभाषित किया गया है एवं 'दोष' को दण्डित किया गया है। साहित्य के माध्यम से काव्यात्मक न्याय को अनुभूत करना सदैव संतोषजनक होता है, जिसमें चन्दरबरदाई पूर्णत: सफल रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. **आ. रामचन्द्र शुक्ल**, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 22
2. **शब्दकल्पद्रुम** - 4 खण्ड, पृ. सं. 159
3. **गौरीचंद हीराचंद ओझा**, सिरोही का इतिहास, पृ. सं. 110
4. **वामन शिवराम आप्टे**, संस्कृत-हिंदी कोश, पृ. सं. 856
5. **आ. रामचन्द्र शुक्ल**, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 19
6. **पृथ्वीराज रासो—पद्मावती समय**, लेखक : डॉ. हरिहरनाथ टण्डन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा पृ. सं. 20
7. **नामवरसिंह**, पृथ्वीराज रासो की भाषा, पृ. सं. 340
8. **डॉ. नगेन्द्र**, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 74
9. **आ. रामचन्द्र शुक्ल**, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 22
10. एक बान पुहवी नरेस कयमास मुक्कउ। उर उप्परि थरहरिउ वीन कष्षरतर चुक्कउ। बीउ बान संधान हनउ सोमेसुर नंदन। गाडउ कर निग्गाहउ षनिव पोदउ संमरिधनि॥
11. **शम्भुनाथ** (प्रधान सम्पादक), हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, पृ. सं. 2187
12. माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दूस्तान, जे. एस. बी. भाग 1
13. पृ. 869, उदयपुर प्रति।
14. मन सारधं हेम अप्पवेत तासं। ग्रिहं रष्षियं अप्प पात्रं सुभासं॥ विसज्जे मिहल्लं करे अप्प उडे। कला काम क्रत्यं निसा पात्र तुट्टे॥
15. गीताप्रेस गोरखपुर, **श्रीमद्भगवद्गीता**, अध्याय 16, श्लोक 21, पृ. सं. 387
16. गीताप्रेस गोरखपुर, **श्रीमद्भगवद्गीता**, अध्याय 02, श्लोक 62, पृ. सं. 76

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

भक्ति : भाव दशा या स्वायत दर्शन ?

डॉ. राजेश पासवान
एसोसिएट प्रोफेसर, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य का भक्ति काव्य अपने वैशिष्ट्य एवं व्यापक अर्थसम्भावनाओं की वजह से आज भी वैचारिक विमर्श का केन्द्र बना हुआ है। यह प्रश्न कि 'भक्ति केवल भावदशा है या स्वायत दर्शन ?–उसी विमर्श की एक कड़ी है। भक्ति की 'भावदशा' के रूप में शुक्ल जी की मान्यता एवं स्वायत्त दर्शन के रूप में आचार्य आर.डी. रानाडे की मान्यता के केन्द्र में भक्ति काव्य ही रहा है। यद्यपि इन दोनों स्थापनाओं के अन्तर्विरोध भी है। शुक्ल जी का सारा जोर निर्गुण भक्ति को अभारतीय एवं सगुण भक्ति को भारतीय सिद्ध करने में लगा है। आचार्य रानाडे भी दोनों भक्तियों–सगुण एवं निर्गुण–की प्रदत्त दार्शनिक अवधारणाओं से स्वायत्तता सिद्ध करते हैं। मुझे ऐसा लगता है न तो निर्गुण भक्ति अभारतीय है और न सगुण भक्ति स्वयात्त दर्शन। जबकि निर्गुणियाँ संतों की भक्ति, भक्ति सिद्धान्त की अपनी स्वायत्तता के बीच भी आत्मनिर्भर है। उससे कुछ अलग हटकर है।

भक्ति की स्वायत्तता पर विचार करने से पहले भारतीय दर्शन परम्परा पर भी एक नजर डाल लेना अपेक्षित होगा। भारतीय दर्शन परम्परा में आरम्भ से ही दो तरह की चिंतन पद्धतियाँ चली आ रही हैं। एक वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रन्थों की आदर्शवादी पद्धति है तो दूसरी बौद्ध, जैन, चार्वाक, लोकायन आलवार आदि मतावलंबियों की भौतिकवादी चिंतन पद्धति। आदर्शवादी चिंतन परम्परा में जहाँ शास्त्रीयता का बोझ अधिक है, वही भौतिकवादी चिंतन में लौकिक व्यापारों को अधिक महत्व दिया गया है। इन दोनों चिंतन परम्पराओं में निरन्तर संघर्ष भी होता चला आया है। यह बात दूसरी है भौतिकवादी विचारधारा समय–समय पर प्रतिकूल परिस्थिति के कारण भारतीय चिन्तन प्रणाली की प्रधान एवं अभिन्न अंग नहीं बन सकी है।

दर्शन का प्रेरक आधार हमेशा युग विशेष का समग्र परिवेश हुआ करता है। जिस युग का सामाजिक ढाँचा जैसा होता है, उसी के अनुरूप परिवर्तनों के, प्रतिबिम्बों के आकार में मानव मस्तिष्क दार्शनिक अवधारणाओं के निर्माण में प्रवृत्त होना आरम्भ कर देता है। भारतीय दर्शन परम्परा में ज्ञान एवं कर्म के बरक्स भक्ति के महत्व को स्वीकार करने के पीछे यही प्रक्रिया घटित हो रही थी। हम देखते हैं कि छठी या पाँचवीं शती ईसापूर्व में ही वैदिक परम्परा के विरोध में समाज का एक बड़ा भाग उठ खड़ा हुआ था। बौद्ध एवं जैन धर्म के अनुयायियों ने वैदिक धर्म एवं उसकी मान्यताओं पर कुठाराघात करना शुरू कर दिया था। यज्ञों की सार्थकता एवं पशुबलि के विरोध में स्वर उठने लगे थे। बाद की कुछ विदेशी संस्कृतियों ने भी इस स्वर में अपना स्वर मिलाना शुरू कर दिया। इस तरह वैदिक संस्कृति के विरुद्ध उठ रहे विभिन्न स्वरों ने यह स्थिति पैदा कर दी कि कर्म एवं ज्ञान के बनिस्पत भक्ति का महत्व स्थापित हो सके। भागवत, शांडिल्य एवं नारद के भक्तिसूत्रों में जो भक्ति की महत्ता स्थापित है वह सब वेद–शास्त्र विरोधी स्वरों के दबाव से ही सम्भव हो सका है। यह अकारण नहीं है कि विष्णु पुराण (दूसरी शती) में कलियुग में यज्ञ करने के बजाय नामकरण के महत्व को बतलाया गया है। भागवत में आलनार संतों का उल्लेख सम्मानपूर्वक किया गया है। शांडिल्य एवं नारद के भक्ति सूत्रों पर उन पाँचरात्रों का प्रभाव है जिसको कर्मकाण्डी वैदिक वेद विरोधी मानते रहे हैं।

'भक्ति का विकास' शीर्षक निबन्ध में आचार्य शुक्ल भक्ति को एक भावदशा के रूप में मानते हैं। उनका यह आशय

है कि भक्ति आर्य धर्म के अन्तर्गत कर्म और ज्ञान से समन्वित भावयोग है। वह कोई स्वायत्त धर्म, दर्शन या संवेदना नहीं है। इस स्थापना के लिए शुक्ल जी यह तर्क देते हैं कि ज्ञान प्रसार के भीतर ही भक्ति होती है। जहाँ तक हम ईश्वर को जान पाते हैं, वहीं तक उसकी भक्ति कर सकते हैं। (सूरदास पृ. 16) उदाहरण के रूप में शुक्ल जी कहते हैं कि उपनिषदों ने ब्रह्म के व्यापक स्वरूप का ज्ञान कराकर तब उपासना का मार्ग खोला है। शुक्ल जी की इस मान्यता की सीमा यह है कि उनके यहाँ 'ज्ञान' एक खास तरह शास्त्रीय ज्ञान के अर्थ में ही प्रयुक्त है। ज्ञान मीमांसा सम्बन्धी उनकी समझ वैदिक एवं पौराणिक ग्रंथों से ही निर्धारित, संचारित है। यह भारतीय दर्शन परम्परा की वही आदर्शवादी विचारधारा है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। इस विचारधारा से अलग भौतिकवादी विचारधारा या वेद-विरोधी विचारधारा का शुक्ल जी के मानस में कहीं स्थान नहीं है। शुक्ल जी अपने मनोनुकूल मान्यताओं की पुष्टि के लिए वेद, उपनिषद, गीता के साथ-साथ विदेशी पुस्तकों से भी तथ्य ढूँढ लाते हैं। लेकिन यहाँ के भौतिकवादी दर्शनों एवं शांडिल्य, नारद के भक्ति सूत्रों को नजर अंदाज कर देते हैं। इसकी वजह शायद यही है कि इन सूत्रों में भक्ति की महत्ता, लोक वेद आदि का त्याग जैसी बातें कहीं गई हैं जो शुक्ल जी के 'लोकधर्म' के साँचे में फिट नहीं बैठती। शुक्ल जी यदि इन सब पर निष्पक्ष रूप से विचार किए होते तो स्थापना, कुछ दूसरी होती।

शुक्ल जी का मानना है कि भक्त अपने ध्यान या भाव की मग्नता में भगवान के सम्बन्ध में किसी नई बात का उसके किसी ऐसे स्वरूप का जिसका निरूपण कहीं न हुआ हो, उद्‌घाटन नहीं करता। (सूरदास, पृ. 18) शुक्ल जी की इस मान्यता के साथ ही भक्ति को स्वायत्त मानने वाली आचार्य रानाडे की स्थापना को भी देख लेना उचित होगा। आचार्य रानाडे के अनुसार, ''मध्यकालीन रहस्यवाद किन्हीं प्रदत्त दार्शनिक अवधारणाओं पर नहीं टिका है। यह आत्मनिर्भर है।'' यहाँ दार्शनिक अवधारणाओं से रानाडे का अभिप्राय ब्रह्म के उन्हीं निरूपणों से हैं जिन्हें भजन-कीर्तन के द्वारा भावगम्य बनान ही भक्ति काव्य का स्वाभाविक धर्म माना गया है। रानाडे अपनी इस स्थापना में भक्ति की दोनों पद्धतियों-निर्गुण एवं सगुण को शामिल करते हैं। शुक्ल जी की मान्यता जहाँ निर्गुण भक्ति के सन्दर्भ में जरूरत है; वहीं रानाडे की मान्यता सगुण के संदर्भ में। निर्गुण भक्त अपनी 'भावमग्नता' में भगवान के सम्बन्ध में नई बात का उद्‌घाटन करते हैं। जिसका उल्लेख आगे होगा। जबकि 'नानापुराणनिमगागमसम्मत' वाले तुलसीदास की सगुण भक्ति में यह सम्भावना है कि वह भगवान के सम्बन्ध में किसी नई बात का उद्‌घाटन नहीं करे। शायद इसीलिए तुलसीदास एक श्रेष्ठ अनुवादक के रूप में विख्यात हैं। वे इस करुणा के सहारे पुराणों, स्मृतियों, आदि की मान्यताओं को लोक भाषा के माध्यम से लोकमत में प्रतिष्ठित करते हैं एवं वैदिक-पौराणिक परम्परा एवं लोकमत में अपनी जगह सुनिश्चित करते हैं।

भक्ति की स्वायत्तता के सम्बन्ध में आचार्य रानाडे की स्थापना निर्गुण भक्ति के सन्दर्भ में ही सही है। वह भी उन अभिप्रायों से अलग हटकर है जो रानाडे 'दार्शनिक अवधारणाओं के सम्बन्ध में लगाते हैं। निर्गुण भक्ति ब्रह्म के निरूपणों को भजन-कीर्तन द्वारा भावगम्य नहीं बनाती बल्कि 'रहनी' के द्वारा उनको प्राप्त करने का प्रयास करती है। साथ ही निर्गुण संतों की भक्ति की संवेदना में भक्ति साधना पद्धति के प्रस्थान ग्रंथों (नारद एवं शांडिल्य के भक्तिसूत्र) से भी अलग है। नारद भक्ति सूत्र में एक सवाल है कि माया से कौन तरता है? इसके जवाब में सूत्र 47 से 49 में कहा गया है कि जो निर्जन स्थान में वास करता है, जो लौकिक बन्धनों को काट डालता है, जो तीनों गुणों से परे हो जाता है, जो योग क्षेत्र का परित्याग कर देता है। जो वेदों को भी त्याग देता है तथा भगवान के प्रति अखण्ड प्रेम प्राप्त कर लेता है। इसके बनिस्पत निर्गुण संतों के यहाँ वैदिक-पौराणिक परम्परा को त्यागने की बात है लेकिन लोक की उपेक्षा एकान्तवास की इच्छा नहीं है। निर्गुण संत संन्यास के बजाय ग्राहस्थय धर्म को अपनाते हैं। उसके महत्व को दिखलाते हैं। लौकिक क्रिया-कलापों में रहकर ही अपने अभीष्ट की प्राप्त चाहते हैं।

शांडिल्य के भक्तिसूत्र के अनुसार अवतार का मुख्य कारण भक्तों के प्रति भगवत्त कृपा है। जबकि निर्गुण संतों अवतारों का ही विरोध करते हैं। शांडिल्य के भक्ति सूत्र में भक्ति साधना के लिए विधि एवं निषेधों का उपदेश है। ये है-ईश्वर के प्रति सम्मान का भाव, भगवत्त सदृश नाम एवं रूप के प्रति समादर, संत और भगवान के प्रति सर्वात्म स्वरूप का बोध। नारद भक्ति सूत्र में भी लगभग यही विधिमूलक कार्य है। इन सूत्रों में कबीर भी प्रश्न करते की, तर्क करने की, जिज्ञासा की जो मुख्य प्रवृत्ति है, उसका कहीं स्पर्श नहीं है। ये सूत्र भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण की बात करते हैं। जबकि कबीर आदि संत भगवान से भी प्रश्न करते हैं। भगवान की अवधारणा को अपने शर्तों पर जाँचते-परखते हैं। कबीर दास जब कहते हैं कि, ''चलन-चलन सब लोग कहत हैं/ना जाने बैकुण्ठ कहा है-तब बैकुण्ठ के अस्तित्व पर ही प्रश्न करते हैं। वे जब कहते हैं कि 'हरि मरिहैं तब हमहू मरिहें' तब यही घोषित करते हैं कि उनके अस्तित्व के साथ ही भगवान का भी अस्तित्व बँधा हुआ है। भक्त और भगवान एक दूसरे से पृथक् नहीं बल्कि अभिन्न हैं। यह चेतना दोनों भक्ति सूत्रों में नहीं है।

यह सही है कि नारद भक्ति सूत्र ने वेद की जगह स्वयं भक्ति को प्रमाण मानकर एक क्रान्तिकारी कार्य किया है लेकिन इस प्रमाण की मुख्य संवेदना भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण की ही है। भगवान के प्रति अनन्य प्रेम हो जाने की है। कबीर आदि संतों की मुख्य चिन्ता यह है कि जो भक्ति या अनन्य प्रेम ईश्वर के प्रति निवेदित है वह सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन में क्यों नहीं है? कबीर पारमार्थिक सत्य एवं व्यावहारिक सत्य दोनों की एकता के हिमायती हैं। वे आत्मा की माँग और जीवन की वास्तविकताओं के बीच की दरार को पाटना चाहते हैं; इसीलिए आध्यात्मिक क्षेत्र की समानता और एकता की भावना को मनुष्यों के बीच सामाजिक समानता और एकता के रूप में चरितार्थ करते हैं।

निर्गुण संतों ने जिस प्रखरता के साथ वर्णाश्रमवादी समाज-व्यवस्था की आलोचना की है; उसकी जड़ मान्यताओं पर प्रहार किया है; उस तरह की आलोचना भारतीय चिन्तन परम्परा में शायद ही किसी ने की है। बौद्ध एवं जैन दर्शनों ने भी वर्ण-व्यवस्था पर प्रत्यक्ष प्रहार नहीं किया है। वे उसके विरोधी अवश्य थे। सिद्धों एवं नाथों ने भी इसकी आलोचना की है; लेकिन कबीर जैसी नहीं। सिद्ध-नाथों की आलोचना ध्वसांत्मक है; सर्जनात्मक नहीं। जबकि कबीर की आलोचना सर्जनात्मक है। उसमें केवल वर्णाश्रम से असहमति या विरोध नहीं है। बल्कि इससे आगे बढ़कर समाज में मनुष्यत्व की भावना को विकसित करने एवं मानुष सत्य को प्रतिष्ठित करने का लक्ष्य भी है।

भारतीय दर्शन परम्परा में हर विचारधारा किसी न किसी प्रमाण को लेकर चली है। वैदिक परम्परा में वेदों को अन्तिम प्रमाण माना गया है। चैतन्य स्वामी ने भी राय रामानन्द के साथ विमर्श में अपनी मान्यताओं की पुष्टि के लिए 'गीतगोविन्द' को प्रमाण माना है। नारद एवं शांडिल्य के भक्ति सूत्रों में भक्ति को स्वयं प्रमाण माना गया है। लेकिन निर्गुण भक्ति में इन सबसे अलग हटकर प्रमाण की अवधारणा मान्य है। निर्गुण संत शास्त्रीय प्रमाण या शब्द प्रमाण के बजाय लोक के व्यापक अनुभव को प्रमाण मानते हैं। वे जीवन के अनुभव और उस अनुभव से पाए सत्य को शास्त्र और उसके सत्य से अधिक प्रामाणिक मानते हैं। इसलिए कबीर कहते हैं कि तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखिन देखी। निर्गुण संतों की यह लोकानुभवों के सहारे शास्त्र को समझने, परखने की अवधारणा उन्हें भारतीय दर्शन परम्परा में विशिष्ट बनाती है।

यह निर्विवाद है कि भक्ति आन्दोलन केवल धार्मिक आन्दोलन नहीं था, बल्कि एक अखिल भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन भी था। निर्गुण भक्ति को इस आन्दोलन की सामाजिक एवं सांस्कृतिक भविष्य दिखलाने में महत्वपूर्ण भूमिका है एवं भक्ति को ही यह श्रेय जाता है कि उसने सदियों से हाशिए पर स्थित लोगों की पीड़ा को मुखर स्वर दिया है। इसलिए उसकी काव्य संवेदना में केवल काव्य-सौन्दर्य ही नहीं है बल्कि व्यक्तित्व के उदय की भी चेतना है। सम्भवत: भारतीय चिन्तन के इतिहास में हम पहली बार 'व्यक्ति' के विकास की सम्भावनाओं की कसमसाहट निर्गुण भक्ति में देखते हैं। इन स्थितियों को नजरअन्दाज करके भक्ति की केवल भावदशा ही मान लिया जाय तो फिर भक्ति आन्दोलन की व्याख्या सिर्फ धार्मिक आन्दोलन तक ही सिमट कर रह जाएगी।

अन्त में हम कह सकते हैं कि निर्गुण भक्ति, भक्ति की अपनी परम्परा के बीच भी स्वायत्त है। ब्रह्म, प्रमाण, जगत आदि भी इसकी समझ अन्य चिन्तन पद्धतियों से अलग है। ये प्रवृत्तियाँ निर्गुण भक्ति को केवल भावदशा नहीं, बल्कि एक स्वायत्त दर्शन का रूप देती है।

सहायक पुस्तकें

1. सूरदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. भक्ति तत्व : सं. कल्याणमल लोढ़ा
3. भारत का इतिहास : रोमिला थापर
4. मध्यकालीन धर्म साधना : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. समास-1 से संकलित डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल का लेख-शास्त्र और काव्य का मुखामुखम
6. हिन्दी साहित्य की भूमिका : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
7. भक्ति आन्दोलन एवं सूरदास का काव्य : प्रो. मैनेजर पाण्डेय

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

ईसाई इतिहास दर्शन : एक रूपरेखा

डॉ. अमित कुमार रैंकवार
सहायक आचार्य, इतिहास, एम.एस.जे. राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)

इतिहास की कोई एक सर्वस्वीकृत अवधारणा नहीं है। इसका कारण इतिहास-बोध का संस्कृति-सापेक्ष होना है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में इतिहास की भिन्न-भिन्न अवधारणायें मिलती हैं। किन्तु प्राचीन सभ्यताओं - मिस्री, मेसोपोटामियाई, चीनी, भारतीय, यूनानी आदि - में जिस प्रकार का इतिहास-बोध और उस पर आधारित इतिहास-लेखन हमें मिलता है उसे आधुनिक मनीषा आख्यान, पुराण, लेजेण्ड आदि कहती है, इतिहास नहीं। इतिहास विषयक ईसाई दृष्टि इतिहास लेखन की स्वयं में एक विशिष्ट दृष्टि है, जिसके मूल में यह विचार सन्निविष्ट है कि ऐतिहासिक प्रक्रिया की अपनी निजी प्रवृत्ति है जो इसमें भाग लेने वाले व्यक्तियों से स्वतंत्र है, अर्थात् यह लौकिक जगत ईश्वर की लीला है। आध्यात्मिक जीवन में ज्यादा ही आस्था रखने वाले प्राचीनतम ईसाइयों के पास इस दुनिया के इतिहास के लिए जगह कम ही थी, लेकिन इस स्थिति पर कायम रहना मुश्किल था। इतिहास के प्रति अपनी सारी उदासीनता के बावजूद आरम्भिक ईसाई चर्च को उसकी जरूरत थी।[1] यूनानी दर्शन ने जगत के ऐहिक रूप को उसका स्वरूप मानकर उसे कभी ऐसा महत्त्व नहीं दिया कि वह इसमें घटित घटनाओं को स्वतंत्र विचार का विषय बनाता। उसने या तो इसे स्थितिहीन, स्वरूप-विहीन प्रवाह के रूप में देखा (हेराक्लाइटस) अथवा लोकोत्तर सत्ताओं का असम्यक् छायाभास (प्लेटो) अथवा असत्-प्रतीति (जेनो)। इसलिये यूनान ने कभी मानवीय जीवन क्रम को दार्शनिक विचार के विषय के रूप में नहीं देखा।

यहूदी-ईसाई परम्परा में इतिहास की स्थिति यूनानी परम्परा की स्थिति के सर्वथा विपरीत है।[2] यूनान में प्रथम इतिहास-लेखक हेरोडोटस माना जाता है जो ई.पू. छठी-पाँचवीं शताब्दी में हुआ। किन्तु इसका घटना-वर्णन 'इतिहास' के रूप में अभिहित किये जाने योग्य नहीं माना जाता, क्योंकि उसके विवरण में घटनाओं का न कोई व्यवस्थापक तत्त्व देखा गया है और न ही उनके (घटनाओं) के उस प्रकार घटित होने, जिस प्रकार वे घटित हुईं, के कारणों को देखने का प्रयत्न किया गया है और न उनमें भविष्य विषयक किसी दिशानिर्देश के संकेत देखने का प्रयत्न दिखायी देता है। हेरोडोटस के बाद पाँचवीं शती ई.पू. में थ्यूसीडिडीज़ ने 'पेलोपोनेशिया युद्ध का इतिहास' लिखा। इसमें उसने इस युद्ध के घटित होने के कारणों की गवेषणा का प्रयत्न किया है और इस प्रकार 'पेलोपोनेशिया युद्ध का इतिहास' असम्बद्ध घटनाओं का क्रम मात्र नहीं होकर एक अन्तर्नियोजित घटना-व्यवस्था हो जाता है। इसलिए 'पेलोपोनेशिया युद्ध का इतिहास' को ही उपयुक्त रूप से यूनानियों की प्रथम इतिहास-कृति माना जाता है। थ्यूसीडिडीज़ की इतिहास के सम्बन्ध में मान्यता थी कि इसमें एक प्रकार की आवर्त्तनात्मकता रहती है, घटनाएं एक वृत्त बनाती हैं और ये वृत्त या चक्र बार-बार आवर्तित होते हैं। इस कारण हम अतीत के घटना-वृत्तों के कारणों को जानकर भावी वृत्तों को घटित होने से रोक सकते हैं अथवा उन वृत्तों के रूप बदल सकते हैं।

''कारणों की खोज और मीमांसा'' के इस सिद्धान्त ने हेसिओड के लेखन में ''सभ्यताओं के जीवन-क्रम'' के सिद्धान्त का रूप लिया जिसके अनुसार समाज, सभ्यताओं की उत्पत्ति, उत्कर्ष और क्षय के रूप में एक जीवन-यापन करते हैं एवं समाप्त

हो जाते हैं और तब नयी सभ्यताएं इसी प्रकार उत्पन्न होतीं, उत्कर्ष-लाभ करतीं और क्षय-ग्रस्त हो जातीं हैं।[3] इसे ''समाज में सभ्यताओं के युग-चक्र'' का सिद्धान्त कहा जाता है। ''इतिहास की आर्वत्तनात्मकता'' के इस सिद्धान्त का बीजारोपण कुछ भिन्न रूप में संत अगस्तीन ने पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में किया।[4]

यूनानी विचारधारा के विपरीत, ईसाई धर्म संसार को सत्य की छाया नहीं देखकर ईश्वर की रचना मानता है और इसलिये इसके घटनाक्रम को सत्य के रूप में देखता है। ईसाई धर्म की एक प्रमुख मान्यता है कि ईश्वर अपनी सृष्टि में स्वयं को प्रकाशित करता है एवं मनुष्य इसी संसार में उस परम तत्त्व की प्राप्ति करता है। ये धार्मिक मान्यतायें ईसाइयों को यहूदी परम्परा से प्राप्त हुईं। यह परम्परा ही ईसाई धर्म की स्रोत है। ईसाई धर्म केवल ईश्वर को नित्य सत्ता मानता है। लौकिक जगत, मनुष्य, समाज, राज्य आदि को नश्वर एवं ईश्वर-रचित मानता है। ईश्वर अपनी रचना के स्वभाव को नई दिशा दे सकता है और नवीन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उसे बदल सकता है। इस प्रकार व्यक्तियों और समाजों का आध्यात्मिक या भौतिक उत्थान-पतन ईश्वर की योजनाओं का निदर्शन होता है।

ईसाई धर्म के प्रचार में सन्त पाल का विशेष हाथ था। इनका ईसाई इतिहास-दर्शन के प्रतिपादक माना जा सकता है। सन्त पाल ने इतिहास को तीन भागों में विभक्त किया है जिनके प्रतिनिधि क्रमशः आदम, मूसा और ईसा हैं। पतन से पहले का युग ऐतिहासिक नहीं, वरन् आदर्श था। प्रथम ऐतिहासिक युग अज्ञान और बर्बरता का काल था। दूसरे युग का प्रादुर्भाव मूसा के कानूनों से हुआ। यहूदियों को उस रहस्य और चरम सत्य का साक्षात्कार हुआ जो सृष्टि के आरम्भ से ही निगूढ़ था। इसका प्रकाशन इसलिए हुआ कि मनुष्य इसका अनुसरण करके त्राण पा सके। तीसरे युग में ईसू ने इस सत्य का पूर्ण प्रकटीकरण और साधारणीकरण किया। सन्त पाल ने ईश्वर की उस योजना की चर्चा की है जो संसार की स्थापना में निहित है। रोमन साम्राज्य भगवान की योजना का उपकरण था। रोम की विजय इसलिए हुई कि ईश्वर मानव जाति की एकता स्थापित करना चाहता था जो चरम सत्य की एकता का आधार बन सके। किन्तु ईसाइयत के आगमन के पश्चात् रोमन साम्राज्य का कार्य समाप्त हो गया और यह लुप्त हो गया।

द्वितीय शताब्दी में तेतियन ने इतिहास के अध्ययन को एक नई दिशा प्रदान की। 'यूनानियों के नाम संदेश' में उसने प्राचीन हीब्रू इतिहास को यूनानी-रोमन इतिहास के साथ जोड़कर जूलियस अफ्रीकान्स, यूसेबियस, जीरोम, अगस्तीन आदि के पथ का निर्माण किया। इस प्रकार विश्व-इतिहास की परम्परा का सूत्रपात हुआ। ईसाइयत के एक अन्य मनीषी यूसेबियस ने फिलिस्तीन के काइज़ारिया नामक स्थान पर इतिहास का गम्भीर अध्ययन किया। उसकी कृति 'क्रानिकल' विश्व की समस्त ज्ञात जातियों की तुलनात्मक कार्य-तालिका है। यह तालिका इब्राहिम से आरम्भ होती है और ईसाइयत का प्रादुर्भाव इसका केन्द्र-बिन्दु है। इसमें रोमन सम्राटों की परम्परा की कालगणना भी ईसाई संवत्सर के अनुसार की गयी है। यूसेबियस का महत्त्वपूर्ण कार्य मानव इतिहास को एक काल-क्रमात्मक दृष्टिकोण प्रदान करना था। यूसेबियस को पश्चिमी देशों की अपेक्षा पूर्वी जगत् का अधिक ज्ञान था। अतः पाश्चात्य जगत् के विषय में उसकी सूचनाएं अपूर्ण हैं। यूसेबियस की इस कमी को सन्त जीरोम ने पूरा किया।

उत्तरी अफ्रीका के एक रोमन परिवार में जन्मे सन्त अगस्तीन ईसाई जगत् के सबसे महान् विचारक, दार्शनिक और साहित्यकार थे। पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में बर्बर जर्मन जातियों के आक्रमणों से रोम का पराभव हो गया। इस समय तक ईसाई धर्म रोम के राज्य धर्म के रूप में स्थापित हो चुका था। इसके विरोधियों ने रोम के वैभव के विनाश का कारण ईसाई धर्म को बताया। अगस्तीन ने इस दोषारोपण का खण्डन करने के लिए 'सिटी ऑफ गॉड' का प्रणयन किया। उन्होंने 13 साल तक अपनी पुस्तक के 1200 पृष्ठों पर मेहनत की जिनमें उन्होंने पहले पाप से लेकर अन्तिम फैसले तक सब कुछ का जिक्र किया।[5]

अगस्तीन ने प्रतिपादित किया कि इतिहास 'मनुष्य के नगर' व 'ईश्वरीय नगर' के मध्य का अन्तराल है। राज्य कोई परम मूल्ययुक्त वस्तु नहीं है।[6] संसार में रोम जैसे राज्य व सभ्यतायें मनुष्य के नगर हैं व चर्च ईश्वर के नगर का प्रतिनिधि है। जहां एक ओर मनुष्य का नगर मानवीय संवेगों, वासनाओं व अन्य बुराइयों का क्षेत्र व निरन्तर क्षयमान अस्तित्व है वहीं इसमें चर्च मनुष्य को निरन्तर मुक्ति के मार्ग की ओर ले जाता है एवं यही इतिहास का शाश्वत पक्ष है।[7] अतः रोम का पराभव मानवता के ईश्वरीय नगर की ओर विकास को प्रभावित नहीं करता। अगस्तीन ने इतिहास की परिकल्पना मानवीय उद्देश्यों,

योजनाओं और चेष्टाओं के सन्दर्भ में न करके एक दिव्य-योजना के फलन के माध्यम के रूप में की है। उसके अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण मानव जाति के इतिहास का पूर्व-निर्धारक है और विभिन्न देशों तथा सभ्यताओं के इतिहास विभिन्न स्वतंत्र इतिहास न होकर एक ही विश्व इतिहास के अंग हैं। यद्यपि मनुष्य अपने लक्ष्य के प्रति एवं अपने कर्मों के प्रति चेतन होता है, वह जानता है कि वह क्या कर रहा है, किन्तु वह जो कुछ करता है वह सब कुछ क्यों करता है अथवा जो उसका लक्ष्य है वह क्यों है, यह वह नहीं जानता। इसका कारण यह है कि मनुष्य अपना नियन्ता स्वयं नहीं बल्कि ईश्वर है, मनुष्य तो मात्र उसकी दिव्य-योजना को क्रियान्वित करने वाला निमित्त मात्र है।

अगस्तीन मानवीय कर्म में एक आधारभूत तार्किकता और आगन्तुकता देखता है, जो परिस्थिति या सन्दर्भ-जन्य न होकर अनिवार्यतः कर्म में ही अन्तर्निहित होती है। इस कल्पना के अनुसार, मनुष्य अनजान होते हुये भी कि उसके कर्म का क्या फल होगा, वह कर्म करने को अभिशप्त है एवं अपने निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त कर पाने की असमर्थता उसके स्वभाव का स्थायी तत्त्व है। अगस्तीन का मानना था कि मानव-कर्म बुद्धि द्वारा परिकल्पित उद्देश्यों की प्राप्ति की इच्छा से नहीं वरन् तात्कालिक अचेतन इच्छाओं से परिचालित होता है। इस विचार में अन्तर्निहित है कि मनुष्य की उपलब्धियां उसके पुरुषार्थ का परिणाम न होकर, उस परम सत्ता के कारण होती हैं, जो उसे दिव्य उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम बनाती है। उसके कर्मों में प्रज्ञा उसकी स्वयं की नहीं बल्कि ईश्वर की अनुकम्पा का परिणाम होती है। इस प्रकार जिन योजनाओं को मनुष्य फलित करता है, वे उसकी बुद्धि की रचना नहीं होतीं वरन् वह तो अपने तात्कालिक आवेगों से परिचालित होकर कर्म करते हुये ईश्वरीय उद्देश्यों को क्रियान्वित करता है।

इस प्रकार यद्यपि मनुष्य कर्त्ता है, किन्तु केवल प्रकट रूप से। क्योंकि वास्तविक कर्त्ता तो ईश्वर है। वह मनुष्य की अचेतन इच्छाओं व संवेगों को अपनी दिव्य-योजनाओं का उपकरण बनाता है। इस प्रकार प्रत्येक युग व उसके घटनाचक्र की मूल्यवत्ता इसमें है कि उससे किस सीमा तक दिव्य-योजना का क्रियान्वयन होता है। इस जगत का घटनाचक्र काल-निर्धारित, अनित्य एवं अद्वितीय होता है। जगत का प्रत्येक सत्व अपनी भूमिका निभाकर समाप्त हो जाता है - उसका जन्म होता है, वह विकसित और प्रवर्धित होता है और दिव्य-योजनानुसार अपनी भूमिका पूर्ण कर विलीन हो जाता है। इतिहास पटल पर उभरने वाली जातियों, सभ्यताओं व संस्कृतियों का यही चक्र रहा है। वे सब दिव्य-योजना के कारण उत्पन्न हुईं एवं उसके फलित होने में अपना योगदान करके समाप्त हो गईं। यहां यह दृष्टव्य है कि अगस्तीन के चिन्तन में यूनानी चिन्तन के कालचक्र अथवा युग-चक्र के सिद्धान्त को एक नये ढंग से व्याख्यायित कर एक नया अर्थ प्रदान किया गया। उत्थान व पतन के चक्र की अनवरत आवृत्ति के स्थान पर अब माना गया कि उत्थान व पतन का प्रत्येक चक्र अद्वितीय है। कोई घटित हो जाने के बाद पुनः स्वयं को नहीं दोहराता। विश्व में प्रत्येक व्यक्ति, जाति, संस्था और सभ्यता के कालचक्र दिव्य-योजना के फलित होने के विभिन्न चरण हैं।

अगस्तीन के इतिहास चिन्तन का एक महत्वपूर्ण तत्व है - सार्वभौमिकता। यहूदी-परम्परा के विपरीत अगस्तीन ने मानवमात्र को ईश्वर के समक्ष बराबर माना है। यद्यपि यहूदियों का ईश्वर सारी मानव-जाति का ईश्वर था, किन्तु यहूदी उसकी चुनिन्दा सन्तान थे। अगस्तीन ने इस सिद्धान्त को त्याग दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण मानव-जाति का इतिहास ईसाई दार्शनिकों के लिए महत्वपूर्ण हो गया।

अगस्तीन के दर्शन में सम्पूर्ण मानव-इतिहास ईश्वरीय-योजना के फलित होने के क्रम के रूप में देखा गया है। दिव्य-योजना ऐतिहासिक घटना-प्रवाह को पूर्व निर्धारित करती है। इस योजना मे कोई भी परिवर्तन मनुष्य की इच्छा, प्रार्थना अथवा पौरुष से संभव नहीं है। दिव्य-योजना अपने उद्देश्य-ईश्वरीय नगर की प्राप्ति हेतु इतिहास के माध्यम से अग्रसर रहती है। इस योजना के लक्ष्य ईश्वरीय नगर की भविष्योद्घोषणा ईसा के ही जन्म के माध्यम से हुई है। ईसा को जन्म देकर ईश्वर ने अपनी योजना को मनुष्य मात्र के समक्ष अपनी योजना को उद्घाटित किया है। अगस्तीन ने ईसा के जन्म की घटना को केन्द्र मानकर इतिहास को दो भागों में विभक्त किया है। ईसा के जन्म के पूर्व का और उसके जन्म के बाद का इतिहास। ईसा के जन्म के पूर्व की घटनाओं का लक्ष्य ईसा का जन्म था और परिवर्ती घटनाओं का लक्ष्य ईश्वरीय नगर की स्थापना है।

संत अगस्तीन ने इतिहास का विभाजन दो मुख्य भागों में कर देने के उपरान्त इसे अनेक युगों में बांटा। उसने युग निर्धारण युगों के विशिष्ट लक्षणों के आधार पर किया। इतिहास के युगों में विभाजन को वह जैव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के

रूपक (शैशव, यौवन और वार्धक्य) के द्वारा करता है। उसके अनुसार प्रथम युग आदम से नोआ (छवीं) के काल तक है – जब मानव अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने तक सीमित था द्वितीय युग नोआ से अब्राहम तक का है – इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि विविध भाषाओं का विकास है। इस युग में सर्वप्रथम लिखित स्मृति के माध्यम से अतीत के संग्रह को पहचाना गया है। इन दोनों युगों को अगस्तीन मानवता की युवावस्था कहता है। इसके बाद के तीन युग मानव की प्रौढ़ावस्था के युग हैं ये युग अब्राहम से आरम्भ होकर ईसा के अवतरण तक के हैं। तीसरा युग अब्राहम से मोजेज़ के काल तक चलता है। यह ओल्ड टेस्टामेंट का युग है। मोजेज़ से लेकर जरूसलम में सोलोमन द्वारा मन्दिर निर्माण की घटना तक का काल चौथा युग माना गया है। पांचवां युग बेबीलोन के हाथों यहूदियों की पराजय व दासता का युग है। छठा साइरस से जीसस तक व सातवां जीसस के जन्म से लेकर मानवता के अन्त तक का युग है। प्रत्येक युग में मानवता के ज्ञान में कुछ न कुछ विशिष्ट अभिवृद्धि होती रही है। इसे अगस्तीन ने मानवता की शिक्षा कहा है। ईसा के जन्म के बाद आरम्भ होने वाला युग मानवता की वृद्धावस्था का युग है। यह भी उसी प्रकार व्यतीत हो जायेगा, जिस प्रकार पिछले युग बीते हैं। इस तरह पृथ्वी पर मानवता के अस्तित्व का चक्र पूर्ण हो जायेगा, जिसकी परिणिति कयामत के दिन में होगी। तब ईश्वर सांसारिक अस्तित्व के अच्छे व बुरे कर्मों के अनुसार उनके लिए सदा के लिए स्वर्ग अथवा नरक की व्यवस्था करेगा।[9]

यहां यह दृष्टव्य है कि मानव इतिहास एक दिव्य–योजनानुसार एक विशिष्ट लक्ष्य की ओर अग्रसर है। इस प्रकार मानव इतिहास की गति चक्रात्मक न होकर रेखीय विकास की है।[10] यद्यपि संसार में मानव इतिहास निरन्तर क्षय की ओर अग्रसर है, किन्तु इसका अन्तिम लक्ष्य है ईश्वर का नगर जिसका आविर्भाव सांसारिक अस्तित्व के चक्र की समाप्ति के पश्चात् होगा। यह चक्र अस्तित्व का बृहत् चक्र है, जो एकमात्र व अद्वितीय है, इसकी समाप्ति के बाद ऐसे किसी चक्र की पृथ्वी पर पुनरावृत्ति नहीं होगी। ऐतिहासिक घटनाओं की अद्वितीयता के इस विचार में परिवर्ती काल के इतिहासवाद की झलक देखी जा सकती है।

मानव इतिहास में उत्पत्ति व विनाश के कालचक्र की अनन्त पुनरावृत्ति के यूनानी विचार के खण्डन के पीछे ईसा के जन्म, उसके द्वारा मानवता के लिए भोगी गई पीड़ा की परम मूल्यवत्ता में विश्वास था। साथ ही आदम के पतन, ईसा के जन्म व उद्धार के चक्र की पुनरावृत्ति का विचार अगस्तीन को कभी उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ। ईसाई धर्म का संसार की उत्पत्ति का सिद्धान्त भी मानव अस्तित्व के काल–चक्र की बार–बार पुनरावृत्ति को अर्थहीन कर देता है। उसके अनुसार संसार ईश्वर द्वारा सृजित तात्त्विक सत्ता है। बार–बार ईश्वर द्वारा इसे उत्पन्न करना, फिर मिटा देना, उसके सृजन को अर्थहीन कर देगा। यहूदियों के ईश्वर प्रदत्त इतिहास के विचार एवं यूनानियों के काल–चक्र की अनवरत पुनरावृत्ति के सिद्धान्त परस्पर विरुद्ध हैं। इस कारण ईसाई दार्शनिकों ने एक वृहद् इतिहास–चक्र की कल्पना की और साथ ही इस चक्र के अन्तर्गत विशिष्ट जातियों व सभ्यताओं के जीवन–चक्र की कल्पना भी की। अगस्तीन का विश्वास था कि उत्थान व पतन का यह वृहद् चक्र एक अनिवार्य ईश्वरीय–योजना का फलीकरण है[11], जिस योजना का बीज आदम के पतन के समय बो दिया गया था जिस प्रकार एक पेड़ की समस्त संभावनायें उसके बीज में होती हैं, उसी प्रकार मानवता की सम्पूर्ण संभावनायें उसके सद्गुण–दुर्गुण, शक्तियां–क्षीणतायें सब कुछ ईश्वर ने आदिपुत्र आदम में संग्रहीत कर दी थीं। उसके बाद समस्त इतिहास इन्हीं संभावनाओं का फलीकरण है।[12]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अगस्तीन इतिहास की गति में एक अनिवार्यता मानते हैं। यह अनिवार्यता दिव्य–योजना के तर्क की है, जो मानवीय कृत्यों का अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपयोग करती है। अगस्तीन ने सम्पूर्ण मानवता की एकता की कल्पना की है – जिसके भीतर मिस्त्री, यहूदी, यूनानी, रोमी अदि जातियों के जीवनवृत्त कठिन होते हैं। इस विशाल अस्तित्व में मानवता के इतिहास में विभिन्न अवस्थाओं का अनिवार्य क्रम घटित होता है। यहां यह दृष्टव्य है कि यह क्रम उन प्राकृतिक अवस्थाओं का क्रम मात्र नहीं है, जिससे होकर कोई सत्ता गुजरती है बल्कि इन अवस्थाओं के अन्तर्गत होने वाली प्रत्येक घटना, प्रत्येक मानवीय कृत्य, इन कृत्यों के पीछे के प्रयोजन और सब कुछ जैसे घटित हुआ और होगा वह सब भी पूर्व निर्धारित ही है।

संत अगस्तीन ने हीब्रू–परम्परा के दैवीय अनुबन्ध में संभवन (Bcomingness) के यूनानी विचार को जोड़कर ऐतिहासिक अनिवार्यता के विचार का प्रतिपादन किया।[13] यहूदी–परम्परा में ईश्वरीय आदेश के माध्यम से इतिहास में गति की कल्पना तो

है किन्तु इतिहास में किसी योजना की कल्पना नहीं है – ऐसी योजना जिसका पूर्व निर्धारण ईश्वर ने आरम्भ में ही कर दिया था। यूनानी–चिंतन के सत्ता की अन्तर्निहित संरचना के विचार के साथ यहूदी ऐतिहासिक अद्वितीयता के विचार के संयोग से पाश्चात्य चिन्तन के ऐतिहासिक अनिवार्यता के सिद्धान्त का आरम्भ हुआ।[14] ऐतिहासिक अनिवार्यता के इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अगस्तीन ने सम्पूर्ण ऐतिहासिक घटनाक्रम को निश्चित युगों में विभक्त करके यह दिखाने का प्रयत्न किया कि यह बस एक पूर्व–निर्धारित योजना का परिणाम है, जिस योजना का निर्धारण ईश्वर ने पृथ्वी पर मानव के अवतरण के पूर्व ही कर दिया था।

मानव इतिहास की अगस्तीन की इस व्याख्या से इतिहास में भाग्य अथवा आगन्तुकता का स्थान समाप्त हो गया। समस्त घटना–व्यापार पूर्व नियोजित योजना के अनुसार होने से प्रत्येक मानवीय कृत्य विशिष्ट व महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वह दिव्य–योजना के फलित होने का माध्यम हैं। अत: आगन्तुक कुछ नहीं होता, वह तो हमें उसके कारणों व कारकों को न देख पाने के कारण प्रतीत होता है।

इस प्रकार अगस्तीन ने इतिहास की रेखीय गतिकता अथवा विकास की अवधारणा का प्रतिपादन किया[15] जिसको कि बीसवीं सदी में अधिकांश इतिहासकारों द्वारा त्याग दिया गया। किन्तु यहूदी परम्परा से लेकर उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक वाल्टेयर, विको, कान्ट, और हीगेल जैसे दार्शनिकों ने इतिहास को निरन्तर विकासमान प्रवाह के रूप में ही देखा।

अगस्तीन की इतिहास की सार्वभौमिकता की अवधारणा पुनर्जागरण काल में होती हुई समकालीन इतिहासकारों तक चलती आई है। यद्यपि बीच–बीच में हर्डर, हीगेल जैसे विचारकों ने इतिहास के गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र यूरोप को माना एवं अन्य सभ्यताओं व संस्कृतियों को गौंण, किन्तु अन्य सभ्यताओं को इतिहास वृत्त में सम्मिलित अवश्य किया। इसके अतिरिक्त युग–चक्र की यूनानी अवधारणा, जिसका प्रयोग अगस्तीन ने विलक्षण ढंग से किया था, विभिन्न रूपों में परवर्ती इतिहास–चिन्तकों में दिखाई पड़ती है। इतिहास–दर्शन की यह अवधारणा किसी भी काल में पूर्णत: अस्वीकृत नहीं हुई। 17वीं सदी में इस सिद्धान्त पर पुन: विचार आरम्भ हुआ। इस सदी में बोसुए से लेकर हर्डर व विको से होते हुये बीसवीं सदी में स्पेंगलर, टॉयन्बी व सोरोकिन तक यह अवधारणा दिखाई पड़ती है।

अगस्तीन के दर्शन के महत्त्व को इंगित करते हुये विल ड्यूरां कहता है, इस पुस्तक (सिविटाट डेई) के साथ एक दर्शन के रूप में पेगनवाद का अन्त हुआ और दर्शन के रूप में ईसाइयत की शुरुआत हुई। यह मध्ययुगीन मानस का पहला निश्चित सिद्धान्तीकरण था।[16] एक अन्य अवधारणा कि ऐतिहासिक घटनायें अपने आप में अर्थहीन हैं, किन्तु दिव्य–तत्त्व के प्रकाशक के रूप में अर्थवान हैं। इतिहास चिन्तन को एक अति महत्वपूर्ण देन है। इसके अनुसार इतिहासकार का उद्देश्य मात्र तथ्यों का संकलन नहीं बल्कि इनकी व्याख्या है।

इतिहास लेखन के सन्दर्भ में प्रचलित विभिन्न दृष्टियों व सिद्धान्तों, चाहे वह इतिहास का युग–चक्रवादी सिद्धान्त हो अथवा रेखीय गतिकता का सिद्धान्त हो सभी की अपने निहितार्थों में मूल्यवत्ता सदैव बनी रहती है। क्योंकि दिनांकित तथ्यों के प्रति उदासीन होने पर भी काव्यात्मक प्रभेदों तक में इतिहास–बोध वर्तमान रहता है। क्योंकि यह मनुष्य की एक सहज प्रवृत्ति है इतिहास–बोध में आभासित सत्य की अभिव्यक्ति धार्मिक, दार्शनिक, इतिवृत्त किसी भी रूप में हो सकती है। कालानुभूति का सत्य स्थूल घटनाओं तक सीमित नहीं किया जा सकता है। स्वत: बोधगम्यता का जो विशेषाधिकार वर्तमान काल को दिया जाता है, वह बारीकी से जाँचने पर लगता है कि एक मुश्त अजीबोगरीब प्रस्थापनाओं पर आधारित है।[17]

हर्बर्ट बटरफील्ड कहता है कि सिटी ऑफ गॉड में हम अगस्तीन को इतिहास के चक्रीय नजरिये से भिन्न रास्ता तलाशने की बहस करते हुए देखते हैं। वह इसकी अनुमति नहीं दे सकता कि हर घटना अनन्तकाल तक खुद को दोहराती चली जाये। क्योंकि यह मान्यता ईसा के अवतरण को कठपुतली के तमाशे में बदल देती।[18] ईसाइयत का इतिहास के प्रति दृष्टिकोण ईश्वरीय कृपा दृष्टि तक सीमित नहीं है अपितु यह मानव जीवन में विभिन्न बिन्दुओं, स्थानों व समयों पर ईश्वरीय हस्तक्षेप में विश्वास करता है।[19] इसी दृष्टिकोण का प्रतिपादन अगस्तीन ने अपने ग्रन्थ सिटी ऑफ गॉड में किया है।

अपनी आदि अवस्था से प्रारम्भ होकर वर्तमान समय तक अधिकांश इतिहास लेखन नीति सापेक्ष रहा है फिर भी उन्नीसवीं बीसवीं सदी के यूरोप व संयुक्त राज्य अमेरिका में इस प्रकार का इतिहास लेखन हुआ है जिसका अभीष्ट स्व पहचान की प्रस्थापना

करना था। सम्भवत: इतिहास को आत्मचरितार्थन के स्रोत के रूप में मानकर किया गया इतिहास लेखन किसी विशिष्ट नीति से किये गये इतिहास लेखन से अधिक सार्थक होता है।[20] स्मृत अतीत का महत्वपूर्ण योगदान स्व-प्रत्यय की पहचान स्थापित करना है।[21] अगस्तीन के लेखन में इतिहास विषयक इस दृष्टिकोण की पर्याप्त सीमा तक झलक दिखाई देती है।

संत अगस्तीन के बाद मध्यकालीन ईसाई चिन्तन की सामान्य रूपरेखा वही रही, जो अगस्तीन ने निर्धारित की थी। मध्ययुगीन ईसाई दार्शनिक भी इतिहास में ईश्वरीय योजना के क्रियान्वयन को दिखाने में ही प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। उनके अनुसार ईश्वरीय योजना काल की गति के साथ विभिन्न चरणों से गुजरती हुई फलित होती चलती है एवं प्रत्येक चरण का आरम्भ एक युगान्तकारी घटना से होता है। अगस्तीन की तरह ही मध्ययुगीन दार्शनिक व इतिहास लेखकों की इतिहास में रुचि मात्र अतीत के अध्ययन की दृष्टि से ही नहीं थी, बल्कि उन्होंने समस्त इतिहास - अतीत, वर्तमान एवं भविष्य को एक समुच्चय के रूप में देखा था। उनके लिए ऐतिहासिक घटनाओं का प्रकाश और उन्हें अर्थ प्रदान करने वाला तत्त्व वह उद्देश्य है जिसकी सिद्धी ये घटनायें करती हैं। यह उद्देश्य ''ईश्वरीय नगर'' की स्थापना है। अगस्तीन का यह विचार कि, ईश्वरीय योजना मनुष्य की व्यक्तिगत इच्छाओं व कृत्यों के बावजूद फलित होती हैं और मानवीय इच्छाओं व कृत्यों की मूल्यवत्ता उसी सीमा तक होती है, जिस सीमा तक कि वे ईश्वरीय योजना के फलित होने में सहायक होते हैं, मध्ययुगीन ईसाई चिन्तन में पूर्णत: अभिव्यक्त हुआ।

पुनर्जागरण-काल के आरम्भ के साथ धर्म व इतिहास का संयोजन समाप्त हो गया। अब इतिहास मानवीय कृत्यों, मन्तव्यों, अपेक्षाओं, चिन्ताओं आदि का विवरण बन गया। किन्तु अगस्तीन के इतिहास-दर्शन की अनेक महत्त्वपूर्ण अवधारणायें जैसे- सार्वभौमिकता, इतिहास की रेखीय गतिकता, युग-चक्र ऐतिहासिक अनिवार्यता, ऐतिहासिक घटनाओं की अद्वितीयता आदि परवर्ती इतिहास-दर्शन में स्पष्ट देखने को मिलती हैं।

ईसाइयत के प्रचार और प्रसार के काल (पाँचवी शताब्दी ईस्वी) की धारणा जिसके अनुसार रोमन साम्राज्य को जर्मन जातियों के आक्रमणों और आघातों का सामना इसलिये करना पड़ रहा था क्योंकि रोमन लोगों ने अपने प्राचीन आचार-विचार छोड़कर एक विदेशी धर्म स्वीकार कर लिया था। दूसरे शब्दों में रोमन लोग इस आपत्ति को ईसाईयों के सिर मढ़ रहे थे, की प्रतिक्रिया स्वरूप अगस्तीन का इतिहास-दर्शन का विकास हुआ। अगस्तीन के इतिहास-दर्शन में ईसाई इतिहास-चिन्तन की विभिन्न मान्यताओं सार्वभौमिक इतिहास, ''ईश्वरीय योजना'' का इतिहास में क्रियान्वयन, इतिहास की उद्देश्यात्मकता, इतिहास की रेखीयता व इतिहास के घटनाक्रम में अनिवार्यता आदि की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। मध्ययुग के बाद अधिकांश इतिहास-दर्शनों में ईश्वरीय अथवा दिव्य तत्त्व की कल्पना को त्याग दिया गया, किन्तु अगस्तीन के इतिहास-दर्शन की अन्य सभी अवधारणायें परवर्ती इतिहास-दर्शन को निरन्तर प्रभावित करती रही हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इतिहास की जिस दृष्टि का उदय उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में हुआ, उसके घटक तत्त्व यूनानी आलोचनात्मक व तार्किक-विधि तथा जूडिओ-क्रिस्चियन इतिहास-दृष्टि है।[22] इस इतिहास-दृष्टि को इतिहास एवं संस्कृति के दर्शन के रूप में प्रतिपादित करने वाला पहला विचारक संत अगस्तीन माना जाता है। संत अगस्तीन[23] ईसाई जगत् के सबसे महान विचारक, दार्शनिक और साहित्यकार थे। अगस्तीन मुख्यत: कलम के मजदूर थे।[24] वास्तव में संत अगस्तीन ईसाई इतिहास-दर्शन का प्रथम वास्तविक विचारक था। अगस्तीन की विचारधारा के परिणामस्वरूप पश्चिम में क्लासिकल ग्रीको-रोमन संस्कृति के बदले ईसाई जीवन पद्धति के आने से इतिहास-लेखन पर प्रतिकूल असर पड़ा। पाँचवीं सदी से यूनानी और रोमन इतिहास-लेखन की गुणवत्ता, अखण्डता और मान में गिरावट दिखनी शुरू हो गई।

सन्दर्भ

1. श्रीधरन ई., इतिहास-लेख एक पाठ्यपुस्तक, ओरिएण्ट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2011, पृ. 37-38
2. पाण्डे जी.सी. (सं.), इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2012, पृ. 3
3. ड्रे, विलियम, पर्सपेक्टिव्स् ऑन हिस्ट्री, रूटलेज एण्ड केगन पॉल लिमिटेड, लंदन, 1980, पृ. 121
4. कॉलिंगवुड, आर.जी., द आइडिया ऑफ हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रथम भारतीय संस्करण, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 46

5. विलड्यूरां, स्टोरी ऑफ सिविलाईजेशन भाग-2, साइमन शुस्टर, न्यूयॉर्क, 1935, दि लाईफ ऑफ ग्रीस, साइमन शुस्टर, न्यूयॉर्क, 1939, पृ. 431-432
6. पाण्डे जी.सी. पूर्वोक्त, पृ. 4
7. स्ट्रॉम्बर्ग आर.एन., अर्नोल्ड जे. टॉयन्बी : हिस्टोरियन फॉर एन एज इन क्राइसिस, साउदर्न इलिनोइस यूनिवर्सिटी प्रैस, इलिनोइस, 1972, पृ. 38
8. वही, पृ. 77
9. अगस्तीन के धरती पर अवतरण के बाद उसके ईश्वरीय नगर की ओर आरोहन पर विस्तृत चर्चा के लिये देखें, लॉविथ कार्ल, मीनिंग इन हिस्ट्री,, द यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रैस, शिकागो एण्ड लंदन, 1949, नवम् अध्याय; डॉसन, क्रिस्टोफर, डायनेमिक्स ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, इण्टर कालिजिऐट स्टडीज़ इन्स्टीट्यूट, विलमिंगटन, 2005, पृ. 311-340
10. वही, पृ. 251
11. वही, पृ. 253
12. विस्तार के लिये देखें, सुलीवान, जॉन एडवर्ड, प्रॉफेट्स ऑफ द वैस्ट, होल्ट, राइनहार्ट एण्ड विन्सटन, इनकार्पोरेशन, 1970, प्रथम अध्याय
13. गार्गन एडवर्ड टी. व टॉयन्बी, अर्नोल्ड जे., इन्टेन्ट ऑफ टॉयन्बीज् हिस्ट्री, लोयोला यूनिवर्सिटी प्रैस, शिकागो, 1961, पृ. 173
14. वही, पृ. 195-196
15. कॉलिंगवुड, आर.जी., पूर्वोक्त, पृ. 51
16. विलड्यूरां, पूर्वोक्त, पृ. 432
17. ब्लॉख़, मार्क, इतिहासकार का शिल्प, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2013, पृ. 49
18. बार्न्स, हैनरी एमर, हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइटिंग, डावर पब्लिकेशन्स, न्यूयॉर्क, 1962, पृ. 29
19. डॉसन, क्रिस्टोफर, पूर्वोक्त, पृ. 247
20. कॉनकिन पॉल के. व स्ट्रॉम्बर्ग आर.एन., द हेरिटेज एण्ड चैलेंज ऑफ हिस्ट्री, फोरम प्रैस, अर्लिंगटन हाइट्स, इलिनोइस, 1971, पृ. 229
21. वही, पृ. 230
22. देखें, कॉनकिन, पॉल के व स्ट्रॉमबर्ग, आर. एन., पूर्वोक्त, प्रथम अध्याय
23. मेक्राबे जोसफ, सन्त अगस्तीन एण्ड हिज ऐज, जी पी पुटनम्स सन्स, न्यूयॉर्क एण्ड लंदन, (1902), पृ. 19-23
24. श्रीधरन ई., पूर्वोक्त, पृ. 40

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

उच्च तथा निम्न स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों का एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

प्रियंका कृषणिया
शोधकर्त्री, मनोविज्ञान विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर
डॉ. किरण महेश्वरी
शोध निर्देशिका एवं असिस्टेंट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

अंतर्वैयक्तिक संबंध को दो या दो से अधिक लोगों के बीच एक मजबूत, गहरे या घनिष्ठ संबंध और परिचित के रूप में परिभाषित करता है। भारत में प्राचीन समय में गुरु–शिष्य का रिश्ता एक बहुत ही पवित्र रिश्ता माना जाता था, जहाँ गुरु या शिक्षक अपने छात्रों में, आध्यात्मिक, वैदिक, नैतिक और अकादमिक शिक्षाओं को संचारित करते थे। इसके बदले में छात्र अपने गुरुओं के घर के कार्यों में सहायता करते थे और जो समर्थ होता था वह गुरू दक्षिणा के रूप में धन का भुगतान करता था। यह पारस्परिक संबंध शिक्षक के ज्ञान और छात्र की आज्ञाकारिता पर आधारित था। आज के आधुनिक युग में जब शिक्षण मात्र एक व्यवसाय बन कर रह गया है। ऐसे समय में छात्रों और शिक्षकों के आपसी संबंध भी बदल गए हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उच्च तथा निम्न स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों का अध्ययन करना था। इस अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। इस अध्ययन के लिए 100 विद्यार्थियों का चयन किया गया। आंकड़ों के संकलन हेतु स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया। परिणाम में यह पाया कि उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों के मध्य सार्थक अंतर पाया गया।

मुख्य शब्द : उच्च तथा निम्न स्तर, अंतर्वैयक्तिक संबंध

प्रस्तावना

शिक्षा न केवल किसी के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए बल्कि राष्ट्र के सतत विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है। शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। चाहे आदिकाल रहा हो या अर्वाचीन रहा हो शिक्षक का स्थान तथा महत्त्व कभी कम नहीं रहा, क्योंकि अध्यापक, शिक्षा की ऐसी कड़ी है जो प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा एवं समाज को प्रभावित करती है। शिक्षक समाज का आईना है। शिक्षक, शिक्षा व समाज को जोड़ने वाली महत्त्वपूर्ण कड़ी है। किसी देश और समाज का विकास उसके शिक्षित और जागरूक नागरिकों पर निर्भर है तथा साथ ही शिक्षित और जागरूक नागरिकों का निर्माण भी शिक्षक के ऊपर ही निर्भर है। किसी भी क्षेत्र में चाहे वह चिकित्सा हो या विज्ञान, अंतरिक्ष, रक्षा, यातायात एवं सूचना आदि सभी क्षेत्रों में कार्य कुशलता बढ़ाने में, इन सभी क्षेत्रों में योग्य व्यक्तियों को पहुँचानें में शिक्षक का बहुत बड़ा

योगदान है। शिक्षक ज्ञान के विकास और विद्यार्थियों के मध्य मूल्यों को विकसित करने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक शिक्षक शिक्षा के माध्यम से एक हिंसक क्रांति के बिना पूरे समाज को बदल सकता है और शिक्षक की शैक्षिक विकास में एक प्रमुख भूमिका होती है जब वह सक्रिय रूप से काम करता है (राष्ट्रमंडल रिपोर्ट, 1974)। शिक्षक समाज की रीढ़ है, जिसके बिना बालक सीधा तो खड़ा हो सकता है परन्तु समाज में पूर्ण प्रतिष्ठित नहीं हो सकता है क्योंकि कोरी स्लेट रूपी बालक के ऊपर स्वच्छ अक्षरों में सुस्पष्ट लेखन कार्य एक योग्य शिक्षक ही कर सकता है।

प्लेटो, सुकरात जैसे अधिकांश दार्शनिकों के लिए शिक्षक और छात्र के मध्य संबंध जांच का केंद्र रहा है। संवाद के माध्यम से ज्ञान प्राप्ति पर बल देते हुए प्रत्येक दार्शनिक ने शिक्षक-छात्र संबंध के प्रति प्रतिबद्धता पर बल दिया। 1900 के दशक की शुरुआत में, जॉन ड्यूवी और अन्य प्रगतिशील शिक्षकों ने यह सिद्धांत दिया कि बच्चों को बहुत अधिक शिक्षण द्वारा मजबूर या सीमित किए बिना अपने तरीके से स्वतंत्र रूप से बढ़ने की अनुमति दी जाती है। मारिया मोंटेसरी के अनुसार बच्चों को अपने लिए ज्ञान की खोज करनी चाहिए और संवेदी धारणाओं पर स्पष्ट बल देकर सीखना चाहिए। 20वीं शताब्दी ने शिक्षक-छात्र संबंधों को बढ़ावा देने वाले विचारों के प्रसार को देखा है। मनोवैज्ञानिकों ने भी छात्रों के साथ शिक्षकों के संबंधों के मनोसामाजिक आयामों को संबोधित किया है। शिक्षकों और छात्रों के मध्य संबंध अत्यधिक व्यक्तिगत और बहुत कीमती होते हैं, कभी-कभी वे काफी आकस्मिक और अवैयक्तिक होते हैं। शिक्षकों का काम प्रत्येक छात्र का पोषण करना और न केवल उसकी बौद्धिक उपलब्धि बल्कि सामाजिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक विकास को भी अधिकतम करना है।

जोन्स (2004) के अनुसार, कई अनुसंधानों से यह पता चलता है कि शैक्षणिक उपलब्धि और छात्रों के व्यवहार शिक्षक-छात्र संबंधों की गुणवत्ता से बहुत प्रभावित होते हैं। व्याख्यान के तरीकों और तकनीकों पर पारंपरिक सलाह की तुलना में शिक्षक-छात्र संबंध का भावनात्मक पहलू कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। सकारात्मक और नकारात्मक अंतर्वैयक्तिक संबंधों के प्रभाव पर गोस्वामी (2012) जैसे कुछ शोधकर्ताओं द्वारा रिपोर्ट किए गए अध्ययनों ने बताया कि परिवार, दोस्तों और पड़ोसियों के बीच सकारात्मक संबंधों ने बच्चों की भलाई में वृद्धि की जबकि नकारात्मक संबंधों में कमी आई। एस्पेलिन (2012) का मानना है कि अंतर्वैयक्तिक संबंध विद्यार्थियों की उपलब्धि को निर्धारित करते हैं और प्रदर्शन को प्रोत्साहित करते हैं। केनी, डूले और फिट्जगेराल्ड (2012), अपनी रिपोर्ट में बताते हैं कि उच्च स्तर के अंतर्वैयक्तिक संबंधों वाले बच्चों की तुलना में निम्न स्तर के अंतर्वैयक्तिक संबंधों वाले बच्चों में भावनात्मक अस्थिरता अधि पायी जाती है। ये कुछ अध्ययन साबित करते हैं कि अंतर्वैयक्तिक संबंध व्यक्तियों के विकास और समग्र कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संबंधित साहित्य का अध्ययन

बाहो और अली (2020) ने शिक्षक-छात्र संपर्क और छात्र पारस्परिक कौशल, स्व-प्रबंधन कौशल और शैक्षणिक व्यवहार के मध्य संबंध पर एक अध्ययन किया। इस अध्ययन का उद्देश्य माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के छात्रों के साथ बातचीत के तरीकों और छात्रों के पारस्परिक कौशल, आत्म-प्रबंधन कौशल और शैक्षणिक व्यवहार के मध्य संबंध का पता लगाना है। परिणाम में यह प्राप्त हुआ कि शिक्षकों में अनिश्चितता का छात्र के पारस्परिक कौशल के साथ गहरा संबंध है। इसके अलावा, शिक्षकों की शैली और छात्रों की स्वतंत्रता का छात्रों के आत्म-प्रबंधन कौशल के साथ एक महत्वपूर्ण नकारात्मक संबंध है। जबकि, शिक्षक-छात्र संपर्क के सभी आठ कारक छात्रों के शैक्षणिक व्यवहार के साथ सकारात्मक संबंध बने रहे।

कासिवु (2020) ने छात्रों के अनुशासन को निर्धारित करने में शिक्षक-छात्र पारस्परिक संबंधों की भूमिका पर एक अध्ययन किया। इस अध्ययन ने केन्या के छात्रों के अनुशासन में शिक्षक-छात्र पारस्परिक संबंधों की भूमिका की जांच की। अध्ययन से पता चला कि शिक्षक छात्र पारस्परिक संबंधों का छात्रों के अनुशासन के स्तर के साथ एक महत्वपूर्ण सकारात्मक संबंध था। अध्ययन ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि छात्रों के अनुशासन के लिए शिक्षक छात्र पारस्परिक संबंधों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। शिक्षकों और शिक्षा प्रशासकों को स्कूल में अपनी बातचीत में सौहार्दपूर्ण शिक्षक-छात्र पारस्परिक संबंधों को प्रोत्साहित करने का प्रयास करना चाहिए।

पास्कल (2020) ने तंजानिया में पब्लिक सेकेंडरी स्कूलों में शिक्षक-छात्र संबंधों और छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर एक अध्ययन किया। इस अध्ययन में तंजानिया में छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर शिक्षक-छात्रों के संबंधों के प्रभाव का

पता लगाया। इस अध्ययन के परिणामों से यह ज्ञात होता है कि तंजानिया पब्लिक सेकेंडरी स्कूलों में शिक्षक-छात्र संबंध अकादमिक प्रदर्शन के लिए एक महत्वपूर्ण निर्धारक और उत्प्रेरक है। शिक्षक-छात्र संबंध छात्रों को अपने शिक्षकों द्वारा देखभाल करने में मदद करते हैं, छात्रों को कक्षा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में मदद करते हैं और शिक्षकों और छात्रों को कक्षा का एक अभिन्न अंग बनने में मदद करते हैं क्योंकि वे सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। इसी आधार पर यह अनुशंसा की जाती है कि शिक्षकों को छात्रों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए। साथ ही, अध्ययन ने सिफारिश की कि, छात्रों का प्रदर्शन तभी प्राप्त किया जा सकता है जब शिक्षक-छात्र संबंध बनाए रखा जाएगा।

रिचर्ड (2020) ने घाना में सीनियर पब्लिक सेकेंडरी स्कूलों में शिक्षक-छात्र संबंध और छात्र सीखने के परिणामों पर एक अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि जो शिक्षक पेशेवर रूप से अपने छात्रों के करीब हैं और उन्होंने अपने छात्रों को पेशेवर रूप से उन पर निर्भर बना दिया है, उनके छात्रों के व्यवहार और निर्देशात्मक जुड़ाव के स्तर में वृद्धि हुई है। यह अध्ययन अनुशंसा करता है कि शिक्षकों को एक सकारात्मक शिक्षक-छात्र संबंध विकसित करना चाहिए जो स्कूल और कक्षा के सीखने के माहौल के साथ-साथ छात्र शैक्षणिक उपलब्धि दोनों में सुधार करेगा।

अध्ययन के उद्देश्य

1. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों का अध्ययन करना।
2. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के निम्न स्तर के विद्यार्थियों और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों के मध्य सार्थक अंतर पाया जाएगा।
3. उच्च माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यालय निम्न स्तर के विद्यार्थियों और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों के मध्य सार्थक अंतर पाया जाएगा।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों के मध्य सार्थक अंतर पाया जाएगा।
2. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के निम्न स्तर के विद्यार्थियों और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों के मध्य सार्थक अंतर पाया जाएगा।
3. उच्च माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यालय निम्न स्तर के विद्यार्थियों और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों के मध्य सार्थक अंतर पाया जाएगा।

शोध अभिकल्प

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। जयपुर शहर के सरकारी व निजी विद्यालय के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) तथा शिक्षकों का चयन किया गया है। इन विद्यालयों से 100 विद्यार्थियों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया है।। प्रस्तुत शोध कार्य में विद्यार्थी-शिक्षक अंतर्वैयक्तिक संबंध मापनी (स्वनिर्मित) का प्रयोग किया गया है तथा प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं टी परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

परिकल्पना-1 : उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों के मध्य सार्थक अंतर पाया जाएगा।

सारणी-1

उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंध

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मूल्य	परिणाम
सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी	50	26.18	4.81	1.08	अस्वीकृत
निजी विद्यालय के विद्यार्थी	50	25.24	3.83		

व्याख्या व विश्लेषण

उपरोक्त तालिका उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व निजी विद्यालय के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों को दर्शाती है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों का मध्यमान 26.18 और मानक विचलन 4.81 तथा निजी विद्यालय के विद्यार्थियों का मध्यमान 25.24 और मानक विचलन 3.83 प्राप्त हुआ। गणना करने पर टी का मूल्य 1.08 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता के अंश 98 का टी तालिका मूल्य 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 है। गणना किया गया टी मूल्य सार्थकता के 0.05 स्तर के तालिका मूल्य से कम है। अत: परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

परिकल्पना-2 : उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के निम्न स्तर के विद्यार्थियों और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों के मध्य सार्थक अंतर पाया जाएगा।

सारणी-2

उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के निम्न स्तर के विद्यार्थियों और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंध

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मूल्य	परिणाम
सरकारी विद्यालय के निम्न स्तर के विद्यार्थी	50	27.46	4.13	1.43	अस्वीकृत
सरकारी विद्यालय के उच्च स्तर के विद्यार्थी	50	28.55	3.48		

व्याख्या व विश्लेषण

उपरोक्त तालिका उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के निम्न स्तर के विद्यार्थियों और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों को दर्शाती है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि सरकारी विद्यालय के निम्न स्तर के विद्यार्थियों का मध्यमान 27.46 और मानक विचलन 4.13, तथा सरकारी विद्यालय के उच्च स्तर के विद्यार्थियों का मध्यमान 28.55 और मानक विचलन 3.48 प्राप्त हुआ। गणना करने पर टी का मूल्य 1.43 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता के अंश 98 का टी तालिका मूल्य 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 है। गणना किया गया टी मूल्य सार्थकता के 0.05 स्तर के तालिका मूल्य से कम है। अत: परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

परिकल्पना-3 : उच्च माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यालय निम्न स्तर के विद्यार्थियों और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों के मध्य सार्थक अंतर पाया जाएगा।

सारणी-3

उच्च माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यालय निम्न स्तर के विद्यार्थियों और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंध

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मूल्य	परिणाम
गैर सरकारी विद्यालय के निम्न स्तर के विद्यार्थी	50	26.08	2.75	2.22	स्वीकृत
गैर सरकारी विद्यालय के उच्च स्तर के विद्यार्थी	50	27.40	3.16		

व्याख्या व विश्लेषण

उपरोक्त तालिका उच्च माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यालय निम्न स्तर के विद्यार्थियों और उच्च स्तर के विद्यार्थियों का शिक्षकों के साथ अंतर्वैयक्तिक संबंधों को दर्शाती है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि गैर सरकारी विद्यालय के निम्न स्तर के विद्यार्थियों का मध्यमान 26.08 और मानक विचलन 2.75 तथा गैर सरकारी विद्यालय के उच्च स्तर के विद्यार्थियों का मध्यमान 27.40 और मानक विचलन 3.16 प्राप्त हुआ। गणना करने पर टी का मूल्य 2.22 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता के अंश 98 का टी तालिका मूल्य 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 है। गणना किया गया टी मूल्य सार्थकता के 0.05 स्तर के तालिका मूल्य से अधिक है। अतः परिकल्पना स्वीकृत होती है।

संदर्भ

- अस्थाना, विपिन. (2009). मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन. वाराणसी: विजय प्रकाशन.
- अग्रवाल, जे.सी.(2010). शिक्षा के दार्शनिक, सामाजिक एवं आर्भिक आधार. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
- ओड, एल. के. (2004). शिक्षा की दार्शनिक एवं सामाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी.
- करलिंगर, एफ.एन. (1967). फाउण्डेशन ऑफ बिहेवियरल रिसर्च. न्यूयॉर्क: हालट रेनहार्ट एण्ड विन्सटर.
- कप्लान, आर एम. (1987). बेसिक स्टेटिस्टिक फॉर दि बिहेवियरल साइन्स. लन्दन : एलन एण्ड बेकन प्रिन्टर्स.
- कपिल, एच. के.(1995). अनुसंधान विधियाँ. मेरठ: भार्गव भवन.
- पाठक, आर.पी. व भारद्वाज, अमिता पाण्डेय. (2012). शिक्षा में अनुसंधान एवं सांख्यिकी. नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स.
- बेस्ट, जॉन डब्ल्यू. (1963). रिसर्च इन एजूकेशन. नई दिल्ली : प्रेन्टाइस हॉल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड.
- भार्गव, महेश. (2006). आधुनिक मनोविज्ञान परीक्षण एवं मापन. कचहरी घाट आगरा: पुस्तक प्रकाशन.
- रिाय, पारसनाथ. (2010). अनुसंधान परिचय. आगरा : लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक.
- लिंगक्विस्ट, इ एफ. (1970). स्टेटिस्टिकल एनालिसिस इन एजुकेशन रिसर्च. नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड एण्ड आईबी.एच. पब्लिशर्स कॉपरेशन.

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

समकालीन मानसिक स्वास्थ्य का यौगिक प्रबंधन

देवेश कुमार
शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (सम विश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड (249404)
डॉ. ऊधम सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल काँगड़ी (सम विश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड

शोध सार

वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य में निरन्तर कमी देखी जा रही है जिसकी पुष्टि विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट से होती है जिसमें बताया गया है कि जनवरी 2019 से जुलाई 2022 के बीच विश्व में मानसिक रोगियों की संख्या लगभग 970 मिलियन है। यह आँकड़ा भविष्य के लिए बहुत बड़ी परेशानी बन सकता है। चिंता, कुंठा, तनाव, आत्महत्या, सीजोनीया, अलगाव, डिस्टीमिया, बाइपोलर डिसऑर्डर, ओटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर, अटेंशन डेफिसिट, हाइपर एक्टिविटी डिसऑर्डर, कंडक्ट डिसऑर्डर, ईटिंग डिसऑर्डर, इडियोपैथिक डवलपमेंट इंटेलेक्चुअल डिसेबिलिटी आदि मानसिक रोग विकराल रूप ले रहे हैं। आधुनिक मनोविज्ञान भी इन मानसिक रोगों को दूर करने में अक्षम ही प्रतीत हो रहा है। इन मानसिक विकारों को दूर करने में योग के अभ्यास कारगर हैं। योग के अभ्यास शरीर के साथ-साथ मन पर कार्य करते हैं जिससे व्यक्ति शारीरिक व मानसिक रूप के स्वस्थ हो जाता है। योगिक जीवन शैली अपनाकर व्यक्ति मानसिक स्वास्थ्यता को प्राप्त कर सकता है। यम-नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, भावना चतुष्ट्य, योग निद्रा इत्यादि योग के साधन शरीर व मन को दृढ़ता प्रदान कर व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ बनाते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में समसामयिक मानसिक स्वास्थ्य, मानसिक विकार और उन विकारों को दूर करने के उपाय के रूप में योगिक प्रबंधन को सुझाया गया है।

बीज शब्द : मानसिक स्वास्थ्य, योग, आत्महत्या, चिंता, प्रबंधन।

प्रस्तावना

समसामयिक परिवेश में हम देखें तो कोविड-19 के बाद से समाज में बहुत बदलाव हुए हैं जिनमें नकारात्मकता की अधिकता रही है जिस कारण लोगों के मानसिक स्वास्थ्य में कमी देखी गई है। कोरोना काल में अनेक व्यक्तियों का रोजगार समाप्त हो गया, कुछ ने अपने करीबियों को खो दिया, कुछ लोगों की कंपनियाँ बन्द हो गयी, कुछ लोगों ने अकेलेपन का अनुभव किया और मानसिक विक्षिप्तता का शिकार हो गए व ऐसे ही न जाने कितनी नकारात्मक बातें सामने आयीं जिनकी वजह से मानसिक स्वास्थ्य में कमी आई है। वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य किस हद तक प्रभावित हुआ है इसका अंदाजा हम इस बात से लगा सकते हैं कि विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट 2022 के अनुसार वर्तमान में लगभग 970 मिलियन लोग मानसिक विकारों से पीड़ित हैं जिनमें औसतन 52.4 प्रतिशत महिलाएँ एवं 47.6 प्रतिशत पुरुष शामिल हैं।[1]

वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व में ही मानसिक स्वास्थ्य का स्तर गिरता जा रहा है। जिससे विभिन्न प्रकार के मानसिक विकार उत्पन्न हो रहे हैं। मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के लिए प्रतिवर्ष 10 अक्तूबर को विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस मनाया जाता है। इस बार भी यह **''वैश्विक प्राथमिकता के साथ सभी के लिए मानसिक स्वास्थ्य''** विषय के साथ मनाया गया और 2030 तक मानसिक रोगियों की संख्या को 70 प्रतिशत तक कम करने का लक्ष्य रखा गया।[2] विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य की परिभाषा दी है कि जो शारीरिक, मानसिक, भौतिक, तथा आध्यात्मिक रूप से सक्षम है वही व्यक्ति स्वस्थ है। मानसिक स्वास्थ्य की अनुपस्थिति में व्यक्ति को स्वस्थ नहीं माना जा सकता है। आयुर्वेद में भी कहा गया है कि जिसके त्रिदोष, त्रियोदश अग्नियाँ, सप्त धातु, मल का सही से निष्कासन, तथा आत्मा और इंद्रियों के साथ मन भी प्रसन्न हो वह स्थिति स्वास्थ्य कहलाती है। मानसिक प्रसन्नता के अभाव में व्यक्ति को स्वस्थ नहीं कहा जा सकता है। वशिष्ठ संहिता में मानसिक विकारों को आधि कहा गया है। फ्रायड के अनुसार मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है जिसके इदम (Id), अहं (Ego) तथा पराअहं (Super Ego) में संतुलन है यदि इनमें से किसी एक में भी कमी या अधिकता है तो मान लिया जाए कि व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए हमें मानसिक रूप से मजबूत होना पड़ेगा जिसके लिए हमें योग के अभ्यासों को जीवन में अपनाना होगा। योग के अभ्यासों से सम्पूर्ण विश्व को मानसिक स्वास्थ्य प्रदान किया जा सकता है।

मानसिक रोगों के कारण

1. आर्थिक कारण

- आर्थिक हानि- व्यापार, उद्योग आदि में अचानक से होने वाली हानि के कारण व्यक्ति उस आर्थिक दबाव को नहीं झेल पाता तब व्यक्ति मानसिक रूप से परेशान रहने लग जाता है।
- आर्थिक विपन्नता- जब व्यक्ति के पास परिवार चलाने के लिए पर्याप्त धन नहीं होता वह आर्थिक तंगी से जूझ रहा होता है तब आर्थिक विपन्नता के कारण भी व्यक्ति मानसिक विक्षिप्तता का शिकार हो जाता है।
- कर्जधारी होना- बैंक, साहूकारों से कर्ज लेकर जब व्यक्ति अपना जीवन यापन करता है और उस कर्ज की अदायगी समय से नहीं कर पाता है तब बैंक एवं साहूकारों द्वारा धन चुकाने का दबाव बनाए जाने के कारण व्यक्ति में मानसिक विकार उत्पन्न होने लग जाते हैं।

2. सामाजिक कारण

- सामाजिक प्रताड़ना-जब किसी व्यक्ति को समाज में रंग, जाति, लिंग, समुदाय, अमीर-गरीब तथा क्षेत्र आदि को लेकर प्रताड़ित किया जाता है तब भी व्यक्ति तनाव में आ जाता है।

3. भौतिक कारण

- शारीरिक स्वास्थ्य- जब व्यक्ति किसी असाध्य रोग से अत्यंत पीड़ित होता है। तब अपनी पीडा के कारण चिंता जैसे मानसिक रोग से ग्रस्त हो जाता है।
- शारीरिक अंग का भंग होना- जब व्यक्ति के किसी अंग विशेष की क्षति हो जाती है और उसकी देख-रेख करने वाला कोई नहीं रहता है तब भी व्यक्ति मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाता है।

4. भावनात्मक कारण

- करीबी का दूर होना- जब किसी व्यक्ति का कोई करीबी अचानक दूर हो जाता है जैसे किसी की मृत्यु हो जाना, तलाक हो जाना या प्रेम-संबंधों के चलते दूरियाँ आना। ऐसी स्थिति में भी व्यक्ति में मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।
- स्वाभिमान - जब किसी स्थान विशेष पर व्यक्ति को ऐसा अनुभव हो की समाज में उसकी प्रतिष्ठा कम हो गयी है या किसी प्रकार की ठेस पहुंची है। तब ऐसी स्थिति में भी व्यक्ति स्वयं को समाज में स्थापित नहीं कर पाता और मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाता है।

- अलगाव – जब व्यक्ति को ऐसा अनुभव होता है की अब समाज में उसका कोई अपना नहीं है, व्यक्ति को अकेलेपन का अनुभव होने लगता है। व्यक्ति का मोह समाज से भंग होने लग जाता है।
- चिंता – जब व्यक्ति किसी कार्य विशेष को अपनी जिम्मेदारी समझता है और वह उस जिम्मेदारी को सही से पूर्ण नहीं कर पाता तो चिंता उसे घेर लेती है तब वह लंबे समय तक चिंतन करता रहता है। तब वह चिंता जैसे मानसिक रोगों से पीड़ित हो जाता है।
- कुंठा – जब व्यक्ति की आकांक्षाएँ अत्यधिक होती हैं वह उनको पूरा करने के लिए लगातार कार्य भी करता है किन्तु किन्हीं कारणों से आकांक्षाएँ पूर्ण नहीं होती व्यक्ति को हताशा ही मिलती है तब व्यक्ति कुंठित हो जाता है।
- भय– जब व्यक्ति किसी ऐसे कार्य को करता है जो समाज में निकृष्ट माना जाता है। उस निकृष्ट कार्य की सच्चाई को समाज के सामने न आने के लिए अनेक कार्य करता है। भय के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण वह तनाव और अवसाद में प्रवेश कर मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाता है।
- आत्मग्लानि– जब व्यक्ति समाज से छुप कर किसी ऐसे कार्य को करता है जो निकृष्ट होता है। जब उसे इस बात का एहसास होता है की जो उसने किया है वह अत्यंत ही घृणित है तब उसे आत्मग्लानि होती है। उसी आत्मग्लानि के चलते वह मानसिक रूप से परेशान होने लगता है।

5. पारिवारिक कारण

- परिवारिक कारण– परिवारिक कलह के कारण भी व्यक्ति मानसिक रूप से दबाव का अनुभव करता है जिसके कारण उसमें विभिन्न मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।
- अभिभावकों का दबाव– अभिभावकों द्वारा बच्चों पर लगातार दबाव बनाए रखना, जैसे परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने का दबाव, विशेष स्थान पर जाने या ना जाने का दबाव, दोस्तों के बीच न रहने का दबाव बच्चों में मानसिक अस्वस्थता को जन्म देता है।

6. शैक्षिक कारण

- अध्यापकों का दबाव– अध्यापकों का अपने छात्र–छात्राओं पर पढ़ाई व काम को लेकर लगातार दबाव बनाना भी तनाव उत्पन्न करता है। विभिन्न संस्थानों में अपने स्कूल कॉलेज का परिणाम सुधारने के लिए बच्चों पर लगातार दबाव बनाया जाता है जो उनमें तनाव उत्पन्न करता है। ऐसी स्थिति में बच्चों द्वारा आत्महत्या को अपनाया जाता है।
- बेरोजगारी– जब बहुत मेहनत करने के बाद भी रोजगार प्राप्त नहीं होता तब व्यक्ति परेशान हो जाता है और व्यक्ति मानसिक अस्वस्थ होने लगता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति आत्महत्या तक कर लेता है।

मानसिक रोगों के लक्षण

मानसिक रोगों के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार होते हैं –

1. व्यक्ति को अपने अस्तित्व की जानकारी नहीं होती है।
2. व्यक्ति कभी–कभी अपने आप हंसने लगता है तो कभी अपने आप ही रोने लगता है।
3. व्यक्ति स्वयं को समाज से भिन्न मानने लगता है उसमें अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
4. किसी एक ही बात को दोहराता रहता है। उसी बात का चिंतन करता रहता है।
5. व्यक्ति किसी एक बिन्दु को ही देखता रहता है।
6. व्यक्ति या तो बिलकुल शांत होता है या वह इधर–उधर भागता रहता है।

7. खाने-पीने में कमी हो जाती है या बहुत अधिक खाता रहता है।
8. किसी दूसरे व्यक्ति की बातों पर ज्यादा ध्यान नहीं दे पाता है। उसकी सम्प्रेषण की क्षमता कम हो जाती है।
9. व्यक्ति निराश एवं चिड़चिड़ा रहने लगता है।
10. व्यक्ति की आवाज सामान्य नहीं रहती वह या तो बहुत तेजी से बोलता है या बहुत धीमा बोलता है।

मानसिक रोग- विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वर्तमान में विभिन्न प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न हो रहे हैं जिनमें से कुछ मनोरोग निम्न प्रकार हैं-

अवसाद, तनाव, चिंता, सीजोफ़्रेनिया या मनोविदलता, डिस्टीमिया, बाइपोलर डिसऑर्डर, ओटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर, अटेंशन डेफिसिट, हाइपर एक्टिविटी डिसऑर्डर, कंडक्ट डिसऑर्डर, ईटिंग डिसऑर्डर, इडियोपैथिक डवलपमेंट इंटेलेक्चुअल डिसेबिलिटी आदि।

चरक के अनुसार मानसिक रोग- काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मद, शोक, चिंता, उद्वेग, भय, हर्ष, आदि।

मानसिक रोगों का योगिक प्रबंधन

1. यम - महर्षि पतंजलि कृत योग दर्शन में वर्णित अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। जो व्यक्ति के मानसिक स्तर को सुदृढ़ करते हैं।

- अहिंसा- किसी भी प्राणी को वचन, मन एवं कर्म से किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुंचाना। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि अहिंसा का पालन करने से सभी प्राणी बैर त्याग देते हैं। जब हम अहिंसा का पालन करेंगे तो हम मानसिक रूप से मजबूत रहेंगे।
- सत्य- महर्षि पतंजलि ने सत्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि जब हम निरंतर सत्य का पालन करते हैं तो हमारे मुख से जो भी वाणी निकलती है वह सत्य हो जाती है। सत्य बोलने से व्यक्ति की चेतना का विकास होता है।
- अस्तेय- अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। पतंजलि कहते हैं कि जब हम अस्तेय का पालन करते हैं तो हमारे सामने रत्न की पिटारियाँ खुल जाती हैं अर्थात् सभी प्रकार का धन हमारे सामने प्रकट हो जाता है। चोरी की भावना को त्यागने से मानसिक दृढ़ता आती है।
- ब्रह्मचर्य- ब्रह्मचर्य का पालन करने से वीर्य लाभ होता है जिससे हमारी स्मृति भी अच्छी होती है, अथर्ववेद में वर्णन प्राप्त है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से देवताओं ने मृत्यु पर विजय पायी है और उसी ब्रह्मचर्य से इन्द्र ने देवताओं पर शासन किया है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से हमारी ऊर्जा नष्ट नहीं होती जिससे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है।
- अपरिग्रह- अपरिग्रह से तात्पर्य है आवश्यकता से अधिक संपत्ति न रखना। हमें जितने की आवश्यकता हो केवल उतनी ही संपत्ति रखनी चाहिए किन्तु वर्तमान समय में मनुष्य की चेष्टाएँ अधिक प्रबल हो रही हैं जिस कारण व्यक्ति संपत्ति को अनेक अनैतिक रूप से अर्जित कर रहे हैं जिससे मानसिक विकार उत्पन्न हो रहे हैं जिनके संरक्षण के लिए हमें अपरिग्रह का पालन करना चाहिए।

2. नियम- शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं। जिन्हें महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में उल्लेखित किया है।

- शौच- शौच का शाब्दिक अर्थ है शुद्धि या सफाई। महर्षि पतंजलि शरीर की शुद्धि के साथ-साथ आंतरिक शुद्धि की बात कहते हैं। अर्थात् वे किसी भी प्रकार के द्वेष, क्लेश से मुक्त रहने की बात करते हैं। जब हम लोभ, मोह, ईर्ष्या, अहंकार आदि से मुक्त रहेंगे तो हमारा मानसिक स्वास्थ्य बना रहेगा।

- संतोष– संतोष का अर्थ है जो हमारे पास है उसी में खुश रहना अर्थात् संतुष्ट रहना। पतंजलि ने कहा है कि संतोष से उत्तम सुख कुछ और है ही नहीं। संतोष का पालन करेंगे तो आनंद की अनुभूति होगी और हम मानसिक रूप से स्वस्थ रहेंगे।
- तप– तप का अर्थ है किसी भी कार्य को सजगता के साथ मेहनत और लग्न से पूरा करना। हमें गलत कार्यों को छोड़ देना चाहिए, अच्छे कार्य करने चाहिए, ये ही हमारा तप है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि तप से शरीर और इंद्रियों की शुद्धि होती है। जिससे हमारा मन व शरीर स्वस्थ व तनाव मुक्त रहता है। हममें कष्टों को सहने की क्षमता आ जाती है, हमारा मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है।
- स्वाध्याय– स्वाध्याय का अर्थ है शास्त्रों का पठन-पाठन करना। महर्षि पतंजलि ने कहा है कि स्वाध्याय के पालन से ईष्ट देवता की प्राप्ति होती है। जब हम अच्छे शास्त्रों का पठन-पाठन करेंगे तो हमारे चित्त में निर्मलता आएगी हमें नैतिक ज्ञान की प्राप्ति होगी। स्वाध्याय का एक और सामान्य अर्थ अपने किए गए कर्मों का मूल्यांकन करना भी होता है।
- ईश्वर प्रणिधान– अपने किए गए कर्मों को ईश्वर के प्रति समर्पित करने के भाव को ईश्वर प्रणिधान कहा गया है। महर्षि पतंजलि ने इसका फल बताते हुए कहा है कि ईश्वर प्राणिधान से समाधि की सिद्धि होती है अपने कर्मों को ईश्वर के प्रति समर्पित कर मोह, लोभ, द्वेष, ईर्ष्या आदि से रहित होकर शुभ कार्यों का अनुष्ठान करने से मानसिक शक्ति दृढ़ होती है।

3. आसन– मानसिक दृढ़ता लाने के लिए शरीर का सुदृढ़ होना आवश्यक है। महर्षि घेरण्ड बताते हैं कि आसन के अभ्यास से दृढ़ता आती है। स्वामी स्वात्माराम जी आसन के लाभ के रूप में बताते हैं कि आसन के अभ्यास से शरीर पतला, अरोगी तथा अंगों में हल्कापन आता है। महर्षि पतंजलि सुख पूर्वक बैठने को आसन की संज्ञा देते हैं और आसन के फल के रूप में बताते हैं कि आसन से द्वंदों को सहने की क्षमता आ जाती है अर्थात् किसी भी प्रकार के कष्ट व्यक्ति को नहीं सताते हैं। योगचूड़ामण्युपनिषद् में कहा गया है की आसन के अभ्यास से रोगों का नाश होता है। अत: मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए आसनों का अभ्यास करना चाहिए। जैसे– सूर्यनमस्कार, मत्स्यासन, शीर्षासन, हलासन, सर्वांगासन, ताड़ासन, चक्रासन, पश्चिमोत्तानासन, त्रिकोणासन, उत्तानपादासन, आदि।

4. प्राणायाम– मानसिक रोगों को दूर करने में प्राणायाम का अभ्यास बहुत ही लाभकारी होता है। नकारात्मक विचारों को समाप्त करने के उपाय के रूप में महर्षि पतंजलि प्राण वायु को बारंबार बाहर निकालने तथा बाहर ही रोक कर रखने के अभ्यास की बात करते हैं अर्थात् बाह्य कुंभक की बात करते हैं, जिससे नकारात्मक विचारों का शमन होता हैं, मन शांत होता है, क्रोध शांत होता है। सोचने समझने की शक्ति का विकास होता है। महर्षि पतंजलि प्राणायाम की चार विधियों का वर्णन करते हैं बाह्य प्राणायाम (प्राण वायु को बाहर निकालना), आभ्यंतर प्राणायाम (प्राण वायु को अंदर ही रखना), स्तंभवृत्ति प्राणायाम (प्राण वायु को अंदर या बाहर कहीं भी रोकना) तथा विषयाक्षेपी प्राणायाम (प्राण वायु जहां है वहीं पर रोकना)। प्राणायाम का अभ्यास करने से मन की चंचलता शांत होती है। मन की चंचलता को शांत करने के लिए स्वामी स्वात्माराम जी प्राणायाम के अभ्यास का निर्देश देते हैं वे कहते हैं की जब तक प्राण वायु को वश में नहीं किया जाता है तब तक मन को भी वश में नहीं किया जा सकता प्राण वायु के साथ-साथ ही मन गतिमान है कुछ प्रमुख प्राणायाम निम्न प्रकार हैं– अनुलोम-विलोम, नाडीशोधन, भ्रामरी प्राणायाम, उज्जायी प्राणायाम, शीतली प्राणायाम आदि।

5. प्रत्याहार– प्रत्याहार का अर्थ है अपनी इंद्रियों को वश में करना। जब व्यक्ति के मन में किसी अन्य के प्रति द्वेष उत्पन्न हो जायें, जैसे की अपने प्रतिद्वंदी से आगे निकलने के लिए गलत विचार आयें, चोरी करने की भावना उत्पन्न हो जाए, हिंसादि प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगे तो उन नकारात्मक विचारों से बचने के लिए उनके प्रति प्रतिपक्ष की भावना रखने से वे स्वत: समाप्त हो जाते हैं। जैसे शत्रु के प्रति मित्रता का भाव आने पर शत्रुता में कमी आ जाती है। घेरण्ड ऋषि कहते हैं कि प्रत्याहार का पालन करने से धीरता आती है अर्थात् व्यक्ति धैर्यवान हो जाता है। धैर्यवान व्यक्ति मानसिक परेशानियों का सामना करने में सक्षम हो जाता है।

6. ध्यान- मन में उत्पन्न हुए द्वेष, क्लेश को दूर करने के लिए महर्षि पतंजलि ध्यान करने का निर्देश देते हैं। मन को स्थिर एवं शांत करने के उपाय के रूप में पतंजलि बताते हैं कि अपने ईष्ट देव का ध्यान करना चाहिए जिसके करने से मन शांत होता है। महर्षि पतंजलि बताते हैं कि उस ॐ रूपी प्रणव का ध्यान करना चाहिए। उस ओंकार का ध्यान करने से मन शांत और स्थिर होता है। दुख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास, प्रश्वास आदि विक्षेपों को दूर करने के लिए एकतत्व का अभ्यास बताया है। अर्थात् किसी भी एक वस्तु में ध्यान लगाने से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है। इसलिए हमें किसी भी एक वस्तु जैसे इष्ट देव आदि की मूर्ति का ध्यान करना चाहिए। घेरण्ड संहिता में कहा गया है कि ध्यान के अभ्यास से प्रत्यक्ष का ज्ञान होता है अर्थात् सही और गलत को पहचानने की शक्ति आ जाती है।

7. भावना चतुष्टय- चित्त अर्थात् मन को निर्मल करने के उपाय के रूप में महर्षि पतंजलि भावना चतुष्टय की बात करते हैं। वे बताते हैं कि जो सुखी व्यक्ति है उसके साथ मित्रता का भाव रखना चाहिए, जो दुखी व्यक्ति है उसके लिए करुणा या दया का भाव रखना चाहिए, पुण्य करने वाले व्यक्ति के साथ प्रसन्नता का भाव रखना चाहिए, तथा पापी व्यक्ति की हमेशा उपेक्षा करनी चाहिए। जब व्यक्ति इस प्रकार की भावना अपने मन में बना लेता है तो उसके मन में कभी भी नकारात्मक विचार उत्पन्न नहीं होते, उसके मन में उत्पन्न होने वाले नकारात्मक विचार स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

8. योग निद्रा- योग निद्रा ऐसी निद्रा होती है जिसमें शरीर के अंगों में चेतना को घुमाया जाता है और ऐसा अनुभव कराया जाता है कि हम जो कर रहे हैं वह हमारे सामने घटित हो रहा है तनाव, चिंता, कुंठा आदि को दूर करने में यह सबसे महत्वपूर्ण है। योग निद्रा के अभ्यास से शरीर की थकान दूर होती है तथा व्यक्ति शारीरिक रूप से भी स्वास्थ होता है। योग निद्रा शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक विश्रान्ति लाने का एक सुव्यवस्थित तरीका है।

निष्कर्ष

योग के अभ्यास शरीर के साथ-साथ मन पर नियंत्रण रख कर शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्यता प्रदान करते हैं, यम-नियम, प्राणायाम, तथा भावना चतुष्टय के पालन से मानसिक शक्ति का विकास होता है। ध्यान करने से मन एकाग्र एवं शांत होता है। आसन व मुद्रा के अभ्यास से शरीर में दृढ़ता आती है व शरीर लचीला एवं सुगठित होता है, योग निद्रा के अभ्यास से मानसिक संवेदनाएँ शांत होती हैं। भौतिकीय शरीर, शांति, अध्यात्म, मानसिक एकाग्रता व भावनात्मक स्थिरता को विकसित करने में योग उपयुक्त है। अतः हम यह कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य के प्रबंधन हेतु योग उचित मार्ग है।

सन्दर्भ

1. World mental health report ¼transforming mental health for all½] ISBN 978&92&4&004933&8 ¼electronic version½ world health organization 2022- https:@@www-who-int@publications@i @item@9789240049338-date access:14/01/2023.
2. 2https:@@wwwwhoint@data@gho@data@major&themes@health&and&wellbeing#:~:teÛt¾% 20WHO%20constitution%20states%3A%20%22Health]of%20mental%2 0disor ders% 20or%20 disab ilities- The date access:14/01/2023.
3. समदोषः समाग्निश्च, समधातु मलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।। सू.स. सूत्रस्थान 15/10.
4. योग वाशिष्ठ (महारामायण), 2016. श्री नंदलाल दशोरा, रणधीर प्रकाशन रेलवे रोड हरिद्वार, पृ. सं. 335.
5. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, 2017. डॉ. अरुण कुमार सिंह एवं डॉ. आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, 41 यू.ए. बंगलो रोड जवाहर नगर दिल्ली, 1100007. पृ स. 437.
6. चरक विज्ञान 6/5.
7. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ योग दर्शन 2/30 ॥
8. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागाः ॥ योग दर्शन 2/35 ॥

9. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम॥ योग दर्शन 2/36 ॥
10. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम॥ योग दर्शन 2/37 ॥
11. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ योग दर्शन 2/38 ॥
12. ब्रह्मचर्येण तपसा देवानमृत्युपाघ्नतः इन्द्रोः ब्रहमचर्येण देवेभ्यस्वराभरत ॥ अथर्ववेद 11/5/19 ॥
13. शौचसंतोषतपस्वाध्यायईश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ योग दर्शन 2/32 ॥
14. सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रेन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वनि च॥ योग दर्शन 2/41॥
15. संतोषादानुत्तमरू सुखलाभः॥ योग दर्शन 2/42॥
16. कायेंद्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयातपसः ॥ योग दर्शन 2/43॥
17. स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः॥ योग दर्शन 2/44॥
18. समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात॥ योग दर्शन 2/45॥
19. आसनेन भवेद्दृढ़म॥ घेरण्ड संहिता 10॥
20. कूर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम॥ हठ्प्रदीपिका 1/17॥
21. स्थिरसुखमासनम्॥ योग दर्शन 2/46॥
22. आसनेन रुजं हन्ति प्राणायामेन पातकाम। विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुच्चति॥ योगचूड़ामणयोपनिषद् 109॥
23. ततोः द्वंद्वानभिघातः॥ योग दर्शन 2/48॥
24. प्रच्छर्दनविधारणाभ्याम वा प्राणस्य ॥ योग दर्शन 1/34॥
25. बाह्यभ्यंतरस्तंभवृत्तिदेशकालसंख्याभिः परिदृष्टों दीर्घसूक्ष्मः।योग दर्शन 2/50॥
26. चलेवाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत। योगी स्थाणुप्नोती ततो वायुं निरोधयेत॥ हठ्प्रदीपिका 2/2॥
27. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम ॥ योग दर्शन 2/33 ॥
28. प्रत्याहारेण धीरता॥ घेरण्ड संहिता 11॥
29. यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ योग दर्शन 1/39 ॥
30. तस्य वाचकः प्रणवः॥ योग दर्शन 1/27॥
31. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः ॥ योग दर्शन 1/32 ॥
32. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ योग दर्शन 1/33 ॥
33. योग निद्रा, स्वामी सत्यानंद सरस्वती, पेज न. 1

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

राजस्थान में हिन्दी की सचित्र पाण्डुलिपियों के चित्रों का कलात्मक तत्त्वों के आधार पर विवेचना

डॉ. महेन्द्र कुमार डेहरा
अतिथि सहायक आचार्य, चित्रकला विभाग, राजकीय महाविद्यालय अटरू (बारां), राजस्थान

शोध सारांश

राजस्थानी चित्रकला भारत की चित्रण-पद्धति में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अन्य चित्रण शैलियों की भाँति यह शैली भी चित्रण की मूलभूत विशिष्टताओं के कारण वस्तुगत सौन्दर्य-दृष्टि से मापी जा सकती है। राजस्थानी चित्रकला का सम्बंध जनजीवन के पारिवारिक एवं सामाजिक परिपेक्ष्य से अधिक रहा है। इसलिए राजस्थानी समाज के तीज-त्यौहार, उत्सव, उनकी जीवन शैली, उनके सांस्कृतिक आचार-विचारों से यह चित्रकला प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जुड़ी हुई है। जहाँ भित्ति चित्रण से लोक जीवन तक की कला में विषय वस्तु और तकनीक का विस्तृत प्रयोग हुआ है।

भारतीय शिल्पशास्त्रों में रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य, योजना, सादृश्य और वर्णिका-भंग जैसे निर्दिष्ट 6 तत्त्वो का विस्तार से विवेचन हुआ है। पाश्चात्य विद्वानो ने भी समय समय पर रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत तथा अन्तराल को ध्यान में रखकर पाश्चात्य और पौरवात्य चित्रकला का विश्लेषण किया है। राजस्थानी चित्रकला की भावभूमि और कला पक्ष इतना समृद्ध है कि उसे चाहे किसी भी कोण से परखें वह उपर्युक्त मापदण्डो पर खरी उतरती है।[1]

मुख्य शब्द : अन्तराल, सादृश्य, परिपेक्ष्य, वर्णिका-भंग, रूप भेद, पत्र-वर्तना, आहैरिकवर्तना, बिन्दु वर्तना इत्यादि।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य राजस्थान की ग्रंथ परम्परा में सचित्र पाण्डुलिपियों के सम्बन्ध में विषयवस्तु को कलात्मक तत्त्व, रेखा, रूप, रंग, तान, पोत, अन्तराल और वर्णिका-भंग के आधार पर विवेचना करते हुए, राजस्थान की विभिन्न शैलियों तथा उपशैलियों के कलाकारों के द्वारा अपनी सूक्ष्म तुलिका का अलौलिक संसार प्रस्तुत किया। सामाजिक, धार्मिक, प्रेम नायक-नायिका भेद तथा संगीत के स्वरों को राग-रागिनी के रूप में मानवीयकरण कर रेखा और रंगों एवं अन्य कलात्मक तत्त्वों के सहयोग से विश्लेषित किया है। यह ऐसा विषय है जिसमें कला मर्मज्ञ एवं शोधार्थी और अधिक ज्ञान प्रदान करेंगे यह मेरी आकांक्षा है।

राजस्थानी चित्रकला में रेखांकन

चित्रकला में रेखांकन मूलभूत आधार तत्त्व है। चित्रकार जब अपनी कल्पना में मानचित्र बनाता है तो सर्वप्रथम रेखाएँ ही उसके मानस पर उभरती है, फिर वह रेखांकन कर अपनी कला को रूपायित करता है, इसलिए रेखांकन को चित्रकारी का आभूषण माना है।

चित्रकला में रेखांकन तीन प्रकार से की जाती है। पत्र-वर्तना, आहैरिक वर्तना और बिन्दु वर्तना। पत्र सदृश्य रेखाओं को पत्र वर्तना, अत्यन्त सूक्ष्म रेखाओं को आहैरिक वर्तना और स्तम्भयुक्त रेखाओं को बिन्दु-वर्तना कहते है। वैसे भी रेखाएँ स्वतंत्र रूप से अनेक प्रकार से खींची जा सकती है जिनका विशिष्ट दृष्टि से अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।[2]

राजस्थानी चित्रकला में रेखांकन का विस्तृत प्रयोग हुआ है। अजन्ता की कला की परम्परा को निभाने वाली राजस्थानी चित्रकला का रेखांकन अत्यधिक कौशलपूर्ण, लयात्मक और सधा हुआ है। घटनाओं का चित्रण, परिस्थिति, वातावरण तथा रूप का चित्रण रेखाओं की आकृतिमूलक संरचना के कारण राजस्थानी चित्रकला की विशेष देन है। ग्रन्थ चित्रण की परम्परा में कृष्ण चरित्र को आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकला के लगभग सभी स्कूलों मे बहुलता से चित्रण हुआ है। कृष्ण और राधा के अंग-प्रत्यंगों की लिखावट, उनकी वेशभूषा का बारीक अंकन, प्रकृति का सुरम्य वातावरण, पशु-पक्षियों का चित्रण आदि को चितेरों ने जिस कौशल से रेखांकित किया है, वह आगे की पहाड़ी कला के लिए एक प्रकार से मापदण्ड बन गया।[3]

राजस्थानी चित्रकला में रूप-विधान

कला समीक्षकों और सौन्दर्य शास्त्रियों ने 'रूप' को कलाकृति में विशेष स्थान माना है। रूप का कार्य विषयवस्तु के अर्थ को सामने लाना है, जैसे ही रेखीय हलचल किसी भी पृष्ठभूमि पर होती है तो रूप की निर्मिति आरम्भ हो जाती है और धीरे-धीरे चित्र अपना आकार ग्रहण करने लगता है। चित्रकार रूप-सृजन करता है, वह मानस-चित्रो को चित्रतल पर दृश्य रूप प्रदान कर अपनी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करता है।[4]

मेवाड़ स्कूल में जहाँ ठिगने कद-काठी के नर-नारियों का रूप रेखांकित है, वहीं बीकानेर, किशनगढ़ में लम्बे, इकहरे कद के रूपाकार विशेष दृष्टव्य है। बूँदी शैली में गढ़े हुये बदन, ऊर्जायुक्त रेखांकन से निर्मित अंग-प्रत्यंग गोलाकार लयात्मक राजसी ठाट-बाट से युक्त गवाक्ष और आलंकारिक सूक्ष्म एवं यर्थाथ मनोहारी प्राकृतिक उपकरणों का रूपांकन भारतीय प्रतीकों जैसे- कमल, खंजन, मृग, नारियल, केले के गाछ, कमल-नाल, कनक-कलश, चकोर आदि के अनुकूल हुआ है।

नारी की देह-यष्टि रूप का खजाना है, इसलिए राजस्थानी चित्रकला के चितेरों ने अलग-अलग शैलियों में नारी-देह के रूपांकन में जो प्रयोग किये है उसके कारण किशनगढ़, बूँदी शैलियाँ तो जगत प्रसिद्ध हो गयी है।

चित्रों की पृष्ठभूमि के हिसाब से मेवाड़ में कदम्ब के वृक्ष, किशनगढ़ शैली में केले के गाछ, कोटा-बूँदी में खजूर के वृक्ष, जयपुर-अलवर में पीपल अथवा वट वृक्ष अधिक रूपांकित हुये है। इसी तरह विभिन्न शैलियों में पशु-पक्षियों का रूपांकन भी परिवेश के अनुकूल ही हुआ है। जोधपुर, बीकानेर शैलियों में ऊँट, घोडे, चील, कौवे तो उदयपुर में हाथी, चकोर नाथद्वारा में गाय-बछड़े तथा कोटा-बूँदी में शेर, हिरण, बतख, सारस आदि का रूपांकन बड़े ही मनोयाग से हुआ है।

राजस्थान के कलाकारों ने भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल अपनी विशिष्टता के अनुसार जो रूपांकन किया है, उसी के कारण यहाँ की भिन्न शैलियाँ और उपशैलियाँ बन गयी। रूप की निर्मिति ने इन शैलियों की निश्चय ही अलग पहचान कायम की है।

राजस्थानी चित्रकला में वर्ण-योजना

विषय की अनुकूलता के आधार पर राजस्थानी चित्रकला के अनुरूप वर्ण-संयोजन तथा विरोधी वर्ण-योजना का खुलकर प्रयोग हुआ है। सर्वाधिक अनुरूप वर्ण योजना किशनगढ़ शैली में उसके रंगों की कोमलता तथा हल्की रंगत के कारण हुआ है। दूर-दूर तक फैली हल्की स्लेटी झील, झील में तैरते श्वेत हंस, बतख, सारस, तैरती गैरूई रंग की नौका और उसमें प्रेमालाप करते पारदर्शी कपड़ो से सुसज्जित राधा-कृष्ण तथा दूर हल्के श्वेत एवं गुलाबी रंग में पुते महल, अट्टालिकाएं आदि अनुरूप वर्ण-संयोजन के अनुपम उदाहरण है। इसी प्रकार अन्य शैलियों के 18वीं-19वीं शताब्दी के चित्रों में यह योजना बहुलता से देखी जा सकती है। स्त्री एवं पुरूष आकृतियों की वेशभूषा तथा अलंकरण में अनुरूप वर्ण-संयोजन का पूरा ध्यान रखा गया है। दामिनी-सी, दीपशिखा-सी, कनकलता-सी तथा चम्पकली-सी राधा के गौर-वर्ण के अनुकूल ही जरीकोर की चुन्नी, पीत-पातम्बर, पीत चोली तथा स्वर्णिम वस्त्राभूषणों से उसे सुसज्जित किया गया है। कहीं हल्के लाल रंगों की आभा पूरे चित्र में प्रभावशाली हो गयी है। मेवाड़ शैली के चित्रों में यह लालिमा विशेष दर्शनीय है। राधा को गोरा रंग, बिम्बफल से अधर, ललाट

पर रोली की बिन्दी, पाँवों में महावर, लाल साड़ी, लाल चोली, लाल लहंगा आदि से सुसज्जित अंग और इन सबके ऊपर रतनारे नयन अनुरूप वर्ण–योजना के अन्यतम उदाहरण है। अलवर शैली के चित्रों में भी यह आभा प्रकृति–परिवेश सहित देखी जा सकती है। अन्य शैलियो के चित्रों में भी कलाकारों ने अनुरूप वर्ण–संयोजन का खुलकर प्रयोग किया है।[5]

राजस्थानी चित्रकला की लगभग सभी शैलियों में विरोधी रंग–संयोजन का आकर्षक ढंग से प्रयोग हुआ है। रीतिकालीन साहित्य की भाँति राजस्थान के सामंती दरबारी जीवन में राधा–कृष्ण की श्रृंगारी लीलाओं का प्रभाव अधिक होने के कारण राजा–रानियों, नायक–नायिकाओं, राग–रागनियों, उत्सव–त्योहारों, जुलूसों, दरबारों आदि के चित्रण में विरोधी रंग–योजना का खुलकर प्रयोग हुआ है। नायक को कृष्ण और नायिका को राधा के रूप में चित्रित करने की जो परम्परा चली, वह स्वयं विरोधी रंग–योजन की प्रतीक है। कृष्ण साँवले और राधा गोरी। दोनो जब गलबाँही डालकर चलते है तो विरोधी रंग की छटा खिल उठती है। राधा कनकलता और चम्पकली–सी है तो कृष्ण समुद्र नीलकमल जैसे हैं। कृष्ण बादल है तो राधा बिजली। श्याम शरीर पर पीताम्बर तो गौर शरीर पर नीलम्बर। इस प्रकार राजस्थानी चित्रकला में युगल छवि का चित्रण 18वीं शताब्दी में बहुलता से हुआ है। इस दृष्टि से बूँदी, किशनगढ़, जयपुर, अलवर शैलियों में यह रंग योजना युगल–छवि के चित्रांकन में विशेष उल्लेखनीय है।

जोधपुर शैली, बूँदी शैली, बीकानेर शैली, किशनगढ़ शैली के स्थापत्य में महल–मालिए, बारहदरी, श्वेत रंग की है तो उनकी आन्तरिक सज्जा में लाल, नीचे पीले रंगो के गलीचे और चिकें तथा पर्दे विरोधी रंग योजना के है जिससे उनकी आभा द्विगुणित हो उठती है। प्रकृति–परिवेश में भी बूँदी–कोटा के कलाकारों ने विराधी रंगों के आकर्षण को अपनी चरम सीमा तक पहुँचा दिया है।

राजस्थानी चित्रकला में तान

वर्ण–संयोजन और तान के चित्रण में चोली–दामन का साथ है। वर्ण–नियोजन से ही तान की विशिष्टता की जानकारी मिलती है। असल में रंगत के गहरे या हल्के का संकेत ही तान कहलाती है। किसी भी वर्ण में सफेद या काले रंग की मात्रा के अन्तर से उसकी तान का अन्दाज कर सकते है, इस लिए तान किसी भी चित्र में प्रयुक्त वर्ण–संयोजन का मूलाधार है।[6]

चित्र में छाया से माध्यम और प्रकाश की ओर रंगों की बढ़त या घटत से चित्र की तान की पहचान सहजता से हो जाती है। चित्रकला में वर्णो की सूचक अवस्था में तान का प्रभाव बहुत कम देखने को मिलता है, जबकि संयोजन अवस्था में परम्परा टूटने लगती है तथा रंगो का सम्बंध 'टोन' से आबद्ध होकर 'हारमनी' की ओर अग्रसर होता है। तान के प्रयोग से ही द्वि–आयामी तल पर त्रि–आयामी गुण उत्पन्न किया जा सकता है। यह ऐसा कला–तत्त्व है जिसके प्रयोग से चित्र की एकरसता को सरस और आकर्षक बनाया जा सकता है।

राजस्थानी चित्रकला के प्रारम्भिक चित्रों में लोक–कलात्मक प्रभाव होने के कारण सीधे–सीधे सूचक रंगों का प्रयोग हुआ है जिसके फलस्वरूप तान का जादू नगण्य है। यही कारण है कि प्रारम्भिक मेवाड़ स्कूल के चित्रों में तथा बाद के ऐसे चित्रों में जिन पर मेवाड़ी प्रारम्भिक प्रभाव है, तान के कारण उत्पन्न सरसता तथा त्रि–आयामी प्रभाव बहुत कम देखने को मिलता है। छाया आर प्रकाश का जादू भी कम है। जैन कला में अकड़े हुए आसन, ठोस आकृतियाँ तथा परिपेक्ष्य का अभाव से सारे प्रभाव प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रकला में भी आये है, जो तान की कमी को प्रदर्शित करते है। छाया और प्रकाश के अभाव में नैकट्य और दूरी का इन चित्रों में दिखाना असम्भव सा रहा है।

राजस्थानी चित्रकला में पोत

किसी वस्तु के धरातल का गुण पोत कहलाता है। राजस्थानी चित्रकला में चित्रकारों ने भित्ति, कागज, कपड़ा, ताड़पत्र, हाथी दाँत, लकड़ी की पट्टिकाएँ आदि को चित्रण का आधार बनाया गया, अत: उन माध्यमों के धरातलीय गुण का उन्होंने चित्र बनाते समय विशेष ध्यान रखा है। उसके गुण के अनुसार ही उन्होंने रंगमेजी कर समूचे धरातल की अनुभूति को पोत–निर्माण करके अभिव्यक्त किया है।

राजस्थानी चित्रकला का विकास अजंता और एलौरा की भित्ति चित्रण परम्परा में हुआ है। अत: राजस्थान में भित्ति–चित्रण के उदाहरण सर्वाधिक मिलते है। इस ठोस धरातल की निर्मिति की तकनीक विशिष्ट रही है तथा चित्र निर्माण का प्रारूप

भी अन्य माध्यमों से अलग है। इसलिए भित्ति पर पोत कार्य अपना अलग अस्तित्व रखता है। निश्चय ही कपड़े और कागज पर जो टेक्सचर उभर कर आता है, वह अधिक कोमल, लालित्यपूर्ण एवं लचीला हो सकता है। इसलिए धरातल के गुण को उभारने के लिए सचित्र ग्रंथ एवं लघुचित्र निर्माताओं ने राजस्थानी चित्रकला में अपनी कारीगरी और बारीकी दिखाने की भरसक कोशिश की है। 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी मध्य तक इस दृष्टि से उन्होने अनेक प्रयोग किये है।[7]

राजस्थानी चित्रकला में अन्तराल

राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में लघु चित्रण की परम्परा का विशाल भण्डार देशी-विदेशी, राजकीय एवं व्यक्तिगत संग्रहालयों में भरा पड़ा है। 18वीं शताब्दी तक के लघु चित्रों के फलक जहाँ सामान्यत: छोटे आकार में उपलब्ध होते है, वहीं 19वीं शताब्दी में बने चित्र कुछ बड़े आकार में भी मिलते है। लघु चित्रों में सम्पूर्ण चित्र का सामंजस्य बैठाने के लिए चितेरों ने फलक के अन्तराल को बड़ी सूझबूझ के साथ बाँटा है। बहुत से चित्रों में लगभग चौथे या पाँचवें ऊपरी भाग को पीली घरती से (गऊ गोली) रंगकर उसमें सम्बन्धित पद या शीर्षक काली स्याही से लिखा गया है। उसके नीचे बादल, आकाश, प्रकृति-परिवेश या महल एवं पद के अनुकूल विषय का अंकन किया गया है।

राजस्थानी चित्रकला के अधिकतर लघु चित्रों में कथा वस्तु के अनुरूप स्थान की रिक्तता, आकृति की बनावट, प्रकृति-परिवेश और पशु-पक्षियों का आलेख तथा रंगों का प्रयोग इस प्रकार किया गया है जिससे भूमि-बंधन की प्रक्रिया शास्त्रोक्त एवं विशाल दृष्टिकोण की द्योतक है। कहीं सशक्त रेखांकन, कहीं आकृति-भार और कहीं रंगों के सामंजस्य द्वारा अन्तराल को सक्रिय बना दिया है और इस प्रकार चित्रकार के मान सचित्र चाक्षुष चित्रों में युगों से बदलते चले गये है।

उपसंहार

राजस्थानी चित्रकला के लघुचित्र स्थिर, तीव्र-गत्यात्मक एवं मंद-गत्यात्मक श्रेणी में बाँट कर भी देखे जा सकते है। प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रों में अपभ्रंश एवं जैन शैली का अधिक प्रभाव रहा है। इसलिए उनमें एक ठोस अकड़ और स्थिरता अधिक झलकती है। इसी प्रकार बाद के व्यक्ति चित्रो एवं सबीहो में फोटोग्राफी के प्रभाव के कारण भी स्थिरता स्वाभाविक है। समूह चित्रों जैसे- युद्ध, आखेट, उत्सव, सवारी, दरबारी, महफिल, रागरंग आदि में गत्यात्मकता दर्शनीय है। कृष्ण-चरित्र सम्बंधी समूह चित्रों में भी यह गति देखी जा सकती है।

इस प्रकार राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियाँ कला तत्त्वों के आधार पर खरी उतरती है। अजन्ता, एलौरा की परम्परा का निर्वाह करने वाली यह कला, कला के सिद्धान्तों के आधार पर होते हुए भी नये-नये प्रयोगो और पारस्परिक प्रभावों से भी वंचित नही रही। राजस्थान की अधिकतर रियासतों के राजा मुगल दरबार में बड़े-बड़े पदों पर आसीन थे। उन्हे बड़ी-बड़ी मनसब दारियाँ प्राप्त थी, अत: उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिम भारत के कोने-कोने में वे युद्धों पर जाते समय अपने कलाकारों को भी साथ ले जाते थे। वहाँ की परिस्थिति वेशभूषा, रहन-सहन तथा सांस्कृतिक अवदान से परिचित होने का उन्हे अवसर मिलता था, इसलिए सभी तरह के प्रभाव राजस्थानी कला में आना स्वाभाविक था।[8]

संदर्भ

1. नीरज जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला, जयपुर, 1994, पृ. 98
2. अग्रवाल आर.ए., रूपप्रद कला के मूलाधार, मेरठ, 1998, पृ. 4-5
3. नीरज जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य, जोधपुर, 2009, पृ. 114
4. राय निहार रंजन, भारतीय कला का अध्ययन, पृ. 115
5. नीरज जयसिंह, स्पलैण्डी ऑफ राजस्थानी पेंटिंग, फलक-21 व 39
6. अग्रवाल आर.ए. : रूपप्रद कला के मूलाधार, मेरठ, 1998, पृ. 25
7. नीरज जयसिंह : राजस्थानी चित्रकला, जयपुर, 1994, पृ. 106
8. चन्द्र प्रमोद : बूंदी पेंटिंग, नई दिल्ली, 1959, पृ. 15

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

लोकसभा चुनावों में राष्ट्रीय राजनीति दलों का प्रदर्शन : एक विश्लेषण

डॉ. अनुपम चतुर्वेदी
सहायक आचार्य – राजनीति विज्ञान, राजकीय बांगड़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पाली

शोध सारांश

दिसम्बर, 2022 में गुजरात विधानसभा चुनावों के परिणामों के बाद भारत में राष्ट्रीय राजनीतिक दल की मान्यता प्राप्त करने में आम आदमी पार्टी का नाम भी दर्ज हो गया हैं। आम आदमी पार्टी को राष्ट्रीय राजनीतिक दल की मान्यता मिलने पर भारत में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की भूमिका को लेकर एक नई बहस प्रारंभ हो गई। अनेक विद्ववानों एवं शोध–कर्त्ताओं ने प्रश्न उठाए कि क्या चुनाव आयोग द्वारा मान्यता देने भर से ही क्या किसी राजनीतिक दल का स्वरूप राष्ट्रीय हो जाता है? भारत में अब तक जिन राजनीतिक दलो को राष्ट्रीय दल की मान्यता दी गई क्या वे सभी राजनीतिक दल अखिल भारतीय स्वरूप रखते थे? क्या सभी राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की विचारधारा, दृष्टिकोण राष्ट्रीय कही जा सकती है?

इन सभी प्रश्नों के समाधान खोजने का प्रयास प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है तथा स्वातंत्र्योत्तर भारत में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के लोकसभा चुनावों में प्रदर्शन का तुलनात्मक विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

मूल शब्द : राष्ट्रीय चुनाव, राजनीतिक दल, चुनाव आयोग, विचारधारा, लोकसभा, दृष्टिकोण

मूल भाग

भारत में आजादी के बाद राजनीतिक दलों के पंजीकरण की व्यवस्था जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में की गई थी। लेकिन इस व्यवस्था में कुछ कमियां पाई गई तो निर्वाचन आयोग ने राजनीतिक दलों के मान्यता संबंधी नियमों के परितर्वन के लिए 1968 में चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आवंटन) आदेश पारित किया। 1968 में पारित इस आदेश में चुनाव आयोग समय–समय पर संशोधन करता रहता है ओर राजनीतिक दलों के मान्यता के आधार भी बदलते रहते है। वर्तमान समय में निर्वाचन प्रतीक (आरक्षण एवं आवंटन) आदेश 1968 में 2019 के लिए गए संशोधन के आधार पर राजनीतिक दलों को मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल और अमान्यता प्राप्त राजनीति दल दो श्रेणियों में बांटा गया है। मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय राजनीतिक दल और राज्य स्तरीय दल में विभाजित किया गया है। अन्य दलो को पंजीकृत – गैर मान्यता प्राप्त दल का दर्जा दिया जाता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों का लोकसभा चुनावों में प्रदर्शन

आजादी के बाद भारत में लोकसभा चुनावों में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के प्रदर्शन को हम चार भागों में श्रेणीबद्ध कर उनका तुलनात्मक विश्लेषण कर सकते है –

1. 1952 से 1967 के लोकसभा चुनावों तक राष्ट्रीय दलों का प्रदर्शन

2. 1971 से 1984 के लोकसभा चुनावों तक राष्ट्रीय दलों का प्रदर्शन
3. 1989 से 2004 के लोकसभा चुनावों तक राष्ट्रीय दलों का प्रदर्शन
4. 2009 से 2019 के लोकसभा चुनावों तक राष्ट्रीय दलों का प्रदर्शन

1. 1952 से 1967 तक लोकसभा चुनावों तक राष्ट्रीय दलों का प्रदर्शन

1952 से 1967 तक चार लोकसभा चुनाव सम्पन्न हुए थे, इन सभी चुनावों में कांग्रेस पार्टी का ही बोलबाला रहा क्योंकि राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में कांग्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका रही ओर पंडित नेहरू और पटेल जैसे करिश्माई नेताओं की उपस्थिति ने कांग्रेस पार्टी की विजय को सरल बना दिया। 1951–1952 के प्रथम लोकसभा चुनावों में कुल 14 दलों ने राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में भाग लिया। लेकिन अकेले कांग्रेस पार्टी ने ही कुल वैध मतों का 44.99 प्रतिशत प्राप्त किया ओर 364 सीटे प्राप्त की। शेष 13 राजनीतिक दलों को मिलाकर 31 प्रतिशत मत हासित हुए ओर उन्हें मात्र 54 सीटे ही प्राप्त हुई। इन 13 दलों की तुलना में राज्य स्तरीय दलों को 34 सीटे प्राप्त हुई जबकि 37 स्थान पर निर्दलीयों को प्राप्त हुई। कुल मिलाकर प्रथम लोकसभा चुनावों में कांग्रेस को छोड़कर किसी भी राष्ट्रीय दल का प्रदर्शन अपेक्षित नही रहा। प्रथम लोकसभा चुनाव में हिन्दू महासभा, रामराज्य परिषद ने राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में चुनाव लड़ा लेकिन भारतीय जनता ने इनकी विचारधारा को पूरी तरह नकार दिया।

1957 के दूसरे लोकसभा चुनाव में परिणाम अलग नहीं रहे, कुल 4 दलों को राष्ट्रीय दल का दर्जा दिया गया था अकेले कांग्रेस ने 47.78 प्रतिशत मत के साथ 371 स्थान प्राप्त किए, जबकि तीन अन्य राष्ट्रीय दलो का मिलाकर 25.3 प्रतिशत मत प्राप्त हुए ओर उन्हें मात्र 50 ही सीटों से संतोष करना पड़ा। 1962 के लोकसभा चुनावों में 6 राष्ट्रीय दल चुनाव मैदान में थे और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कांग्रेस को इस बार अन्य राष्ट्रीय दलों से कड़ी चुनौती मिलेगी, लेकिन परिणाम वहीं ढाक के तीन पात रहे अकेले कांग्रेस को 361 स्थान प्राप्त हुए जबकि अन्य पांच दलों को सम्मिलित मात्र 79 स्थान ही प्राप्त हुए। वस्तुतः इन तीनों ही चुनावों में नेहरू जी के करिश्माई नेतृत्व के सामने अन्य राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के नेता बौने ही साबित हुए। 1967 का लोकसभा चुनाव कांग्रेस ने इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में लडा। 1967 के आम चुनाव में राज्य–स्तर पर तो कांग्रेस का अधिपत्य टूटा, लेकिन लोकसभा चुनाव में कांग्रेस बहुमत प्राप्त कर गई। 1967 में 7 राष्ट्रीय दल मैदान में थे और कांग्रेस को छोड़कर शेष 6 दलों को 35.35 प्रतिशत मत प्राप्त हुए 157 लोकसभा स्थान प्राप्त हुए लेकिन विपक्षी दलों की फूट का सीधा फायदा कांग्रेस को हुआ ओर 40.78 प्रतिशत मत प्राप्त करने के बावजूद उसे 283 स्थान प्राप्त हुए जो कुल लोकसभा सीटों का 54.42 प्रतिशत था।

2. 1971 से 1984 तक लोकसभा चुनावों में राष्ट्रीय दलों का प्रदर्शन

1971 का लोकसभा चुनाव भारत–पाक युद्ध की पृष्ठभूमि में लडा गया, इस चुनाव में कांग्रेस पार्टी की विजय पर किसी को आंशका नहीं थी। कुल 8 दलों को राष्ट्रीय दल का दर्जा इस चुनाव में था लेकिन कांग्रेस ने 518 में से अकेले 352 सीट प्राप्त की। जबकि अन्य सात दलों ने संयुक्त 99 सीट प्राप्त की।

1977 का लोकसभा चुनाव लोकतंत्र बनाम तानाशाही के नाम पर लड़ा जा रहा था और विपक्ष कांग्रेस के खिलाफ एकजुट था। इस बार कांग्रेस के समक्ष अनेक पूर्व राष्ट्रीय दलों ने एक दल को जनता पार्टी के रूप में चुनाव लड़ा। कुल 5 राष्ट्रीय दलों ने चुनाव में भाग लिया। जनता पार्टी (भारतीय लोकदल के चुनाव चिन्ह पर चुनाव लड़ा) ने 41.32 प्रतिशत के साथ 295 सीटों पर विजयी प्राप्त की। जबकि कांग्रेस ने 34.52 प्रतिशत के साथ 154 सीटे प्राप्त की। चुनाव हारने के बावजूद कांग्रेस ने लगभग 35 प्रतिशत मत प्राप्त किए। 1980 के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस ने स्थिरता के मुद्दे पर चुनाव लड़ा और कुल 353 सीटे प्राप्त की जबकि अन्य पांच दलों को संयुक्त 132 सीटे ही प्राप्त हुई। 1984 का लोकसभा इन्दिरा गांधी की हत्या के कारण सहानुभूति के वातावरण में लड़ा गया। कुल 7 राष्ट्रीय दल मैदान में थे लेकिन कांग्रेस पार्टी रिकार्ड–तोड 49.18 प्रतिशत मत के स्थान लोकसभा 404 स्थानों पर विजय प्राप्त की। अन्य 6 राष्ट्रीय दलों को केवल 47 स्थानों से ही संतोष करना पड़ा।

3. 1989 से 2004 तक लोकसभा चुनावों में राष्ट्रीय दलों का प्रदर्शन

1989 का चुनाव भारतीय निर्वाचकीय राजनीति में मील का पत्थर माना जाता है क्योंकि गठबंधन सरकारों के युग का प्रारम्भ इसी लोकसभा चुनाव से हुआ। इसी चुनाव में पहली बार राष्ट्रीय दलों में कड़ी टक्कर देखने को मिली। जनता पार्टी के बाद जनता दल दूसरा राष्ट्रीय दल बना (कांग्रेस के अलावा) जिसे लोकसभा चुनाव में 100 से अधिक सीटे प्राप्त हुई। यानि 1951–1989 तक कांग्रेस के अलावा दो ही दल ऐसे थे जिन्हें 100 से ज्यादा सीटे मिली हो। भारतीय जनता पार्टी की लोकप्रियता भी इस चुनाव से ही प्रारम्भ हुई। इस चुनाव में 8 राष्ट्रीय दलों ने भाग लिया, हालांकि सबसे ज्यादा सीटे कांग्रेस पार्टी को ही प्राप्त हुई, लेकिन अन्य राष्ट्रीय दलों विशेषकर जनता दल, भाजपा एवं वाम दलों का प्रदर्शन भी काफी अच्छा रहा ओर 79.33 प्रतिशत मत के साथ राष्ट्रीय दलों ने 529 में से 471 स्थानों पर विजय दर्ज की। 1991 के लोकसभा चुनाव में 9 राष्ट्रीय दल ने भाग लिया और एक बार फिर कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी लेकिन उसे स्पष्ट बहुमत नहीं मिला तो दूसरी और भाजपा अपने जनाधार को बढ़ाने में सफल रही यद्यपि कांग्रेस की तुलना में वह काफी पीछे थी। जनता दल जो पिछले चुनाव में दूसरे नम्बर पर थी उसकी लोकप्रियता मे तेजी से कमी आने लगी। कम्युनिस्ट पार्टियों की स्थिति जस की तस बनी रही। राष्ट्रीय पार्टियों ने कुल 466 स्थान प्राप्त किए। 1996 के लोकसभा चुनाव में 8 दलों ने राष्ट्रीय दल के रूप में चुनाव लडा ओर इस चुनाव की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि भारतीय जनता पार्टी लोकसभा में स्थानों के आधार पर सबसे बड़ा राष्ट्रीय राजनीतिक दल बन गई और आजादी के बाद दूसरी बार कांग्रेस पार्टी को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। जनता पार्टी का पतन इस चुनावों में जारी रहा तथा शेष राष्ट्रीय दल कोई विशेष कमाल नहीं कर पाए। 543 में से 403 स्थान राष्ट्रीय पार्टियों को प्राप्त हुए। 1998 के लोकसभा चुनाव आते–आते देश अस्थिर गठबंधन सरकारों के भंवर में फंस चुका था। इन अस्थिर सरकारों का नेतृत्व राष्ट्रीय दल नही बल्कि राज्य स्तरीय दल कर रहे थे। 1998 में भारतीय जनता पार्टी ने अपनी सीटों की संख्या 182 कर दी, लेकिन वह बहुमत से काफी दूर ही बनी रही कांग्रेस के जनाधार में गिरावट का दौर जारी रहा। सबसे बुरी पराजय जनता दल को झेलनी पड़ी जिसने भारत को तीन प्रधानमंत्री दिये थे। 1989 में 143 सीटे जीतने वाली जनता दल को मात्र 6 ही सीटें ही प्राप्त हुई। इस चुनाव में राष्ट्रीय दलों को कुल 387 सीटें प्राप्त हुई।

1999 का लोकसभा चुनाव तो 1998 के लोकसभा चुनाव की पुनरावृत्ति ही कहा जा सकता है जो भारतीय जनता पार्टी के बढ़ते जनाधार एवं कांग्रेस की लोकप्रियता में कमी को दर्शाता है। शेष 5 राष्ट्रीय दलों की स्थिति में कोई उल्लेखनीय बात देखने की नहीं मिली। इस चुनाव में राष्ट्रीय दलों को 369 स्थान प्राप्त हुए क्योंकि क्षेत्रीय दलों की स्थिति इस दौर में काफी मजबूत थी।

2004 का लोकसभा चुनाव भारतीय जनता पार्टी ने अति आत्मविश्वास में फीलगुड और इंडिया शाइनिंग के नारे के साथ लड़ा लेकिन चुनाव परिणाम इसके ठीक उलट रहे। कांग्रेस पार्टी मामूली से अंतर पुनः भारत की सबसे बड़ी राष्ट्रीय पार्टी बन गई। राष्ट्रीय दलो को कुल 364 स्थान प्राप्त हुए।सीपीआई एवं सीपीएम ने भी इस चुनाव में संतोषजनक प्रदर्शन किया।

4. 2009 से 2019 तक लोकसभा चुनावों में राष्ट्रीय दलों का प्रदर्शन

2009 का लोकसभा चुनाव इसलिए महत्व रखता है कि क्योंकि 18 वर्षों बाद किसी राष्ट्रीय दल ने लोकसभा में 200 का आंकड़ा पुनः प्राप्त किया। इस चुनाव में कांग्रेस को 206 सीटें प्राप्त हुई और गठबंधन सरकारो के युग में किसी राष्ट्रीय दल को प्राप्त यह सर्वाधिक सीटे है। इस चुनाव में कांग्रेस के अतिरिक्त 6 राष्ट्रीय दलों ने भाग लिया, लेकिन उनका कोई विशेष असर देखने को नहीं मिला तथा राष्ट्रीय दलो ने कुल 376 स्थान प्राप्त किए।

2014 के लोकसभा चुनाव गहरी निराशा में डूबी भारतीय जनता पार्टी के लिए वरदान साबित हुए और कांग्रेस तथा जनता पार्टी के बाद वह तीसरी पार्टी बनी, जिसे लोकसभा चुनाव में पूर्ण बहुमत प्राप्त हो गया। भाजपा को 282 स्थान प्राप्त हुए जबकि कांग्रेस को इतिहास की सबसे बुरी पराजय का सामना करना और वह पहली बार 100 आंकड़ा नहीं छू पाई और मात्र 44 स्थानों पर ही सिमट गई। कुल 6 राष्ट्रीय दलों ने 342 स्थान प्राप्त किए और वामपंथी दलों की गिरावट का दौर जारी रहा।

2019 के लोकसभा चुनाव में 7 राष्ट्रीय दलों ने भाग लिया और भाजपा ने 303 स्थान प्राप्त किए और वह कांग्रेस के बाद दूसरी पार्टी बन जिसने लगातार दो लोकसभा चुनावों में पूर्ण बहुमत प्राप्त। शेष 6 राष्ट्रीय दलों के लिए यह चुनाव भी दु:स्वप्न ही साबित हुए। राष्ट्रीय दलों ने कुल 397 स्थान प्राप्त किए वामपंथी दलों को 5 स्थान ही प्राप्त हुए।

निष्कर्ष

आजादी के बाद राष्ट्रीय दलों के प्रदर्शन से निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते है –

1. भारतीय में लोकसभा चुनाव के परिणाम में यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक मात्र ऐसा राजनीतिक दल है जिसकी कश्मीर से कन्या कुमारी एवं पूर्व से पश्चिम तक उपस्थिति एवं स्वीकार्यता रही है। अब तक सम्पन्न 17 लोकसभा चुनाव में से 15 लोकसभा चुनावों में कांग्रेस को 100 या उससे अधिक लोकसभा सीटों पर विजय प्राप्त हुई। सोलहवीं लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस का न्यूनतम 44 सीटे प्राप्त हुई। कांग्रेस ने 1984 के लोकसभा चुनाव में 49.18 प्रतिशत मत प्राप्त किए जो आज तक किसी भी राष्ट्रीय दल द्वारा किसी भी राष्ट्रीय दल द्वारा प्राप्त सार्वधिक मत प्रतिशत है। कांग्रेस द्वारा 1984 के लोकसभा चुनाव में 404 सीटे प्राप्त की गई थी जो आज भी रिकार्ड है तथा दूसरे राष्ट्रीय दल ऐसे रिकॉर्ड से अभी भी काफी दूर है।

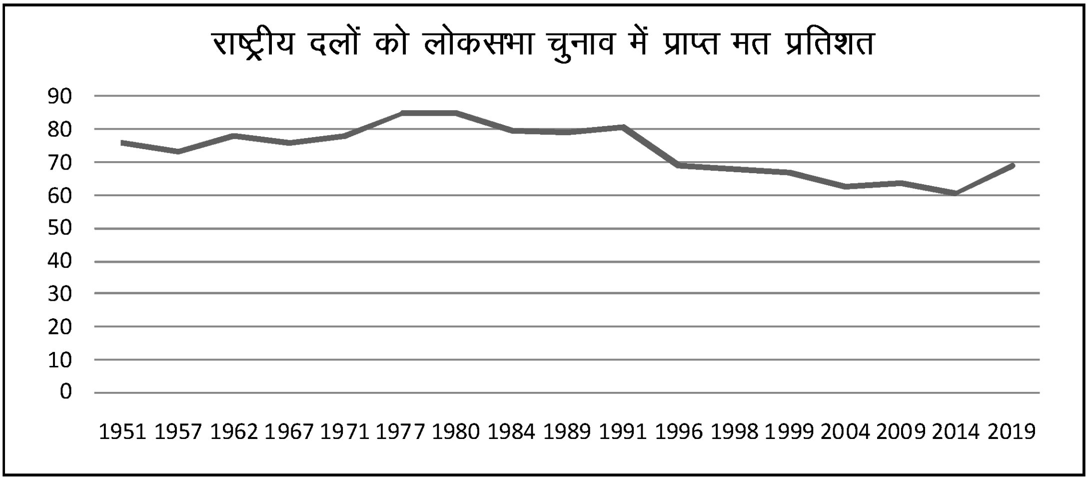

चित्र संख्या 1.1

2. भारतीय जनता पार्टी वह दूसरी पार्टी है जिसे सच्चे अर्थो में राष्ट्रीय पार्टी कहा जा सकता है। भारतीय जनता पार्टी भारत के सभी भौगोलिक क्षेत्रों में अपने जनाधार को बढ़ाने में कामयाब रही हैं हालांकि दक्षिण भारत में इसकी लोकप्रियता अभी भी सीमित क्षेत्र में ही है। 2014 में भारतीय जनता पार्टी ने भले ही पूर्ण बहुमत प्राप्त किया था लेकिन यह अब तक की सबसे कम मतों (31.34) से बनी पूर्ण बहुमत ही सरकार थी। 2019 में भारतीय जनता पार्टी ने 37.76 प्रतिशत मत प्राप्त कर अपनी लोकप्रियता बढ़ने के संकेत दिय थे।
3. कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (CPI) 1952 से 2019 तक सभी लोकसभा चुनाव लड़ने वाली कांग्रेस के बाद दूसरी पार्टी है। लेकिन सीपीआई भले ही राष्ट्रीय पार्टी है लेकिन तीसरे लोकसभा में उसे 29 लोकसभा स्थानों पर विजयी प्राप्त हुई थी उसके बाद उसके प्रदर्शन हमेशा नीचे ही रहा ओर 2014 में तो उसे मात्र 1 तथा 2019 में 2 सीटों से ही संतोष करना पड़ा
4. सीपीएम 1967 से 2019 तक लगातार चुनाव लड रही है लेकिन इसका प्रभाव पूरे देश में नहीं बल्कि पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा एवं केरल तक ही सीमित है फिर भी वह राष्ट्रीय पार्टी बनी हुई है। सीपीएम को 2014 में सबसे अधिक 43 स्थान प्राप्त हुए इसके बाद उसके प्रदर्शन में निरन्तर गिरावट दर्ज की जा सकती है। यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण

है कि वामंपथी दलों ने भी सम्मिलित रूप से वी.पी. सिंह (1989), देवगौडा (1996) इन्द्रकुमार गुजराल (1997) मनमोहनसिंह (2004) आदि प्रधानमंत्री की सरकार के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी लेकिन आज यह बेअसर साबित होते जा रहे है।

5. राष्ट्रीय दल के रूप में जनता दल को उदय बड़ी आशाओं के साथ हुआ था। जनता दल ने देश को तीन प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह, दैवगौडा और इन्द्रकुमार गुजराल दिए थे, लेकिन आज जनता दल के कितने टुकडे हो गए है ये इसके निर्माताओं को भी शायद पता नही होगा।
6. भारत में अनेक दलों को राष्ट्रीय दलों का चुनाव आयोग द्वारा दर्जा जाता रहा है, लेकिन 1951 में फारवर्ड ब्लॉक (रूइकार), रिवोल्यूक्शनरी कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया, 1989, जनता पार्टी (जेपी) लोकदल (बहुगुणा), 1991 में जनता दल (समाजवादी) एवं लोकदल 1996 में जनता पार्टी एवं 2014 में बहुजन समाज पार्टी को एक भी स्थान पर विजय प्राप्त नहीं हुई यानि राष्ट्रीय पार्टी होते हुए भी शून्य की स्थिति बन गई।
7. 2014 के लोकसभा चुनाव में राष्ट्रीय दलों न्यूनतम 342 सीट प्राप्त हुई जबकि 1980 के लोकसभा चुनाव में सर्वाधिक 485 सीट प्राप्त हुई थी।

अन्त में निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भारत के निर्वाचन आयोग को राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को मान्यता देने के आधार पर पुनर्विचार करना चाहिए तथा ऐसे मानदण्ड निश्चित करने चाहिए, राष्ट्रीय राजनीतिक दल शब्दावली को सार्थकता मिले।

संदर्भ

1. अमर उजाला, 8 दिसम्बर, 2022
2. दि इलेक्शन सिम्बल (रिजर्वेशन एंड अलॉटमेंट) ऑर्डर, 1968, चुनाव आयोग, नई दिल्ली।
3. *https://pib.gov.in>printrelease* (पहुंचा गया 18.01.2023)
4. *https://ndtv.in* (पहुंचा गया 18.01.2023)
5. स्टेटिकल रिपोर्ट्स ऑफ लोकसभा इलेक्शनस (1952-1967), इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
6. स्टेटिकल रिपोर्ट्स ऑफ लोकसभा इलेक्शनस (1971-1984), इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
7. स्टेटिकल रिपोर्ट्स ऑफ लोकसभा इलेक्शनस (1989-2004), इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
8. स्टेटिकल रिपोर्ट्स ऑफ लोकसभा इलेक्शनस (2009-2019), इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
9. इलेक्ट्रोरल स्टेटिक्स पॉकेट बुक, 2021, इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

जोधपुर शहर के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों पर कोविड–19 के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव एक अध्ययन

दुर्गा जाट
शोध विद्यार्थी, एपेक्स युनिर्वसिटी, जयपुर
डॉ. अल्पना शर्मा
रिसर्च गाईड, सह आचार्य, एपेक्स युनिर्वसिटी, जयपुर

संक्षेप

यह पेपर कोविड–19 महामारी के दौरान उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र–छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का एक लघु शोध है। इस शोध के परिणामों को ज्ञात करने के लिए सर्वेक्षण के माध्यम से अपने सिद्धान्तों की पुष्टि की गई है एवं दत्त संकलन हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली प्रयुक्त की गई है। शोध में न्यादर्श का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा किया गया है। औसत 100 बालक–बालिकाएँ जिसमें 50 बालक व 50 बालिकाएँ को न्यादर्श हेतु चुनाव किया है। शोधकत्री द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण करने एवं प्राकल्पनाओं की स्वीकृति या अस्वीकृति के द्वारा विषय को समझने में मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–टेस्ट का प्रयोग किया गया है। शोध में प्राप्त आंकड़ों के आधार – कोविड–19 के विनाशकारी प्रभाव स्पष्ट रूप से नजर आ रहे हैं। इस महामारी के बीच दुनिया एक बार लगभग रूक सी गई हैं जिसमें तनाव, चिन्ता, भय, उदासी और अकेलेपन का अनुभव, अवसाद सहित कई मानसिक विकार उत्पन्न हुए हैं जो व्यस्कों के साथ–साथ बच्चों में भी स्पष्ट रूप से नजर आ रहे हैं। बच्चों में बढ़ने वाला मानसिक तनाव से अवसाद की ओर बढ़ने लगता है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण बच्चों के मुकाबले शहरी बच्चों में मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएँ ज्यादा सामने आई है। गावों में जहाँ 6.9 प्रतिशत बच्चों में मानसिक समस्या है वहीं शहरों में यह 13.5 प्रतिशत है। विश्व में आई इस महामारी के प्रभाव को समझने की आवश्यकता तथा विश्व के सबसे छोटे नागरिकों को इस संकट और उसके प्रभावों से बचाने के लिए और अधिक समय, संसाधन एवं प्रयास पर बल दिया जाना चाहिए।

मुख्य शब्द : कोविड–19, मानसिक स्वास्थ्य, संवेगात्मक स्थिरता, सामंजस्य, सुरक्षा–असुरक्षा, आत्म अवधारणा।

प्रस्तावना

कोविड–19 महामारी का जिस तरह से देश और दुनिया में आक्रमण हुआ उससे सभी राष्ट्रों के सामने एक प्रमुख स्वास्थ्य संकट बनकर उभरा एवं विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्र इस महामारी की चपेट में आ गए। जिसमें 4.5 मिलियन से अधिक लोगों की जान चली गई और बड़ी संख्या में बचे हुए लोगों में संक्रमण के बाद की बिमारियों से पीड़ित हो गए। इस महामारी के प्रकोप पर काबू पाने के लिए सभी राष्ट्रों ने अपनी–अपनी जनता को सुरक्षित एवं स्वस्थ रखने के अथक प्रयास किए, जिसमें दुनिया

के अलग-अलग हिस्सों में बार-बार लगाए लॉकडॉउन, सोशल डिस्टेसिंग के प्रोटोकॉल, वैश्वीकृत दुनिया की एक-दूसरे के साथ मजबूती से जुड़ी हुई प्रणालियाँ पूरी तरह से बदल गई। इस वाइरस के प्रकोप पर काबू पाने के लिए सभी राष्ट्रों ने आने-जाने तथा सामाजिक मेल-मिलाप पर पाबन्दी लगा दी जिसके कारण दुनिया की 7.8 बिलियन की आबादी में तिहाई आबादी अपने घरों में बन्द रहने को मजबूर हो गई। इस महामारी के आक्रमण का अनिश्चित पूर्वानुमान इसके प्रभाव व उपचार के लिए सभी राष्ट्रों के सामने संसाधनों की भारी कमी और स्वास्थ्य संकट की देखभाल के लिए बिना जानकारी के उपायों को लागू करना, वित्तीय संकट, प्रशासन का परस्पर विरोधी संदेश प्रमुख ऐसे अनेक संकट आ पड़े।

जिसके कारण समाज के सभी क्षेत्रों एवं पहलुओं पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव और इसके प्रति सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रतिक्रिया निस्संदेह व्यापक भावनात्मक संकट और मानसिक बीमारी के बढ़े हुए जोखिम में योगदान करेगी। महामारी के बढ़ते जोखिम एवं प्रभावों को देखते हुए 30 जनवरी 2020 को WHO ने COVID-19 का प्रकोप अन्तर्राष्ट्रीय चिन्ता का एक सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल है।

अल्पावधि में रोग के प्रसार को रोकना एवं उसके संक्रमण का निवारण ने निम्न एवं मध्यम आय वाले सभी राष्ट्रों के निवासियों के भावनात्मक और मनौवैज्ञानिक स्वास्थ्य की नाजुक देखभाल प्रणाली उच्च जनसंख्या घनत्व और सीमित संसाधनों और सामाजिक सुरक्षा जाल के कारण बुरी तरह से प्रभावित किया। वहीं समाज का सबसे अधिक संवेदनशील हिस्सा शिक्षा को भी इसने बुरी तरह से प्रभावित किया, जिससे स्कूल, प्रारम्भिक बचपन शिक्षा और देखभाल सेवाएँ, विश्वविद्यालय और कॉलेज आदि को अधिकांश सरकारों ने COVID-19 के प्रसार को कम करने के प्रयास में अस्थायी रूप से बन्द करने का निर्णय लिया। 2021 तक महामारी के कारण लगभग 82.5 मिलियन विद्यार्थी प्रभावित हुए हैं।

सामान्य तौर पर कम शिक्षा के विकल्प होने से विश्व स्तर पर कम पैसे वाले लोगों पर असर पड़ा जबकि उच्च पूंजीवादी लोगों ने शिक्षा प्राप्त की है। परन्तु कोरोना महामारी के दौर में ह्यूमन राईट्स वाच ने अप्रेल 2020 से अप्रेल 2021 के बीच 60 देशों में 470 से अधिक छात्रों, अभिभावकों का साक्षात्कार किया जिसमें पाया कि मई 2021 तक 26 देशों में स्कूल पूरी तरह से बन्द थे और 55 देशों में केवल कुछ कक्षाओं के लिए खुले थे, यूनेस्कों के अनुसार दुनिया भर के स्कूल जाने वाले करीब 90 प्रतिशत बच्चों की शिक्षा महामारी में बाधित हुई है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक नया ट्रैकर जारी किया हैं जिसे हापकिन्स यूनिवर्सिटी वर्ल्ड बैंक और यूनिसेफ के आपसी सहयोग से बनाया है जिसमें पाया कि कोरोना महामारी से 166 करोड़ बच्चों की शिक्षा पर असर पड़ा है और लगभग 70 करोड़ बच्चे अपने घरों से ही शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। उपरोक्त आंकड़ों के अनुसार शिक्षा स्तर में आई गिरावट एक चिन्ता का विषय बनती जा रही है। कोविड-19 के प्रसार को रोकने के उद्देश्य से स्कूल/कॉलेज बन्द होने के कारण 1 बिलियन से अधिक बच्चों में पिछड़ने का खतरा है दुनिया के बच्चों की सीखने के लिए देश दुरस्थ शिक्षा कार्यक्रम लागू कर रहे हैं।

जिसमें नए ऑनलाईन कार्यक्रम ने शिक्षा को स्कूलों से परिवार और विद्यार्थियों में स्थानान्तरित कर दिया, परन्तु यह व्यवस्था निम्न आय वाले परिवारों एवं ग्रामीण परिवारों के लिए यह व्यवस्था कारगर साबित नहीं हो सकी क्योंकि इनके पास न तो एडराईड फोन है और न ही नेट की उचित व्यवस्था। साथ ही तकनीकी की नासमझ, पारिवारिक माहौल, घर में एक फोन और अधिक बच्चे, बार-बार तकनीकी समस्या, कई बच्चों-विशेष रूप से गरीब घरों में पर्सनल कम्प्यूटर, टी.वी. यहाँ तक कि रेडियो भी नहीं है जो मौजूदा सीखने की असमानताओं के प्रभावों को बढ़ाता है।

घर आधारित शिक्षा के लिए आवश्यक तकनीकों तक पहुँच की कमी, छात्रों के पास अपनी शिक्षा जारी रखने के सीमित साधन है। नतीजन कई लोगों को कभी स्कूल नहीं लौटने का जोखिम है।

किशोरों के कमजोर विकासात्मक चरण, संक्रमण के डर, घर में कैद नियमित स्कूल का छूट जाना, भौतिक दूरी के आदेश, ई शिक्षा प्रणाली, टी.वी. और सोशल मीडिया पर दिखाई जा रही खबरों में अस्पतालों के बाहर चीख-पुकार, ऑक्सीजन की कमी, रोते परिजन, घर पर किसी प्रियजन की मौत, समय अनिश्चिता, बदली दिनचर्या, सामाजिक अलगाव, माता-पिता की नौकरी छूट जाना, खेल-कूद की कमी, सूचना का अतिभार, अफवाहें और गलत सूचना हमें जीवन के नियन्त्रण से बाहर कर सकती है और यह स्पष्ट नहीं करती कि हमें क्या करना है। यह स्थिति किशोरों पर व्यापक रूप से प्रभावित कर सकती

है। क्योंकि कुछ किशोर आक्रामक स्वभाव के होते हैं तो कुछ अर्न्तमुखी इसलिए किशोरों की मानसिक स्थिति को समझा बहुत कठिन है, हम सच्चाई जानते हैं कि, आस-पास का माहौल बच्चों की भावनाओं या उनकी मन की स्थिति को प्रभावित करता है। कई बार किशोर अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों को अपने मन में बैठा लेते हैं और कभी-कभी वे अपने डर या चिन्ता को व्यक्त करने में भी सक्षम नहीं होते हैं। जिसके कारण वे मानसिक विकारों से पीड़ित हो सकते हैं।

अतः इस शोध का उद्देश्य वर्तमान कोविड-19 के प्रभाव से किशोरों में आए मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित किया है। मानसिक स्वास्थ्य भी कई रूपों से प्रभावित होता है प्रस्तुत शोध मानसिक स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों जिसमें संवेगात्मक स्थिरता, सामंजस्य, सुरक्षा-असुरक्षा, आत्म अवधारणा की स्थिति का ज्ञात करना है। ताकि समय रहते उनके अन्दर आए विभिन्न प्रभावों एवं विकारों की तरफ समाज का ध्यान आकर्षित किया जा सके एवं समय रहते इन विकारों का उपाय किया जा सकें।

अध्ययन का उद्देश्य

- उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों पर कोविड-19 का मानसिक स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन लिंग के संदर्भ में करना।

शोध विधि

उद्देश्यों की प्रकृति के अनुरूप विभिन्न विद्यालयों के कोरोना काल में अध्ययनरत उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं के लिए विवरणात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध उपकरणों के द्वारा संग्रहित प्रदत्तों के विश्लेषण में विवरणात्मक सांख्यिकी प्रयुक्त की गई।

शोध उपकरण

शोध कार्य की विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए स्वनिर्मित प्रश्नावली प्रस्तुत की गई।

न्यादर्श

शोध हेतु न्यादर्श चयन कोरोना काल में जोधपुर शहर के उच माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत 100 छात्र-छात्राओं का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया।

सांख्यिकी विश्लेषण

प्रस्तुत शोध में क्रान्तिक अनुपात के माध्यम से प्रदतों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है।

परिकल्पना-1

उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य के आयाम संवेगात्मक स्थिरता में सार्थक अन्तर नहीं हैं।

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक अन्तर
बालक	50	2.6	1.69	2.14	सार्थक अन्तर है।
बालिकाएँ	50	2.00	1.41		

उपर्युक्त सारणी में उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं में मानसिक स्वास्थ्य के आयाम संवेगात्मक स्थिरता तुलना करने पर मध्यमान क्रमशः 2.6 व 2.00 तथा मानक विचलन क्रमशः 1.69 व 1.41 प्राप्त हुआ। प्राप्तांकों के आधार पर गणना द्वारा क्रान्तिक अनुपात 2.14 प्राप्त हुआ यहाँ पर गणना द्वारा प्राप्त मान के आधार पर निष्कर्ष निकला कि दोनों के मानसिक स्वास्थ्य के आयाम संवेगात्मक स्थिरता में अन्तर आया है। अतः परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार जहाँ लड़कियों में संवेगात्मक स्थिरता में कमी पायी गई व अपेक्षाकृत लड़कों के वहीं अगर दोनों का संयुक्त रूप से देखें तो भी दोनों में मानसिक स्वास्थ्य के संवेगात्मक आयाम प्रभावित हुआ है।

परिकल्पना-2

उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य के आयाम सामंजस्य में सार्थक अन्तर नहीं हैं।

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक अन्तर
बालक	50	3.18	1.78	0.12	अन्तर असार्थक है।
बालिकाएँ	50	3.14	1.70		

उपर्युक्त सारणी में उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं में मानसिक स्वास्थ्य के आयाम सामंजस्य में तुलना करने पर मध्यमान क्रमश: 3.18 व 3.14 तथा मानक विचलन क्रमश: 1.78 व 1.70 प्राप्त हुआ। प्राप्तांकों के आधार पर गणना द्वारा क्रान्तिक अनुपात 0.12 प्राप्त हुआ। यहाँ पर गणना द्वारा प्राप्त मान के आधार पर निष्कर्ष निकला कि दोनों के मानसिक स्वास्थ्य के आयाम सामंजस्य में सार्थक अन्तर नहीं है। अत: परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। उपरोक्त आंकड़ों के अनुसार बालक एवं बालिकाओं के सामंजस्य में सार्थक अन्तर नहीं है। कोविड-19 के द्वारा बालक एवं बालिकाओं द्वारा समान रूप से सामंजस्य बनाए रखा है।

परिकल्पना-3

उच्च मध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य के आयाम सुरक्षा-असुरक्षा में सार्थक अन्तर नहीं है।

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक अन्तर
बालक	50	3.08	2.19	2.30	अन्तर सार्थक है।
बालिकाएँ	50	2.32	1.12		

उपर्युक्त सारणी में उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं में मानसिक स्वास्थ्य के आयाम सुरक्षा-असुरक्षा में तुलना करने पर मध्यमान क्रमश: 3.08 व 2.32 तथा मानक विचलन क्रमश: 2.19 व 1.12 प्राप्त हुआ। प्राप्तांकों के आधार पर गणना द्वारा क्रान्तिक अनुपात 2.30 प्राप्त हुआ। गणना द्वारा प्राप्त मान के आधार पर निष्कर्ष निकला कि दोनों के मानसिक स्वास्थ्य के आयाम सुरक्षा-असुरक्षा में सार्थक अन्तर है। अत: परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। उपरोक्त आंकड़ों के अनुसार जहाँ महामारी में लड़कियों ने अधिक असुरक्षित महसूस किया अपेक्षाकृत लड़कों के वे इस महामारी में सुरक्षा को लेकर अधिक प्रभावित हुई हैं।

परिकल्पना-4

उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य के आयाम आत्म अवधारण में सार्थक अन्तर नहीं है।

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक अन्तर
बालक	50	2.76	1.50	0.62	सार्थक अन्तर नहीं है।
बालिकाएँ	50	2.32	1.47		

उपर्युक्त सारणी में उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य के आयाम आत्मअवधारणा में तुलना करने पर मध्यमान क्रमश: 2.76 व 2.32 व प्रमाप विचलन क्रमश: 1.50 व 1.47 प्राप्त हुआ व प्राप्तांकों के गणना करने पर क्रान्तिक अनुपात 0.62 प्राप्त हुआ। यहाँ पर गणना द्वारा प्राप्त मान के आधार पर यह निष्कर्ष निकला कि छात्र एवं छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है। अत: परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। गणना द्वारा प्राप्त आंकड़ों के आधार पर कोरोना महामारी में छात्र एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य के आयाम आत्म-अवधारणा को समान रूप से प्रभावित किया है।

परिकल्पना-5

उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नहीं है।

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक अन्तर
बालक	50	10.88	3.31	2.80	अन्तर सार्थक है।
बालिकाएँ	50	9.56	2.23		

उपर्युक्त सारणी में उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य में तुलना करने पर मध्यमान क्रमशः 10.88 व 9.56 व प्रमाप विचलन क्रमशः 3.31 व 2.23 प्राप्त हुआ व प्राप्तांकों के गणना करने पर क्रान्तिक अनुपात 2.80 प्राप्त हुआ। यहाँ पर गणना द्वारा प्राप्त मान के आधार पर यह निष्कर्ष निकला कि छात्र एवं छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सार्थक अन्तर है अतः परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। उपरोक्त आंकड़ों के अनुसार कोरोना महामारी का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव छात्र-छात्राओं को प्रभावित किया है एवं छात्राओं को छात्रों की अपेक्षा अधिक प्रभावित किया है।

निष्कर्ष

प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कोविड-19 ने छात्र व छात्राओं दोनों को ही मानसिक रूप से प्रभावित किया है। वहीं मानसिक स्वास्थ्य के आयाम में संवेगात्मक रूप से लड़कियाँ लड़कों की तुलना में अधिक प्रभावित हुई है। व लड़के कम परन्तु इसका नकारात्मक प्रभाव दोनों पर पड़ा है।

मानसिक स्वास्थ्य आयाम सामंजस्य में दोनों समान रूप से प्रभावित हुए हैं एवं सुरक्षा-असुरक्षा को लेकर लड़कियाँ अधिक चिन्तनशील हुई हैं। वहीं लड़के कम परन्तु इसका भी कोरोनाकाल में प्रभाव नकारात्मक रहा है। मानसिक स्वास्थ्य के आयाम आत्मअवधारणा को लेकर दोनों समान रूप से प्रभावित हुए हैं। परन्तु इस पर भी कोरोना का नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

अन्ततः उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर यहां कहा जा सकता है कि कोरोना महामारी ने बालकों के मानसिक स्वास्थ्य के ऊपर बुरा असर डाला है। जिसके कारण उनमें तनाव, डिप्रेशन और अन्य शारीरिक समस्याएँ पनप सकती है। कई मनोवैज्ञानिकों की ओर से भी चेतावनी दी गई है कि महामारी का यह दौर बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है। उपरोक्त आंकड़े भी इसी ओर संकेत कर रहे हैं कि बच्चे कहीं न कहीं मानसिक तौर पर डिस्टर्ब हैं, कोरोना वायरस के संक्रमण के मद्देनजर बच्चों में भी चिंता या भय जैसी स्थितियाँ जन्म ले सकती है जो उनके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डाल सकती है। इसलिए उन्हें कहीं ज्यादा देखभाल की जरूरत है। और बच्चों को बड़ों के तनाव व हिंसा से दूर रखना जिससे उनके मन पर बुरा प्रभाव नहीं पड़े, क्वारंटाइन के दौर में बच्चों की भावना एवं मनोदशा में भी कई परिवर्तन आए हैं उनमें चिड़चिड़ापन बढ़ रहा, गुस्सा जाहिर कर रहे हैं और उनमें आक्रमकता बढ़ रही है ऐसे में इनको गंभीरता से लेने की जरूरत है, क्योंकि धीरे-धीरे यह तनाव गहरे अवसाद का रूप ले सकता है। अतः समय रहते इसके उपाय कर लेना अति आवश्यक है।

सुझाव

अधिकांश बच्चे जो कि घर, समाज एवं विद्यालय स्तर पर मानसिक, समायोजन एवं शैक्षिक समस्याओं से रूबरू होते हैं उनकी समस्याओं का समाधान करने हेतु अभिभावकों, शिक्षकों, समाज व परिवार के सदस्यों और सरकार द्वारा आवश्यक भौतिक, मनोवैज्ञानिक और बीमारी के भय से लड़ने की सुविधा प्रदान की जानी चाहिये। साथ ही किशोरावस्था में बालकों को अनुकूल वातावरण प्रदान करें जिससे वे अपनी भावनाओं को नियन्त्रित कर सकें। बालकों का समय-समय पर उनका शारीरिक परीक्षण करवायें एवं उनकी स्वास्थ्य संबंधी पहलू पर ध्यान देते रहे, अगर बच्चा शारीरिक रूप से स्वस्थ रहेगा तभी मानसिक रूप से स्वस्थ रह सकेगें एवं अपने शैक्षिक कार्य पर पूरा ध्यान दे पायेंगे। उनके आत्म सम्मान एवं वैयक्तिकता का सम्मान, उनकी प्रकृति का ज्ञान, मित्रतापूर्ण व्यवहार, वैयक्तिता विभिन्नताओं की पहचान, सहानुभूतिपूर्ण एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार,

उपयुक्त भाषण एवं यौन शिक्षा इत्यादि पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे वे संवेगात्मक एवं भावनात्मक, सुरक्षा-असुरक्षा एवं आत्मअवधारणा स्तर पर सुरक्षा का एहसास हो जिससे उनमें इस महामारी के भय से लड़ने एवं शिक्षा के क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन कर सकें।

सन्दर्भ

1. अग्रवाल, रामनारायण (1984), मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन और मूल्यांकन आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
2. अग्रवाल, जे.सी. (1968) : फण्डामेन्टल और एजुकेशन रिसर्च
3. गैरेट, हैनरी ई. (1981), शिक्षा मनोविज्ञान में सांख्यिकी का प्रयोग, लुधियाना : कल्याण पब्लिशर्स
4. गेस्ट, एन.टी., शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग
5. काल लोकेशन (1945), मैथकोलॉजी ऑफ एजुकेशन रिसर्च वाणी एजुकेशन
6. कपिल, एच. के., अनुसंधान परिचयन
7. कपिल, एच.के. (1984), अनुसंधान विधियाँ आगरा, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक
8. माथुर, एस.एस. (1985), शिक्षा मनोविज्ञान आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

नेशनल एलिजिबिलिटी एंड एंट्रेंस टेस्ट (नीट) के गुण एवं दोष

ममता चौधरी
शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान
डॉ. सपना गहलोत
शोध निर्देशिका, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

सारांश

नीट मेडिकल स्कूल में प्रवेश के लिए एक राष्ट्रीय स्तर की प्रवेश परीक्षा है। नीट परीक्षा छात्रों के उच्च माध्यमिक विषयों, विशेष रूप से उनके वैज्ञानिक विषयों पर आधारित है। नीट एक पात्रता और प्रवेश परीक्षा है। जहां एक ओर यह लगभग सभी चिकित्सा संस्थानों के लिए भारत में प्रवेश के लिए एक सामान्य परीक्षा है। यह प्रवेश पाने के लिए कई प्रवेश परीक्षाओं की तैयारी के लिए छात्रों के अनावश्यक प्रयास को कम करता है। यह छात्रों के लिए समय और पैसा बचाता है। यह छात्रों के मेधावी प्रदर्शन के आधार पर राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश पाने का अवसर पैदा करता है। वहीं दूसरी ओर यह परीक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में पड़ने वाले छात्रों के लिए परेशानी खड़ी कर रही है। क्योंकि कोचिंग क्लास की सुविधा उपलब्ध नहीं है, कई स्कूलों में आवश्यक संसाधन, शिक्षक और उचित अवसर नहीं हैं। नीट परीक्षा के दोनों पहलुओं पर विचार करते हुए, प्रस्तुत आलेख में इसका विस्तृत विवेचन किया गया है।

प्रस्तावना

आज की प्रतिस्पर्धा के युग में शिक्षा का स्वरूप दिनों-दिन बदलता जा रहा हैं। समाज का हर वर्ग अपने बच्चों की शिक्षा के लिए चिंतित नज़र आता है। तेजी से बढ़ते आर्थिक एवं वैज्ञानिक युग ने शिक्षा के महत्त्व को ओर बढ़ा दिया है। भारत की चिकित्सा शिक्षा प्रणाली दुनिया में सबसे बड़ी है। इसके कई स्नातक प्रवास करते हैं, और इन डॉक्टरों की शिक्षा की गुणवत्ता का वैश्विक प्रभाव पड़ता है। पिछले 35 वर्षों में भारत में मेडिकल स्कूलों की संख्या का विकास हुआ है, विशेषकर निजी क्षेत्र में। परीक्षाएं स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में एक बहुत ही सामान्य मूल्यांकन और मूल्यांकन उपकरण हैं। मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया ने केंद्र सरकार के अनुमोदन से मेडिकल और इंजीनियरिंग पाठ्यक्रमों के लिए एकल पात्रता सह प्रवेश परीक्षा का प्रावधान किया। इसे नेशनल एलिजिबिलिटी एंड एंट्रेंस टेस्ट (नीट) कहा गया। यह केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित किया गया था। नीट परीक्षा भारत में सभी मेडिकल उम्मीदवारों के लिए एक व्यापक या एकल प्रवेश परीक्षा बनाने के लिए एक पात्रता और प्रवेश परीक्षा है।

नीट परीक्षा में भाग लेने के लाभ

- नीट परीक्षा एक समान प्रक्रिया बनाने के लिए विभिन्न निजी और सरकारी मेडिकल कॉलेजों को अपनी व्यक्तिगत प्रवेश परीक्षा आयोजित करने से रोकने के लिए एक द्वारपाल के रूप में काम करती है।

- यह सभी उम्मीदवारों को उचित और समान मौका देने में मदद करता है, जिसके वे हकदार हैं। यदि नीट नहीं होता, तो कॉलेजों ने अपनी प्रवेश परीक्षा के लिए अलग-अलग मानदंड निर्धारित किए होते जो सभी उम्मीदवारों के लिए उचित हो भी सकते हैं और नहीं भी।
- छात्रों को अब केवल एक एकीकृत चिकित्सा परीक्षा के बारे में चिंता करनी होगी, पुराने समय के विपरीत जहां एक उम्मीदवार को विभिन्न संस्थानों के लिए 2 या 3 मेडिकल प्रवेश परीक्षा देने की आवश्यकता होती थी।
- कई बार कुछ निजी संस्थान कुछ सीटों को ब्लॉक कर देते थे और बढ़े चंदे की मांग करते थे और 'मैनेजमेंट कोटा' कहकर सत्संग बेच देते थे। नीट ने इन सभी घोटालों का अंत कर दिया।
- समग्र रूप से एक समान आरक्षण नीति का पालन किया जाता है। जो सभी उम्मीदवारों को एक मेले के मैदान पर प्रतिस्पर्धा करने में मदद करता है।

नीट परीक्षा के गुण

एआईपीएमटी की जगह लेने के बाद नीट परीक्षा के कई लाभ हैं। यह सामान्य परीक्षा अब पहले के संस्करणों के संदर्भ में आसान हो गई है, जहां एक छात्र को अलग-अलग मेडिकल प्रवेश परीक्षाएं लिखनी पड़ती थीं। यदि आप यह परीक्षा दे रहे हैं तो आपको नीट परीक्षा के लाभ मिल सकते हैं जो नीचे दिए गए हैं-

1. आरक्षण पर कोई प्रभाव नहीं- नीट में रैंकिंग अंकों पर आधारित होगी न कि आरक्षण के आधार पर। नीट रैंकिंग एक छात्र द्वारा सुरक्षित किए गए परीक्षा अंकों के आधार पर आयोजित की जाती है, इसलिए इसका आरक्षण नीतियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. पूर्ण पारदर्शिता- राज्य-आधारित और स्वतंत्र परीक्षाएं घोटालों और लीक से भरी हुई थीं। जिन राज्यों में कई चिकित्सा संस्थान हैं, वहां गहरे संबंध और सामान्य भ्रष्टाचार को देखना आम है, जो उन लोगों से सीटों की चोरी की संभावना को सक्षम बनाता है जिन्होंने इसे सही तरीके से हासिल किया था। नीट एक बेहतर प्रणाली का समाधान है जो निष्पक्षता और पारदर्शिता स्थापित करती है। यह नीट के साथ है कि एक उम्मीदवार केवल अपने नीट स्कोर के साथ मेडिकल कॉलेज में सीट सुरक्षित कर सकता है।
3. उम्मीदवारों पर कम दबाव- नीट परीक्षा का उद्देश्य अधिकांश एआईपीएमटी प्रारंभिक परीक्षार्थियों के बोझ को कम करना था। एकाधिक परीक्षा प्रश्नपत्र, 3 घंटे में 200 प्रश्नों का उत्तर देना, कई परीक्षा पैटर्न और पाठ्यक्रम, उपरोक्त सीट ब्लॉकिंग के साथ समस्याग्रस्त थे। नीट के साथ, अब केवल एक सामान्य प्रवेश परीक्षा है जो न्यूनतम पैटर्न और संरचनाओं के साथ प्रश्न पत्र प्रदान करती है। यह छात्रों के लिए अधिक समय भी प्रदान करता है, क्योंकि इसने प्रश्नों की संख्या घटाकर 180 कर दी है, जिससे प्रश्नों की समय सीमा 1 प्रश्न प्रति मिनट हो गई है। नीट के साथ अब एक सामान्य परीक्षा के रूप में, एनईईटी-यूजी पास करने वाले उम्मीदवार एम्स के तहत सार्वजनिक संस्थानों में आवेदन करने के लिए स्वतंत्र होंगे।
4. समान अवसर- नीट का अन्य लाभ यह है कि यह सभी को मेडिकल कॉलेज में सीट जीतने का समान मौका देता है। एक उम्मीदवार की इच्छा वाले कॉलेज में सीट हासिल करने की संभावना पूरी तरह से इस बात पर निर्भर करती है कि वे किस रैंक को सुरक्षित करते हैं। चूंकि रैंक की गणना केवल उनके अंकों के आधार पर की जाती है, इसलिए नीट यह सुनिश्चित करता है कि उनका कौशल और ज्ञान ही उन्हें आगे बढ़ाता है, और कुछ नहीं। सामाजिक रूप से कहा जाए तो इसे देश की सबसे सुलभ परीक्षाओं में से एक बना दिया गया है। लगभग 10 क्षेत्रीय भाषाओं को एनईईटी द्वारा समर्थित किया जाता है, इसलिए किसी भी उम्मीदवार जिसका भाषा माध्यम अंग्रेजी नहीं है, को इसके बारे में ज्यादा चिंता करने की जरूरत नहीं होगी, जो कि एआईपीएमटी के विपरीत है। नीट राज्य बोर्डों के लिए सीबीएसई-जैसे पाठ्यक्रम को अपनाने की भी योजना बना रहा है, जो एनईईटी की आलोचना की मात्रा को कम करने में मदद कर सकता है जो इसे अनुचित महसूस करते हैं।

5. बजट और समय की बचत होती है– आम तौर पर विभिन्न संस्थानों द्वारा आयोजित की जाने वाली कई परीक्षाओं को केवल एक आम प्रवेश परीक्षा से बदलना एक फायदा है जो दोनों पक्षों के लिए खेलता है; एक ओर, यह संस्थानों के साथ-साथ वित्तीय समस्याओं का सामना करने वाले उम्मीदवारों के लिए बहुत सारा बजट बचाता है। दूसरी ओर, यह उम्मीदवारों को कई परीक्षाओं के बजाय एक परीक्षा के लिए बहुत समय और ऊर्जा बचाने में मदद करता है।
6. एआईपीएमटी संरचना के समान– न केवल एआईपीएमटी और नीट के बीच पाठ्यक्रम और पेपर संरचना दोनों समान हैं, बल्कि 15 प्रतिशत अखिल भारतीय कोटा प्रतिशत भी दोनों परीक्षाओं के लिए समान है। चूंकि पुराने ढांचे को बरकरार रखा गया है, इसने उम्मीदवारों को प्रवेश परीक्षा पैटर्न बदलने के बारे में भ्रमित होने से बचने में मदद की है। अब जब अच्छी चीजें रास्ते से बाहर हो गई हैं, तो समय आ गया है कि हम विपक्ष में आ जाएं।

नीट परीक्षा के दोष

नीट परीक्षा में बहुत कुछ अच्छा के साथ, थोड़ा बुरा भी है। नीचे नीट परीक्षा के नुकसान हैं जो एक छात्र को इसका प्रयास करते समय सामना करना पड़ सकता है–

1. उच्च जोखिम– जब हम जोखिम के बारे में बात करते हैं, तो हम विफलता के बारे में बात कर रहे होते हैं। भले ही उम्मीदवारों को कई परीक्षाओं के लिए तैयारी नहीं करनी पड़ती है, इसका उल्टा यह है कि उनके पास सफलता की संभावना अधिक थी, क्योंकि प्रदर्शन अंकों के योग पर आधारित था। चूंकि नीट परीक्षा एकल परीक्षा है, इसलिए इसमें विफल होने का मतलब होगा कि उम्मीदवार को पूरा एक साल का नुकसान होगा, और अगली परीक्षा तक फिर से प्रदर्शन नहीं कर पाएगा। इसका मतलब यह भी है कि सीट सुरक्षित करने के लिए उम्मीदवार को हजारों अन्य उम्मीदवारों के खिलाफ जीतना होगा। न केवल इससे निपटने के लिए बहुत प्रतिस्पर्धा है, बल्कि यह त्रुटि और अतिरिक्त शैक्षणिक और सामाजिक दबाव के लिए अतिरिक्त स्थान भी जोड़ता है।
2. सीबीएसई पाठ्यक्रम– राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा पृष्ठभूमि से आने वालों के लिए सीबीएसई पाठ्यक्रम सामान्य लग सकता है, लेकिन राज्य स्तर की शिक्षा पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को यह अधिक कठिन लगेगा। हालांकि नीट सभी उम्मीदवारों के लिए समानता बनाए रखने का प्रयास करता है, लेकिन इस संदर्भ में समानता एक चुनौती है जिसका उत्तर अभी तक दिया जाना बाकी है।
3. लागत के अनुकूल नहीं– हालाँकि बजट के बारे में बात ऊपर की गई है, यह जरूरी नहीं कि ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले छात्रों पर लागू हो, और भारत में उनमें से कई शामिल हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि नीट की तैयारी के लिए उच्च मौद्रिक लागत की मांग के कारण मध्यम और उच्च वर्ग के परिवारों को पूरा करता है। अतिरिक्त समावेशिता की अनुमति देने के लिए, केंद्र सरकार को लागत कम करने के तरीके खोजने होंगे।

निष्कर्ष

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि नीट का शैक्षणिक लाभ यह है कि यह चिकित्सा और दंत चिकित्सा पर एक उम्मीदवार के कौशल और ज्ञान का परीक्षण करने का एक किफायती और विश्वसनीय तरीका है, इसका नुकसान यह है कि राज्य-आधारित उम्मीदवारों के लिए इसे निगलना बहुत कठिन है। वे राष्ट्रीय स्तर की परीक्षा के बारे में साधारण बिंदु हो सकते हैं, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में, हमने इसके उल्लेखनीय परिणाम देखे हैं।

सुझाव

- स्कूल को नीट के आधार पर नियोजित पढ़ने का समय और बार-बार आयोजित करना चाहिए
- केंद्र और राज्य सरकार को पूरे देश में उच्च माध्यमिक स्तर पर समान पाठ्यक्रम प्रदान करना चाहिए।
- स्कूल प्रबंधन व सरकार छात्राओं के बीच नीट परीक्षा को लेकर जागरूकता कार्यक्रम चलाएंगे।

- माता-पिता को उन बच्चों को नीट परीक्षा के बारे में प्रोत्साहित करना चाहिए जिनके छात्र मेडिकल के इच्छुक हैं।
- राज्य सरकार को सीबीएसई पाठ्यक्रम स्तर तक राज्य के पाठ्यक्रम को बदलने के लिए प्राथमिकता देनी चाहिए।
- नीट की तैयारी के लिए स्कूल को लाइब्रेरी की सुविधा देनी चाहिए।

संदर्भ

अग्निहोत्री, रवीन्द्र : "आधुनिक भारतीय शिक्षा, समस्याएं और समाधान", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

अग्रवाल, जे.सी. : "एलीमें ट्री गाइडेन्स एण्ड काउन्सलिंग", आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली।

अस्थाना, बिपिन : "मनोविज्ञान व शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन", अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

गुप्ता, एन. एल. व शर्मा डी.डी. : "भारतीय सामाजिक समस्याएं", साहित्य भवन, आगरा।

गुप्ता, डॉ. एस.पी. एवं अल्का : "उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान", शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

कपिल, डॉ. एच. के. : "सांख्यिकी के मूल तत्व", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

कपिल, एच. के. : "असामान्य मनोविज्ञान", एच.पी. भार्गव, बुक हाउस, आगरा।

कुपुस्वामी : "बाल व्यवहार और विकास", कोणार्क पब्लिशर्स प्रा.लि.।

करलिंगर, एस. : "समाज मनोविज्ञान के आधार", लंदन।

माथुर, डॉ. एच.एस. : "शिक्षा मनोविज्ञान", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

Websites

http://scroll.in/article/808025/part-i-why-the-side-effects-of-neet-are-much-more-damaging-than-the-disease-it-claims-to-cure

https://www.researchgate.net/publication/306245474_NEET_India's_single_exam_for_admission_to_medical_school_promises_transparency_and_quality

https://indianexpress.com/article/education/covid-effect-sharper-fall-in-girls-neet-attendance-than-boys-6762075/

https://www.ajim.in/article.asp?issn=2666-1802;year=2019;volume=7;issue=3;spage=69;epage=73;aulast=Kulkarni

https://www.researchgate.net/publication/322653113_The_National_Licentiate_Examination_Pros_and_Cons

https://www.expresshealthcare.in/amp/blogs/guest-blogs-healthcare/medical-education-in-india-more-reforms-are-needed/426780/

https://www.ijcmph.com/index.php/ijcmph/article/view/336

https://www.researchgate.net/publication/230827940_Medical_education_in_India_Time_to_make_some_changes

www.mciindia.org/.

www.mciindia.org/NEET/NEETUG.aspx.

www.mciindia.org/Rules-and-

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

श्री गिजुभाई बधेका की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक शिक्षार्थी सम्बन्ध की समसामयिक प्रासंगिकता का अध्ययन

ममता शर्मा
शोधार्थी, शिक्षा विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर
डॉ. मौसम पारीक
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, संजय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लालकोठी स्कीम, जयपुर

सारांश

शिक्षा ही जीवन है, जीवन ही शिक्षा है। और सही शिक्षा वह है जो बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा का सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वांगीण विकास करे। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य श्री गिजुभाई बधेका की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध की समसामयिक प्रासंगिकता का अध्ययन करना था, अध्ययन हेतु यादृच्छिक न्यादर्श के आधार पर प्राथमिक स्तर के 100 शिक्षकों का चयन किया गया। दत्त संकलन हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया शोध निष्कर्ष प्राप्त हुआ की श्री गिजुभाई की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध के प्रति जो विचार प्रस्तुत किये उनके प्रति शिक्षकों की सकारात्मक सहमति पाई गई। इन विचारों को यदि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अपनाया जाये तो शिक्षा प्रणाली में आई अधिकांश कमियों को दूर किया जा सकता है।

प्रस्तावना

सर्वप्रथम बालक की शिक्षा उसके परिवार से शुरू हो जाती है। माता ही उसकी प्रथम गुरू होती है, इसके बाद वह विद्यालयी शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाता है, जहाँ वह शिक्षक के सम्पर्क में आकर शिक्षा ग्रहण करता है।

गिजुभाई ने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये इन प्रयोगों का उद्देश्य एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करना था जिससे बालक हँसते-खेलते मनवांछित गतिविधियों में भाग लेते हुए शिक्षा प्राप्त करें।

वर्तमान में शिक्षकों की दिशाहीनता के कारण शिक्षा अपने मुख्य उद्देश्य से हटती जा रही है, और शिक्षक समुदाय अपने कर्त्तव्य से विचलित हो गये है।

वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में गिजुभाई के शैक्षिक विचारों से हमें नयी दिशा प्राप्त हो सकती है। शिक्षण कार्य करने व शिक्षा ग्रहण करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया शिक्षक और छात्र सम्बन्धों पर टिकी होती है। इसलिए गिजुभाई ने शिक्षक और छात्र के सम्बन्ध को अतिमहत्त्वपूर्ण माना है, शिक्षक-छात्र सम्बन्धों का आधार परस्पर प्रेम व आत्मीयता हो, डर या भय नहीं, गिजुभाई के अनुसार छात्रों के मन में शिक्षक के प्रति पूर्ण निर्भयता होनी चाहिए, उनके अनुसार आत्मीयता, ममत्व व स्वयं बालक हृदय रखने वाला शिक्षक ही छात्रों का प्रेम व विश्वास जीत सकता है, बालकों को शारीरिक दण्ड देने वाला अनेक प्रकार से प्रताड़ित करने वाला, रोक-टोक करने वाला शिक्षक बालकों को शत्रु के समान लगता है। प्रश्न यह है कि गिजुभाई की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक-छात्र सम्बन्धों की समसामयिक प्रासंगिकता क्या है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन

1. कुमार अनूप (2006) में शोध किया जिसका शीर्षक "**रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक चिन्तन की आधुनिकता**" था। इसमें गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों का अध्ययन किया गया व उनकी रचनाओं का वर्तमान शैक्षिक परिपेक्ष्य में उपादेयता को स्पष्ट किया गया।

   शोध का निष्कर्ष यह रहा कि रवीन्द्रनाथ टैगोर विद्यालयी शिक्षा की सार्थकता उसके सामाजिक स्वरूप में मानते थे। शिक्षा का व्यवहारिक शिक्षा में तालमेल को आवश्यक माना है। मातृाभाषा में शिक्षा देने पर जोर दिया है।

2. मीना, बनवारी लाल (2017) में शोध किया जिसका शीर्ष "**मौलाना अबुल कलाम आजाद के शैक्षिक दर्शन का अध्ययन था**" इसमें शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, विद्यालय संकल्पना व शिक्षक छात्र सम्बन्धों का अध्ययन व मूल्यांकन पद्धति, स्त्री शिक्षा, नैतिक शिक्षा का अध्ययन किया गया।

   शोध का निष्कर्ष यह रहा कि शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो आत्मसम्मान को बढ़ाने वाली हो शिक्षक को चिन्तनशील और स्पष्ट आवाज में अभिव्यक्तिशील उनका व्यक्तित्व होना चाहिए।

शोध की आवश्यकता व महत्त्व

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली सन्तोषप्रद नहीं है, क्योंकि उसमें कई कमियाँ है, जिसे दूर करना नितान्त आवश्यक है शिक्षा केवल व्यवसाय के रूप में ही जा रही है। शिक्षकों में अपने कर्त्तव्यों के प्रति निष्ठा कम होती जा रही है। छात्र किताबी कीड़े बनते जा रहे है, विषय वस्तु को समझने की बजाय रटने पर बल देने लगे है, हमारे राष्ट्र की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप बालकों के हितों व सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुए किस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था या प्रणाली उपयुक्त होगी इसका पता लगाने के लिए राष्ट्र के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्रियों के शैक्षिक विचारों का अध्ययन मनन करने की आवश्यकता है।

शोध के उद्देश्य

- श्री गिजुभाई बधेका के अनुसार शिक्षक की भूमिका का अध्ययन
- श्री गिजुभाई बधेका के अनुसार शिक्षार्थी का अध्ययन करना।
- श्री गिजुभाई बधेका के अनुसार शिक्षक शिक्षार्थी सम्बन्धों का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना

श्री गिजुभाई बधेका की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धी विचार वर्तमान में प्रासंगिक है।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु जयपुर जिले के प्राथमिक स्तर के 100 शिक्षकों का यादृच्छिक रूप से चयन किया गया।

शोध के लिए प्रयुक्त उपकरण

शोध अध्ययन में समसामयिक प्रासंगिकता ज्ञात करने हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया।

शोध विधि

प्रस्तुत शोधकार्य के लिए दार्शनिक व विषयवस्तु विश्लेषण विधि व समसामयिक प्रासंगिकता ज्ञात करने के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु सांख्यिकी विधि के अन्तर्गत प्रतिशत का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकी विश्लेषण

सारणी-1

श्री गिजुभाई बधेका के अनुसार शिक्षक व शिक्षार्थी की भूमिका का अध्ययन

क्र.सं.	कथन	न्यादर्श	शिक्षकों की प्रतिक्रिया प्रतिशत में		
			सहमत	तटस्थ	असहमत
1.	शिक्षकों की भूमिका	100	82	17	1
2.	शिक्षार्थी की भूमिका	100	79	15	6

श्री गिजुभाई बधेका के अनुसार शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक शिक्षार्थी की भूमिका प्रदर्शित करने वाली सारणी संख्या के अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि गिजुभाई के अनुसार शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक, शिक्षार्थी की भूमिका के सम्बन्ध विचारों के प्रति शिक्षकों की सकारात्मक प्रतिक्रिया पाई गई सारणी का अवलोकन करने पर पाया गया की शिक्षकों ने (शिक्षकों की भूमिका) कथन पर सहमत विकल्प पर 82 प्रतिशत व (शिक्षार्थी की भूमिका कथन पर) 79 प्रतिशत सहमति प्रदर्शित की।

सारणी-2

श्री गिजुभाई बधेका की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धों का अध्ययन करना

क्र.सं.	कथन	न्यादर्श	शिक्षकों की प्रतिक्रिया प्रतिशत में		
			सहमत	तटस्थ	असहमत
1.	शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध	100	75	18	7

श्री गिजुभाई बधेका की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धों की समसामयिक प्रासंगिकता प्रदर्शित करने वाली सारणी-2 का अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि शिक्षकों की शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति पाई गई सारणी का अवलोकन करने पर पाया गया कि शिक्षकों ने सबसे अधिक सहमत विकल्प पर (75 प्रतिशत) अभिवृत्ति प्रदर्शित की गई है।

निष्कर्ष

श्री गिजुभाई बधेका के अनुसार शिक्षक, शिक्षार्थी व शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धी विचारों को वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अपनाया जाये तो वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में आई कमियों को काफी हद तक सुधारा जा सकता है।

अतः गिजुभाई के शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धों से सम्बन्धित विचार वर्तमान में प्रासंगिक है।

सन्दर्भ

बधेका, गिजुभाई - ऐसे हो शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं. 36

बधेका, गिजुभाई - बाल मंदिर के शिक्षकों से, ऐसे हो शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन

बधेका, गिजुभाई - बाल शिक्षण जैसा मैंने समझा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर

बधेका, गिजुभाई - प्राथमिक विद्यालयों में व्यवसायिक शिक्षा, अंकित पब्लिकेशन, जयपुर

बधेका, गिजुभाई - शिक्षकों से, गीतांजलि पब्लिकेशन, जयपुर

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की आर्थिक स्थिति व मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन

मनीष नारायण चौरसिया
शोधार्थी, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय वि.वि., अमरकंटक (म.प्र.)
डॉ. शिखा बैनर्जी
सहायक प्राध्यापिका, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय वि.वि., अमरकंटक (म.प्र.)

प्रस्तावना

तब कहाँ जानते थे हमारे पुरखे कि, वे बीमार क्यों पड़ते हैं? दिनभर कंद-मूल खोजना और आखेट करना। प्रकृति की गोद में ही पैदा होना और उसी में पलना-बढ़ना, पता लगता था तो बस भूख और भोजन का, बाकी सब कुछ अनजान और अजूबा था। उनकी छोटी-सी दुनिया में रात के गहन अंधकार में गुफा में सो जाते और सुबह चिड़ियों की चहचहाहट के साथ उठ जाते हैं। कहीं से एक चमकता लाल गोला आसमान में निकल आता और चारों ओर उजाला फैल जाता। वह उनकी दुनिया को रोशन कर देता था, इसलिए वे उसे देवता मानने लगे। हवा उन्हें जिंदा रखती, धरती भोजन देती, नदी-सोते पीने का पानी देते, तारों से जगमगाता आसमान उन्हें उनका कल्पनालोक दे देता और आग रोशनी, सुरक्षा और पका भोजन दे देती। इसलिए क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर उनके देवता बन गए। वे इनकी पूजा करने लगे।

चारों ओर प्रकृति को वे गूढ़ जिज्ञासा से देखते और सोचते-रात के अंधकार के बाद चमकता सूरज कहाँ से निकल आता है और फिर कहॉ चला जाता है, क्यों फूल खिलते हैं, क्यों बादल बनते हैं, क्यों वर्षा होती है? क्यों? क्यों?

हजारों सवाल थे उनके मन में, लेकिन उत्तर मालूम नहीं था। चारों ओर अज्ञान का अंधेरा फैला हुआ था। जब कभी बीमार पड़ जाते, शरीर तपने लगता, बुरी तरह खाँसने लगते या शरीर पर चोट लगने से घाव बन जाते तो समझ में नहीं आता था कि क्या किया जाए। इस तकलीफ का इलाज क्या है। इस दुःख दर्द से निजात कैसे मिले? उन्हें अपनी कल्पना के देवता याद आते और दुःख से मुक्ति के लिए वे उनकी प्रार्थना करने लगते। उन्होंने अज्ञान के अंधेरे में बरी आत्माओं और भूत-प्रतों की कल्पना कर ली। उनको शांत करने के लिए कुछ लोग ओझा और तांत्रिक बन गए। वे बुरी आत्माओं को शांत करके इलाज करने का ढोंग रचाने लगे। सदियों तक हमारे पूर्वज बीमार पड़ने और शरीर की दुःख-तकलीफों के लिए बुरी आत्माओं और भूत-प्रतों को ही इसका कारण समझते रहे।

महामारी/वैश्विक महामारी क्या है?

तब उन्हें उस दुनिया का तो पता ही नहीं था जिसे हम अपनी कोरी आँखों से देख ही नहीं सकते। वे तो केवल अपनी

आंखों से दिखने वाले जीव जन्तु की दुनिया को ही जानते थे। हमारी नजरों से परे एक और अदृश्य दुनिया थी- सूक्ष्म जीवों की दुनिया। सदियों गुजर चुकी थी रहस्यमय अज्ञात बीमारियां निरन्तर लोगों की जान ले रही थी। छोटी मोटी बीमारियों के अलावा कभी कभी बड़ी जानलेवा बीमारियों का प्रकोप होता जिनके कारण देखते ही देखते दो चार नहीं, बल्कि सैंकड़ों हजारों लोगों की जान चली जाती। एसी स्थानीय या देश तक सीमित बीमारियों को महामारी कहा जाने लगा और देश की सीमाओं से बाहर दूसरे देशों तक पहुंचने वाली बीमारियां **वैश्विक महामारियाँ** कहलायी।

इतिहास के आइने में महामारियाँ

रोम साम्राज्य में सन् 165 ई. में जब निकट पूर्व के युद्ध लड़कर रोमन सेनाएं लौटी तो उनके साथ एक बीमारी भी चली आई। जल्दी ही रोम साम्राज्य में एक अज्ञात वैश्विक महामारी फैल गई। शोधकर्ताओं का अनुमान है कि वह बीमारी शायद चेचक रही होगी। तब वहाँ सम्राट मार्कश ऑरेलियष एन्टोनियश आगस्टष का राज था। यह वैश्विक महामारी जिसका तब कोई इलाज ना था रोमन सेनाओं के साथ यूनान से लेकर पूरे रोम साम्राज्य में फैल गई अनुमान है इससे करीब 50 लाख लोग मारे गए। जब यह महामारी चरम पर थी तो रह रोज करीब 2000 लोग इसके शिकार हो रहे थे। कहा जाता है कि सम्राट आगष्टक की मृत्यु भी इसी महामारी से हुई।

वैश्विक महामारियां समय समय पर कदम आगे बढ़ती रहीं। वैश्विक महामारी का एक भयानक आक्रमण सन् 541-42 में बाइजेनटाइन साम्राज्य के साथ-साथ सैसेनियन साम्राज्य पर भी हुआ। यह "काली मौत" यानि बुबोनिक प्लेग की महामारी थी जिसने बाइजेनटाइन साम्राज्य की राजधानी में जनजीवन को तबाह कर डाला। वहाँ एक-एक दिन में 5000 लोग मृत्यु का ग्रास बने। यह भूमध्यसागर के तट पर खड़े व्यापारिक जल पोतों में छिपे चूहों पर पल रहे पिश्यों से फैली थी।

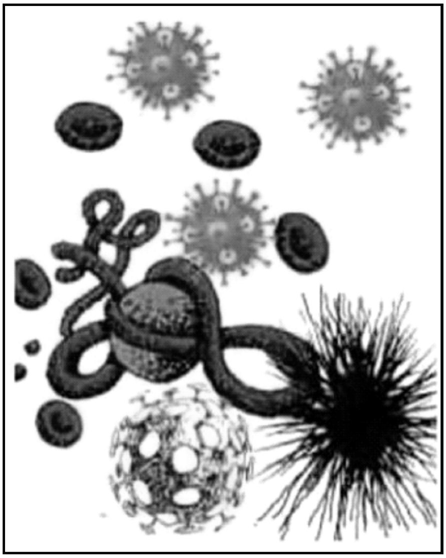

इसके बाद एक बार फिर सन् 1346 से 1353 तक बुबोनिक प्लेग का भयंकर प्रकोप हुआ। इस महामारी ने यूरोप, अफ्रीका और एशिया में मौत का भारी तांडव दिखाया। अनुमान है कि इसके कारण विश्व में 7.5 से लेकर 20 करोड़ तक लोगों के प्राण गए। यह वैश्विक महामारी एशिया में शुरू हुई और व्यापारिक जहाजों में छिपे चुहों के पिस्सुओं ने इसे तीनों महाद्वीपों में फैला दिया।

सन् 1910-11 में एक बार फिर हैजे की वैश्विक महामारी का आक्रमण हुआ। इसे हैजे की वैश्विक महामारी का छठा दौर माना जाता है। यह भारत से शुरू हुआ और मध्य अफ्रीका, पूर्वी यूरोप से रूस तक पहुँच गया। आज से ठीक सौ वर्ष पहले सन् 1918 से 1920 तक फैली फ्लू की वैश्विक महामारी ने दो करोड़ से पाँच करोड़ तक लोगों की जान ली थी। कहते हैं इससे विश्व की करीब एक-तिहाई आबादी पीड़ित हुई थी। फ्लू की इस महामारी की खासियत यह थी कि इससे स्वस्थ और युवा लोग बुरी तरह से पीड़ित हुए, जबकि इससे पहले तक फ्लू किशोरों, उम्रदराज लोगों या कमजोर लोगों तथा बीमार लोगों को अपना शिकार बनाता था। स्पूनिश फ्लू से महात्मा गांधी भी पीड़ित हुए थे।

इसी वैश्विक महामारी में हिंदी के महान कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने अपनी पत्नी को खो दिया था। निराला ने कहीं लिखा है कि तब गंगा में शव ही शव बहते हुए दिखाई देते थे क्योकि दाह-संस्कार के लिए ईंधन की कमी हो गई थी।

इन्फ्एंजा की इस वैश्विक महामारी के 51 वर्ष और सन् 1918-20 के भयानक 'स्पेनिश फ्लू' के बाद वर्ष 2019 के अंतिम माह में भयानक जानलेवा कोविड-19 फ्लू की वैश्विक महामारी का प्रकोप हो गया। यह महामारी कोरोना वायरस से फैली और चीन के वुहान शहर से शुरू हुई। इस वैश्विक महामारी के कारण विश्वभर में कई लाख लोग संक्रमित होकर काल के गाल में समा गए, जबकि लाखों लोगों की संख्या ने इस महामारी पर विजय हासिल की है। यह बीमारी चीन से नवंबर 2019 से शुरू हुई थी। कोरोना वायरस सार्स-सीओवी-2 से फैलने वाली बीमारी कोविड-19 शुरू हुई।

वर्तमान परिपेक्ष्य

भारत में 22 मार्च 2020 को सुबह 7 से रात 9 बजे तक भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने जनता कर्फ्यू का आहवान किया। जनता कर्फ्यू का उद्देश्य कोरोना संक्रमण में तेजी की चैन को तोड़ना तथा कर्फ्यू के कारण जन जीवन में होने वाली बदलाव का अनुमान लगाना था या फिर कहे कि यह एक प्रकार की आने वाली कुछ दिनों में होने वाली लॉकडाउन के लिए लोगों को आगाह करना था। इसके पश्चात मोदी जी ने आने वाले दिनों में होने वाले लॉकडाउन के लिए आवश्यक सेवाओं से जुड़े लोगों या संस्थाओं जैसे पुलिस, चिकित्सा सेवाएं मीडिया, होम डिलिवरों पेशेवरों और अग्नि सामकों के छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति को कर्फ्यू का पालन करना अनिवार्य था। इसी दिन शाम के पांच बजे नागरिकों को अपने दरवाजे बालकनियों या खिड़कियों पर खड़े होकर आवश्यक सेवाओं से जुड़े पेशेवरों के प्रोत्साहन के लिए ताली या घंटी बजाने को कहा गया था। राष्ट्रीय कैडेड कोर और राष्ट्रीय सेवा योजना से संबंधित लोगों को देश में कर्फ्यू लागू करना था।

सम्पूर्ण लॉकडाउन कई चरणों में हुआ प्रथम चरण 25 मार्च 2020 से 14 अप्रैल 2020 (कुल 21 दिन) के लिए किया गया था। इस दौरान लोगों को अपने घरों से बाहर निकलना निषेध किया गया। सभी परिवहन सेवाएं सड़क वायु और रेल निलंबित किया गया। हालांकि आग पुलिस जरूरी सामान और आपातकालीन सेवाओं का उपयोग किया जा सकेगा।

खाद्य दूकान बैक और ए.टी.एम पेट्रोल पंप अन्य आवश्यक वस्तुएं और विनिर्माण जैसी सेवाओं के छूट दी गई है। शैक्षक संस्थानों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों और आतिथ्य सेवाओं को निलंबित कर दिया गया। गृह मंत्रालय ने कहा कि जो व्यक्ति लॉकडाउन का पालन नहीं करेंगे उन्हें एक साल तक जेल भी की जा सकती है। इस दौरान संपूर्ण शैक्षिक संस्थाओं को बंद रखा गया और पूरा जन जीवन अस्त व्यस्त हो गया। शासकीय एवं अशासकीय संस्थानों में कार्यरत शिक्षक कर्मचारी बच्चे, मजदूर सभी इस लॉकडाउन से प्रभावित हुए।

इसी क्रम में द्वितीय चरण का लॉकडाउन 15 अप्रैल 2020 से 3 मई 2020 (कुल 19 दिन) का हुआ। इस लॉकडाउन के दौरान लोंगों की आजीविका पर प्रश्नचिन्ह लग गया। कई मजदूर एवं कुशलकर्मी जो कि अपने निवास स्थान से दूर अन्य राज्यों देशों मे बसे थे वे दाने-दाने के लिए मोहताज हो गए। चूँकि परिवहन का कोई वैकल्पिक साधन नहीं था इसलिए जनजीवन अपने घरों के लिए पैदल ही निकल पड़े। इस बीच कई बेगुनाह भुख प्यास थकान चिन्ता के कारण मारे गए तथा जो बच गए उनके लिए आने वाली चुनौंतियां दुभर हो गईं।

इसी क्रम में तृतीय चरण का लॉकडाउन 4 मई 2020 से 17 मई 2020 (14 दिन) चतुर्थ चरण 18 मई 2020 से 31 मई 2020 (14 दिन) एवं पंचम चरण 1 जून 2020 से 30 जून 2020 (30 दिन) का हुआ।

इस विश्वव्यापी महामारी कोरोना के कारण सम्पूर्ण मानव जीवन पूर्ण रूप से प्रभावित हुआ। देश-विदेशों में पढ़ने एवं काम करने गए लोग वहीं फंस गए क्योकि लॉकडाउन के समय सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन सेवाओं को पूर्ण रूप से बन्द कर दिया।

समस्या कथन

विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति एवं मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं।

विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना

इस अध्ययन हेतु निम्न परिकल्पना बनायी गयी हैं।

H_1 : विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

H_2 : विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

समस्या का परिसीमन

इस अध्ययन के अन्तगर्त गोरखपुर के ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों का चयन किया गया हैं।

इस अध्ययन हेतु 3 शासकीय एवं 3 अशासकीय विद्यालय का चयन किया गया हैं।

इस अध्ययन हेतु ग्रामीण क्षेत्र के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों चयन किया गया हैं।

यह अध्ययन शिक्षकों के आर्थिक स्थिति एवं मानसिक स्वास्थ्य के अध्ययन तक सीमित हैं।

शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन के लिए आंकड़ों को एकत्र करने के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया हैं, क्योंकि उसके प्रतिदर्श पूरे समष्टि में बिखरे हुए हैं, इसके अलावा इस विधि के निम्न गुण भी इसके चयन को आधार प्रदान करते हैं।

जनसंख्या

शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्र के उच्चतर माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया हैं।

न्यादर्श

सारणी-1

न्यादर्श में लिए गए शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की संख्या -

क्र.	विद्यालय का नाम	शासकीय/अशासकीय	कार्यरत शिक्षकों
1.	शा. वीर शिवाजी इण्टर कालेज सरहरी, गोरखपुर	शासकीय	10
2.	शा. इन्द्रसना इण्टर कालेज बालापार, गोरखपुर	शासकीय	10
3.	शा. पंचायत इण्टर कालेज परमेश्वरपुर, गोरखपुर	शासकीय	10

4.	बी.एन.बी.पी. इण्टर कालेज सखरूआ, गोरखपुर	अशासकीय	10
5.	वंशराज इण्टर कालेज बालापार, गोरखपुर	अशासकीय	10
6.	राणा दिलीप चन्द किसमति देवी इण्टर कालेज करमौर, गोरखपुर	अशासकीय	10
	कुल कार्यरत शिक्षकों की संख्या		60

शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति एवं मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया हैं। जिसके अंतगर्त 20 प्रश्नों का समावेश किया गया हैं। तथा दस प्रश्नों की एक परिकल्पना बनायी गयी हैं। जिसमें उत्तरदाता को प्रश्नों के उत्तर में हाँ या ना में उत्तर देना हैं। प्रत्येक सही उत्तर पर 5 अंक तथा गलत उत्तर पर 0 अंक प्रदान किए जाएंगे।

सांख्यिकीय अभिप्रयोग

उक्त अध्ययन विशिष्ट उद्देश्यों को सामने रख करकें उपर्युक्त निष्कर्षो की प्राप्ति के लिए सांख्यिकीय की प्रविधि यथा प्रतिशत, केन्द्रित प्रवृत्ति का मान, का व्यवहार किया गया हैं।

परिकल्पना H_1

''विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।''

सारणी-1.1

प्रदत्त	प्रदत्तों की संख्या	मध्यमान
शासकीय	30	88.5
अशासकीय	30	32.5

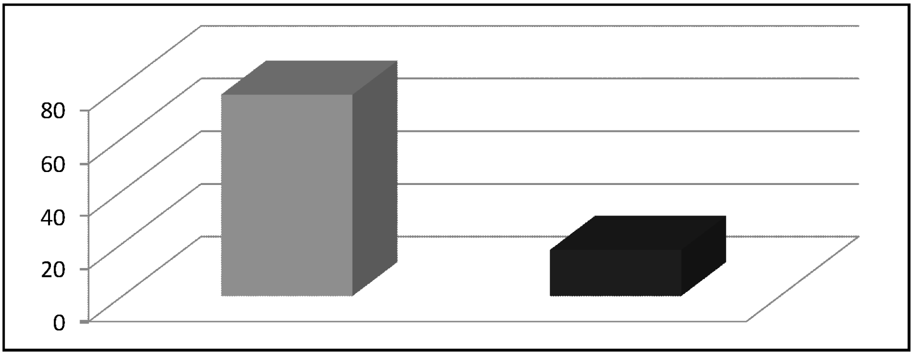

चित्र-1.1

1. शासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति का मध्यमान
2. अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति का मध्यमान

उपरोक्त आकडों के विश्लेषण एवं चित्र-1.1 के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति का प्रप्तांक 88.5 एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों

के आर्थिक स्थिति का प्रप्तांक 32.5 है जिससे यह स्पष्ट होता है कि शासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की तुलना में कि शासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की आर्थिक स्थिति बेहद कमजोर रही है।

अत: यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति में सार्थक अंतर पाया जायेगा।

अत: हमारी पकिल्पना अस्वीकृत हुई।

परिकल्पना H_2

''विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।''

सारणी-1.2

प्रदत्त	प्रदत्तों की संख्या	मध्यमान
शासकीय	30	88.5
अशासकीय	30	32.5

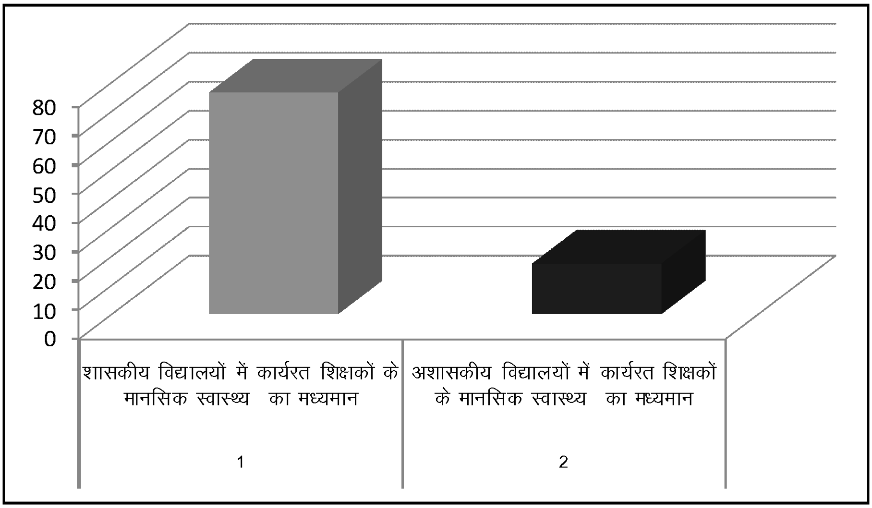

चित्र-1.2

उपरोक्त आकडों के विश्लेषण एवं चित्र क्र. 1.2 के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य का प्रप्तांक 88.5 एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति का प्रप्तांक 32.5 है जिससे यह स्पष्ट होता है कि शासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की तुलना में कि शासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की मानसिक स्वास्थ्य बहुत ही निम्न स्तर का एवं दयनिय रहा है।

अत: यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर पाया जायेगा।

अत: हमारी पकिल्पना अस्वीकृत हुई।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध में प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

1. विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के आर्थिक स्थिति में सार्थक अंतर पाया जायेगा।
2. विश्वव्यापी महामारी कोरोना में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर पाया जायेगा।

संदर्भ

1. गुप्ता, एस.पी. 2015, अनुसंधान संदर्शिका संप्रत्यय, कार्य विधि एवं प्रविधि इलाहाबाद, शारदा, पुस्तक भवन।
2. सिंह, (ए.के. 2017) मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां, नई दिल्ली, मोती लाल बनारसी दास।
3. गुप्ता, एस.पी. 2018, सांख्यिकी विधियां, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
4. मंगल, (एस.के. 2019), व्यवहारिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियां, दिल्ली पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि.।
5. गोयल लि. राखी प्रकाशन प्रा., आगरा, शोध विधियाँ एवं सांखिकीय अनुप्रयोग (201), एम. भार्गव एन.।
6. J. Ainley and R. Carstens (2018), Teaching and Learning International Survey (TALIS) 2018. In Conceptual Framework, OECD Working Papers, Paris: OECD Publishing.
7. UNESCO (2020), COVID-19 Educational Disruption and Response. Retrieved from https://en.unesco.org/covid19/educationresponse , Data from April 4, 2020.

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

जयपुर जिले में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों का अध्ययन

निधि झालानी
शोधकर्त्री, शिक्षा विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर
डॉ. रीटा झाझड़िया
शोध निर्देशिका व एसोसिएट प्रोफेसर, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन जयपुर जिले में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों के अध्ययन से संबंधित है। इस शोध कार्य का उद्देश्य माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों का अध्ययन लिंग, विद्यालय के प्रकार एवं क्षेत्रीयता के संदर्भ में करना था। इस शोध में न्यादर्श के रुप में जयपुर जिले के माध्यमिक स्तर के ८०० विद्यार्थियों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। इस अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। निष्कर्षत: यह प्राप्त हुआ कि जयपुर जिले में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों में लिंग, विद्यालय के प्रकार एवं क्षेत्रीयता के संदर्भ में सार्थक अंतर नहीं है।

प्रस्तावना

मूल्य किसी समाज के प्रचलित वे आदर्श लक्ष्य होते हैं जिनके प्रति सदस्य श्रद्धा रखते हैं और जिन्हें सामाजिक जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण समझा जाता है। इन महत्वपूर्ण मापदंडों के आधार पर समाज में विशिष्ट वस्तुओं, घटनाओं और व्यक्तिगत व्यवहारों का मूल्यांकन किया जाता है। मानव समाज में सदा से मूल्यों, आदर्शों तथा चिंतन की व्यवस्था रही है। मानव की यह विशेषता है कि वह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के लिए लक्ष्य, आदर्श और व्यवहार के प्रतिमान निर्धारित करता है और उन्हीं के आधार पर अपना जीवनयापन करता है। पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते हुए यह आदर्श मूल्य बन जाते हैं। मूल्य जीवन के मार्गदर्शक सिद्धांत हैं जो सर्वांगीण विकास के लिए अनुकूल हैं। वे जीवन को दिशा और दृढ़ता देते हैं और जीवन में आनंद, संतुष्टि और शांति लाते हैं। वे जीवन में गुणवत्ता लाते हैं। इस प्रकार मूल्य हमें आकर्षित करते हैं, हमारी जरूरतों को पूरा करते हैं, चाहे वह भौतिक हो या गैर-भौतिक। मूल्य हमारे दैनिक जीवन में मानव व्यवहार और कार्यों को विनियमित और निर्देशित करते हैं। हमारे द्वारा चुने और बोले जाने वाले प्रत्येक शब्द में, हम जो पहनते हैं, जिस तरीके से हम बातचीत करते हैं, हमारी धारणा और दूसरों की प्रतिक्रियाओं की व्याख्या में हम क्या कहते हैं, आदि में मूल्य अंतर्निहित हैं। मूल्य रुचियों, विकल्पों, आवश्यकताओं, इच्छाओं और वरीयताओं के आधार पर बनते हैं। मूल्यों में एक चयनात्मक या दिशात्मक गुण होता है।

अध्ययन की आवश्यकता

वर्तमान समय के विद्यार्थियों के मूल्यों में गिरावट बढ़ती जा रही है। बच्चों के अन्दर अनुशासनहीनता, लापरवाही और उद्दंडता जैसे दुर्गुणों का समावेश होता जा रहा है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक आविष्कारों और अनुसंधान के कारण ही विकास की गति में तीव्रता आई है। आज बालक मोबाइल, इण्टरनेट पर चैटिंग सर्फिंग के द्वारा अनैतिकता की ओर अग्रसर हो रहा है। उनमें मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। आज की शिक्षा जो व्यक्ति के अस्तित्व को स्वार्थों में बाँधकर नैतिकता से दूर ले जा रही है जिसके अभाव में मनुष्य भौतिकता का जामा ओढ स्वयं को पतन के दलदल में धकेल रहा है। हमारी प्राचीन सभ्यता ने घुटने टेक अपने ऊपर पाश्चात्य सभ्यता के साम्राज्य को स्वीकार कर लिया है और जो मानवीय मूल्यों के पूर्ण विराम का संकेत देती हैं। हमारी वैदिक शिक्षा जो मूल्यों की धरोहर है जिसमें आदर्शों, श्रद्धा, सेवा, आदर, आत्मानुशासन, सादा जीवन-उच्च विचार, ब्रह्मचर्य, नैतिकता को जीवन का सत्य माना जाता है। किंतु पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के अंधानुकरण ने इन पुरातन आदर्शों की शिक्षा को समाज से बिल्कुल अलग कर दिया है जिसके कारण छात्र असंतोष, अनुशासनहीनता, बेरोजगारी, निर्धनता, वर्ग-संघर्ष, भाषाई समस्याएं, सामाजिक बुराइयां, राष्ट्रीय विघटन जैसी अनुत्तरित समस्या दिन-प्रतिदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है। जीवन के वास्तविक मूल्य, गुणों व आदर्शो का अनुसरण करके हमारे छात्र भारतवर्ष की समृद्धि तथा वैभव का पुनरुत्थान कर सकेंगे। इसके लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाये जो उनमें मूल्यों के विकास में सहायक हों।

शोध से संबंधित पूर्व में हुए अध्ययन

1. **गुप्ता, प्रतिमा और शर्मा, अशोक कुमार (2018):** विद्यालय एवं पारिवारिक परिवेश के सन्दर्भ में विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों एवं राष्ट्रीय भावना का अध्ययन। **उद्देश्य**- विद्यालय एवं पारिवारिक परिवेश के सन्दर्भ में विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों एवं राष्ट्रीय भावना का अध्ययन संकाय एवं लिंग के आधार पर करना। **निष्कर्ष**- विद्यालय एवं पारिवारिक परिवेश के सन्दर्भ में विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों एवं राष्ट्रीय भावना में लिंग एवं संकाय के आधार पर सार्थक अंतर पाया गया।
2. **वैष्णव, श्वेता (2018):** आदिवासी एवं गैर आदिवासी किशोर विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों, समायोजन एवं पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन। **उद्देश्य**- आदिवासी एवं गैर आदिवासी किशोर विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों, समायोजन एवं पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना। **निष्कर्ष**- आदिवासी व गैर आदिवासी किशोर विद्यार्थियों में जीवन मूल्यों में समानता है परन्तु इनके समायोजन में काफी अन्तर है।
3. **शर्मा, चारू (2017):** माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत शासकीय, अशासकीय तथा केन्द्रीय विद्यालयों के विज्ञान, कला एवं वाणिज्य वर्ग के किशोर एवं किशोरियों के नैतिक मूल्यों में अंतर-एक अध्ययन। **उद्देश्य**- शासकीय, अशासकीय तथा केन्द्रीय विद्यालयों के विज्ञान, कला एवं वाणिज्य वर्ग के किशोर-किशोरियों के नैतिक मूल्यों में अन्तर ज्ञात करना। **निष्कर्ष**- शासकीय, अशासकीय तथा केन्द्रीय विद्यालयों के विज्ञान, कला एवं वाणिज्य वर्ग के किशोर एवं किशोरियों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

समस्या कथन

जयपुर जिले में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों का अध्ययन।

उद्देश्य

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों का अध्ययन निम्न संदर्भों में करना-
   - लिंग के संदर्भ में
   - विद्यालय के प्रकार के संदर्भ में
   - क्षेत्रीयता के संदर्भ में

परिकल्पना

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यार्थियों के मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों के मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

शोध विधि– इस शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श– इस शोध कार्य में न्यादर्श के लिए जयपुर जिले के माध्यमिक स्तर के 800 विद्यार्थियों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है।

उपकरण– इस शोध कार्य में आंकडों का संकलन करने के लिए जी.पी. शैरी एवं आर.पी. शर्मा द्वारा निर्मित व्यक्तिगत मूल्य मापनी का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी विधि– आंकडों का विश्लेषण मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं टी–परीक्षण के द्वारा किया गया।

विश्लेषण एवं व्याख्या

परिकल्पना–1 : माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मूल्य	परिणाम
छात्र	400	46.12	8.07	0.62	स्वीकृत
छात्राएं	400	46.48	7.93		

व्याख्या– उपरोक्त तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्रों के मूल्यों का मध्यमान 46.12, मानक विचलन 8.07 पाया गया तथा छात्राओं का मध्यमान 46.48, मानक विचलन 7.93 पाया गया है। इन प्राप्तांकों से टी परीक्षण का मान 0.62 पाया गया। स्वतंत्रता के अंश 798 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर टी का मूल्य 1.96 है। अर्थात् टी का गणना किया गया मूल्य, तालिका मूल्य से कम है इस आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अर्थात् माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

परिकल्पना–2 : माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यार्थियों के मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मूल्य	परिणाम
सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी	400	45.64	7.84	1.57	स्वीकृत
गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी	400	46.52	7.92		

व्याख्या– उपरोक्त तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों मूल्यों का मध्यमान 45.64, मानक विचलन 7.84 पाया गया तथा गैर सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों का मध्यमान 46.52, मानक विचलन 7.92 पाया गया है। इन प्राप्तांकों से टी परीक्षण का मान 1.57 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता के अंश 798 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर टी का मूल्य 1.96 है। अर्थात् टी का गणना किया गया मूल्य, तालिका मूल्य से कम है इस आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अर्थात् माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यार्थियों के मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

परिकल्पना–3 : माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों के मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मूल्य	परिणाम
शहरी विद्यार्थी	400	45.03	8.09	1.71	स्वीकृत
ग्रामीण विद्यार्थी	400	46.02	8.16		

व्याख्या- उपरोक्त तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् शहरी विद्यार्थियों के मूल्यों का मध्यमान 45.03, मानक विचलन 8.09 पाया गया तथा ग्रामीण विद्यार्थियों के मूल्यों का मध्यमान 46.02, मानक विचलन 8.16 पाया गया है। इन प्राप्तांकों से टी परीक्षण का मान 1.71 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता के अंश 798 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर टी का मूल्य 1.96 है। अर्थात् टी का गणना किया गया मूल्य, तालिका मूल्य से कम है इस आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अर्थात् माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों के मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

उपसंहार

समय की आधुनिकता ने भौतिकता की आड़ में जीवन के इन मूल्यों को काफी पीछे छोड़ दिया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि छात्रों में ऐसे मानवीय गुणों, संस्कारों, एवं मूल्यपरक आदर्शों को विकसित किया जाए जो उसके व्यक्तिगत उत्थान के साथ-साथ राष्ट्र में संपूर्णद मानव जाति के लिए उपयोगी हों, क्योंकि शिक्षा का लक्ष्य बच्चों का सर्वांगीण विकास है। अत: मूल्यपरक शिक्षा ही इसका सर्वोत्तम साधन है। आज समाज में व्याप्त मूल्यविहीन शिक्षा ने शिक्षाविदों का ध्यान मूल्य शिक्षा की ओर आकृष्ट किया है।

संदर्भ

गुप्ता रेनू (2007), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, नई दिल्ली : जगदम्बा बुक सैंटर, अंसारी रोड़।

कैला, शोभा अग्रवाल (2008), मूल्य शिक्षा, मेरठ : आर. लाल बुक डिपो।

शर्मा आर. ए. (2008), तत्वमीमांसा ज्ञान मीमांसा, मूल्यमीमांसा एवं शिक्षा, मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन।

सक्सैना एन. आर. स्वरूप (2008), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठ : आर. लाल बुक डिपो।

त्यागी, गुरसरनदास (2007), शिक्षा के सिद्धान्त, आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर।

पाण्डेय, रामशक्ल व मिश्रा, करूणा शंकर (2004), मूल्य शिक्षण, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

भारत में निजता का अधिकार के प्रशासनिक पहलु

डॉ. अनिल कुमार पारीक
सहायक आचार्य, लोक प्रशासन, राजकीय कला महाविद्यालय कोटा, राजस्थान

सारांश

निजता किसी व्यक्ति या समूह से अपनी जानकारी छिपाने की क्षमता है। निजता का अधिकार सामाजिक जीवन की वह स्थिति है जिसके बिना कोई भी व्यक्ति अपने श्रेष्ठ स्वरूप की प्राप्ति नहीं कर सकता है। निजता का अर्थ है कि किसी व्यक्ति का यह तय करने का उचित अधिकार कि वह किस हद तक दूसरों के साथ स्वयं को बांटेगा। निजता एक ऐसा विचार है जो भारत के स्वतंत्र होने के बाद से ही चर्चा में रहा है। विशेषकर सामाजिक एवं प्रशासनिक गलियारों में निजता एवं गोपनीयता जैसे शब्द अक्सर चर्चा में रहे है। व्यवहार में निजता (प्राइवेसी) ऐसे मामलों में होती है, जिसकी रक्षा की जानी चाहिए। यह अधिकार किसी कुकृत्य को ढकने के लिए नहीं है। लेकिन इस अधिकार की रक्षा इसलिए जरूरी है कि किसी भी प्रकार की निरंकुशता से बचाव हो सके। पुनः इस अधिकार की रक्षा तो होनी चाहिए लेकिन यह अधिकार सार्वजनिक हित से बढ़कर नहीं हो सकता। अर्थात निजता का अधिकार सम्पूर्ण नहीं है वरन राज्य के पास तर्कसंगत बंदिश की शक्ति होनी चाहिए।

शब्द संक्षेप - निजता, अनुच्छेद, मानवाधिकार, वैश्वीकरण, वैधानिक, प्रौद्योगिकी।

शोध उद्देश्य

1. प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य सामान्यतः भारत में वर्तमान में निजता के अधिकार की स्थिति की जानकारी प्राप्त करना है।
2. निजता का अधिकार क्यों आवश्यक है, इस विषय में वर्तमान वैधानिक परिदृश्य की जानकारी करना है।

शोध विधि - यह शोध पत्र विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक विधि पर आधारित है। इस पत्र में पूर्णतः द्वितीयक आंकडों का उपयोग किया गया है। इसमें विभिन्न शोध पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं, लेखों, विभागीय वेबसाइट एवम पुस्तकों का संदर्भ लेते हुए वर्णनात्मक व्याख्या के साथ समसामयिक सुझाव एवम निष्कर्ष निकाले गए हैं।

परिचय

आत्मरक्षा हर मनुष्य का मौलिक कर्तव्य है तथा उसके लिए वह सब कुछ करने का प्राकृतिक अधिकार रखता है। अतः प्रत्येक मनुष्य जीवन का स्वाभाविक अधिकार रखता है। यह अधिकार विधि द्वारा संरक्षित किया जाएगा तथा किसी को इससे मनमाने ढंग से वंचित नहीं किया जा सकेगा। लॉक ने नागरिक समाज को उनके जीवन, स्वतंत्रता तथा संपति के अधिकारों के पारस्परिक संरक्षण' के लिए एक संगठन के रूप में परिभाषित किया, तथा यह स्वीकारोक्ति मानवाधिकारों की सार्वत्रिक घोषणा के दावे की पूर्ववर्ती है जो है कि 'हम इन सत्यों को स्वप्रमाणित मानते हैं कि सभी मनुष्य जन्म से समान है और वे

अपने रचयिता द्वारा समान अविच्छेद्य अधिकारों से संपन्न किए गए है। इन अधिकारों में जीवन, स्वतंत्रता तथा सुखापेक्षा शामिल है'[1] (राज, 2006)। अपने देश के संविधान के तृतीय अध्याय के अंतर्गत मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। ये अधिकार मौलिक है क्योंकि ये स्वयं संविधान द्वारा ही प्रदत हैं। उचित निजता के अभाव में कोई भी अधिकार वास्तविक रूप में उपयोग लेने योग्य नहीं होता।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 जीवन व वैयक्तिक स्वतंत्रता के संरक्षण से संबंधित है[2] (कश्यप, 2002)। यह अनुच्छेद कहता है कि ''किसी व्यक्ति को उसके जीवन या वैयक्तिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया से ही वंचित किया जा सकेगा''। अत: अनुच्छेद 21 के अधीन मौलिक अधिकारों का उद्देश्य वैयक्तिक स्वतंत्रता के हनन तथा जीवन के दमन को रोकना है सिवाय विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के और यह प्रक्रिया तर्कपूर्ण, निष्पक्ष तथा न्यायोचित होनी चाहिए न कि मनमानी, विचित्र या सनकी। अत: भारतीय संविधान द्वारा मानवीय गरिमा के साथ शोषण मुक्त जीवन का अधिकार सुनिश्चित किया गया है। राज्य एक संवैधानिक उतरदायित्व के अधीन है कि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन न हो[3] (राज, 2006)।

निजता का अधिकार : जीवन के अधिकार का एक अभिन्न घटक

अगर हम निजता के शाब्दिक अर्थ पर एक नजर डालें तो, यह किसी व्यक्ति की एकांत में रखने या स्वयं अपनी सुविधानुसार सार्वजनिक होने की पसंद है। यह एक व्यक्ति की सार्वजनिक क्षेत्र में अज्ञात या अपरिचित रहने की इच्छा है। अगर एक व्यक्ति द्वारा कुछ व्यक्तिगत समझा जाता है, तो इसका यही मतलब है कि इसमें कुछ है जो कि उनके द्वारा स्वाभाविक रूप से विशेष या वैयक्तिक संवेदनशील माना जाता है।

किसी व्यक्ति द्वारा अपनी व्यक्तिगत सूचनाएं सार्वजनिक करना इस बात पर निर्भर करता है कि लोग उस विशिष्ट सूचना को कैसे देखते है। निजता का अधिकार कई देशों के निजता कानूनों या उनके संविधानों का अभिन्न अंग है। अत: ''निजता'' शब्द को ''व्यक्ति के अन्य लोगों से अपने हिसाब से तथा अपने स्तर मिलने-जुलने तथा औरों से संपर्क के समय,स्थान तथा स्थितियों पर उसके नियंत्रण'' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

निजता के लिए खतरे

सूचना तकनीक की बढ़ती सुविधा के साथ इसकी व्यक्तियों पर सूचनाओं के एकत्रण, विश्लेषण तथा प्रसारण की क्षमता ने तात्कालिक विधायन की मांग को जन्म दिया है। साथ ही, दूरसंचार में नवीन विकास, उन्नत परिवहन व्यवस्थाओं तथा वित्तीय हस्तांतरण से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा पैदा की जा रही सूचनाओं के स्तर में नाटकीय रूप से बढ़ोतरी हुई है। इन सबसे निजता के उल्लंघन की चिंता बढ़ी है। संपूर्ण विश्व के लोग निजता के छिनने के बारे में भय प्रकट कर रहे है, इससे उन देशों की संख्या अभूतपूर्व बढ़ी है जो अपने नागरिकों की निजता विशिष्ट रूप से संरक्षित कर रहे है।

यह सर्वज्ञात है कि शक्ति, क्षमता तथा संचार तकनीक की गति तेजी से बढ़ रही है इसके साथ ही निजता उल्लंघन- या निश्चित रूप से निजता के उल्लंघन की संभावना का स्तर साथ-साथ बढ़ रहा है। आज सोशल मीडिया भी निजता भंग करने का प्रभावशाली उपकरण बन गया है। एम.एम.एस. कांड, फेसबुक पर आपत्तिजनक पोस्ट, ट्विटर पर किसी ट्विट के जवाब में मिले वाली भद्दी गालियां या किसी की निजी फोन वार्ता का वायरल हो जाना इसके कुछ उदाहरण है।

निजता उल्लंघन में योगदान देने वाले कुछ महत्वपूर्ण कारक नीचे सूचीबद्ध है -

वैश्वीकरण- इसने डाटा प्रवाह की भौगोलिक सीमाओं को हटा दिया। इंटरनेट का विकास वैश्विक तकनीक का संभवत: सर्वोतम ज्ञान उदाहरण है।

मल्टी-मीडिया- इसने डाटा तथा चित्रों के अनेक प्रकार के प्रसारणों व प्रदर्शनों को समेकित किया जिससे एक ढंग से एकत्र सूचना को आसानी से दूसरे ढंग में परिवर्तित किया जा सकें।

निजता का महत्व

- निजता वह अधिकार है जो किसी व्यक्ति की स्वायत्तता और गरिमा की रक्षा के लिये जरूरी है। वास्तव में यह कई अन्य महत्वपूर्ण अधिकारों की आधारशिला है।
- दरअसल निजता का अधिकार हमारे लिये एक आवरण की तरह है,जो हमारे जीवन में होने वाले अनावश्यक और अनुचित हस्तक्षेप से हमें बचाता है।
- यह हमें अवगत कराता है कि हमारी सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक हैसियत क्या है हम स्वयं को दुनिया से किस हद तक बाँटना चाहते हैं[4] (दृष्टि, 2017)।
- वह निजता ही है जो हमें यह निर्णीत करने का अधिकार देती है कि हमारे शरीर पर किसका अधिकार है?
- आज हम सभी स्मार्टफोन का प्रयोग करते हैं। चाहे एपल का आईओएस हो या गूगल का एंड्राइड या फिर कोई अन्य ऑपरेटिंग सिस्टम, जब हम कोई भी एक डाउनलोड करते है, तो यह हमारे फोन के कॉन्टेक्ट, गैलरी और स्टोरेज आदि में प्रयोग की इजाजत मांगता है और इसके बाद ही वह एक डाउनलोड किया जा सकता है। ऐसे में यह खतरा है कि यदि किसी गैर-अधिकृत व्यक्ति ने उस एक के डाटाबेस में सेंध लगा दी तो उपयोगकर्ताओं की निजता खतरे में पड़ सकती है।

भारत में निजता की विधिक पृष्ठभूमि

वर्ष 1954 में एम.पी. शर्मा मामले में 8 जजों की और वर्ष 1962 में खड़क सिंह मामले में 6 जजों की खंडपीठ ने निजता को मौलिक अधिकार नहीं माना था। अत: बाद में जब इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने सुनवाई आरंभ की तो न्यायालय के नौ न्यायधीश की खंडपीठ बैठाई गई। दरअसल, सबसे पहले वर्ष 2013 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय में आधार की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते हुए एक जनहित याचिका दायर की गई थी। न्यायमूर्ति चेलामेश्वर की अध्यक्षता वाली तीन जजों की पीठ ने 11 अगस्त 2015 को निर्णय दिया कि आधार का इस्तेमाल केवल सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) और एलपीजी गैस की घरेलू आपूर्ति के लिये ही किया जाए। कुछ ही दिनों के बाद तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एच.एल. दत्तु की अध्यक्षता वाली खंडपीठ ने मनरेगा सहित कई अन्य योजनाओं में आधार के इस्तेमाल की इजाजत दे दी। तत्पश्चात शीर्ष न्यायालय में एक और याचिका दायर की गई कि क्या आधार मामले में निजता के अधिकार का उल्लंघन हुआ है और क्या निजता एक मौलिक अधिकार है?

संविधान का भाग 3 जो कुछ अधिकारों को 'मौलिक' मानता है में निजता के अधिकार का जिक्र नहीं किया गया है। इन सभी बातों का संज्ञान लेते हुए वर्ष 2017 में नौ जजों की संविधान पीठ ने मामले की सुनवाई आरम्भ कर दी और निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करना शुरू कर दिया –

1. निजता के अधिकार का दायरा क्या है?
2. निजता का अधिकार सामान्य कानून द्वारा संरक्षित अधिकार है या एक मौलिक अधिकार है?
3. निजता की श्रेणी कैसे तय होगी?
4. निजता पर क्या प्रतिबंध हैं
5. निजता का अधिकार, समानता का अधिकार है या फिर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का?

इस प्रकार बहस के उपरांत 24 अगस्त 2017 को सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले पर अपना निर्णय सुनाया। इस निर्णय के सामाजिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में दीर्घगामी परिणाम होंगे।

न्यायालय के फैसले में क्या है?

- शीर्ष अदालत ने अपने फैसले में कहा है कि जीवन का अधिकार, निजता के अधिकर और स्वतंत्रता के अधिकार को अलग-अलग करके नहीं बल्कि एक समग्र रूप में देखा जाना चाहिये।

- न्यायालय के शब्दों में ''निजता मनुष्य के गरिमापूर्ण अस्तित्व का अभिन्न अंग हैं और यह सही है कि संविधान में इसका जिक्र नहीं है, लेकिन निजता का अधिकार वह अधिकार है, जिसे संविधान में गढ़ा नहीं गया बल्कि मान्यता दी है''[5] (पुत्तुस्वामी, 2017)
- निजता के अधिकार को संविधान संरक्षण देता है क्योंकि यह जीवन के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का एक बाईप्रोडक्ट है। निजता का अधिकार, स्वतंत्रता और सम्मान के साथ जीने के अन्य मौलिक अधिकारों के साहचर्य में लोकतंत्र को मजबूत बनाएगा[6] (दृष्टि, 2017)
- निजता की श्रेणी तय करते हुए न्यायालय ने कहा कि निजता के अधिकार में व्यक्तिगत रूझान और पसंद को सम्मान देना, पारिवारिक जीवन की पवित्रता, शादी करने का फैसला, बच्चे पैदा करने का निर्णय, जैसी बातें शामिल हैं।
- किसी का अकेले रहने का अधिकार भी उसका निजता के तहत आएगा। निजता का अधिकार किसी व्यक्ति की निजी स्वायत्तता की सुरक्षा करता है और जीवन के सभी अहम पहलुओं को अपने तरीके से तय करने की आजादी देता है।
- न्यायालय ने यह भी कहा है कि अगर कोई व्यक्ति सार्वजनिक जगह पर हो तो ये इसका अर्थ यह नहीं कि वह निजता का दावा नहीं कर सकता।
- अन्य मूल अधिकारों की तरह ही निजता के अधिकार में भी युक्तियुक्त निर्बन्धन की व्यवस्था लागू रहेगी, लेकिन निजता का उल्लंघन करने वाले किसी भी कानून को उचित और तर्कसंगत होना चाहिये।

निजता बनाम सूचना का अधिकार

अनेक ऐसे उदाहरण है जिनसे निजता एवम सूचना का अधिकार परस्पर विरोधी प्रतीत होते है। अक्सर लोग सूचना के अधिकार में लोक सेवकों के अवकाश लेने का कारण पूछते है, जबकि लोक सेवक अवकाश अधिकतर मामलों में घरेलू कारण या बीमार होने पर लेते है, जिनको वे गोपनीय रखना चाहते है। इस संबंध में मध्यप्रदेश सूचना आयोग ने निर्णय दिया है कि कार्मिकों के अवकाश व उपस्थिति संबंधी जानकारी तो साझा करनी चाहिए लेकिन अवकाश के आवेदन की नकल देना बाध्यकारी नहीं है। अवकाश के व्यक्तिगत कारणों का खुलासा तब तक नहीं किया जाना चाहिए जब तक लोकहित की परिस्थिति उत्पन्न नहीं हो। निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार बताने के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का कुछ प्रभाव सूचना के अधिकार पर भी पड़ सकता है। आर.टी.आई. एक्ट की धारा 8(1) जे व धारा 11 में गोपनीयता को संबोधित किया गया है। यद्यपि इस एक्ट व निजता के मध्य थोड़ा बहुत संघर्ष पहले से मौजूद रहा है,लेकिन अब निजता का मूल अधिकार बनने से यह संभव है कि डिस्क्लोजर के आदेश को आगे चुनौती दी जाए[7] (टाइम्स, 2017) लोक सेवकों के डिस्क्लोजर पर अधिक दबाव रहता है। लोकहित के लिए इस तरह की सूचनाएँ आम की भी जा रही है। लेकिन परिवर्तित परिदृष्य में इस शब्द व धारा को चुनौती देना संभव है।

निजता के अधिकार के वास्तविक अस्तित्व से संबंधित प्रश्न, जो कि स्वयं जीवन के अधिकार में निहित है, कुछ समय पूर्व कॉर्पोरेट लॉबिस्ट नीरा राडिया के साथ अपनी बातचीत के टेप के खुलासे के संबंध में रतन टाटा द्वारा अपनी शिकायत उच्चतम न्यायालय ले जाने से चर्चा में आ गया था।

भारतीय दण्ड विधान की धारा 509 के अनुसार किसी स्त्री की निजता में घुसपैठ अपराध है। वर्ष 2012 में केन्द्र सरकार ने निजता के अधिकार तथा डी.एन.ए. प्रोफाइलिंग विधेयक 2015 के तहत न्यायमूर्ति ए.पी. शाह की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था, जिसे इन दोनों मुद्दों पर अपनी राय देनी थी। समिति ने स्पष्ट कहा कि ऐसा कोई कानून बनाने से पहले निजता के अधिकार का एक मजबूत कानून बनना चाहिए। व्यवहार में आज हमारे समाज में एक ऐसा दौर आ गया है कि सरकार या प्रशासन द्वारा कोई सूचना मांगे जाने पर तो हम आशंकित हो जाते है, जबकि दैनिक जीवन में अपनी निजी सूचनाओं की सुरक्षा को लेकर जागरूक नहीं है। गूगल, फेसबुक, व्हाट्सएप, अमेजन आदि अनेक बड़ी कम्पनियां हमारी कई तरह की निजी जानकारी रखती है। ये हमारी पसंद ना पसंद जानती है। इनके पास यह हिसाब रहता है कि हम कहां जाते है, रात्रि में

कितने बजे सोते है, किस तरह का साहित्य पढ़ते है,हमारी विचारधारा क्या है? हम किस बात को लेकर तनाव में है, हमारी पसन्द ना पसन्द क्या है? कौन-कौन हमारे दोस्त है। आज फ्री वाई-फाई के लिए लोग अपने कान्टेक्ट डिटेल्स सहित तमाम संवेदनशील जानकारियाँ साझा कर लेते है। एडवर्ड स्नोडेन[8] द्वारा किए गए खुलासे से जाहिर होता है कि निजी कम्पनियों के पास जो संवेदनशील गोपनीय सूचनाएँ होती है, वे उन्हें अन्य लोगों के पास साझा करते है। ऐसे में जब लोगों को अपनी निजता के संबंध में नगण्य जागरूकता है, इस संबंध में न्यायपालिका या विधायिका द्वारा निजता के संबंध में ठोस कानून लाना आवश्यक हो गया है। ऐसी परिस्थितियों में सर्वोच्च्व न्यायालय का अगस्त-2017 में निजता को मौलिक अधिकार घोषित करने का यह निर्णय इस दिशा में मील का पत्थर साबित होगा। आज प्रौद्योगिकी का लाभ उठाना वक्त की जरूरत है, किन्तु संतुलन बनाना अनिवार्य है,जिससे व्यवहार में इससे किसी की निजता प्रभावित नहीं हों।

निष्कर्ष

इतिहास को बनते हुए देखना अपने आप में एक सौभाग्य है और फिर इतिहास रोज बनते भी तो नहीं, किन्तु निजता के मामले में उच्चतम न्यायालय की नौ जजों की संविधान पीठ का निर्णय आजाद भारत में एक ऐसी ऐतिहासिक घटना है, जो आने वाले दशकों में लोकतंत्र को मजबूती देने का कार्य करती रहेगी। न्यायालय ने कहा है कि निजता का अधिकार एक मौलिक अधिकार है, जिसे अनुच्छेद 21 के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त है। दरअसल इस मामले की सुनवाई के दौरान एटॉर्नी जनरल के.के. वेणुगोपाल ने कहा था कि निजता एक इलीट अवधारणा है यानि प्राईवेसी खाते-पीते घरों की बात है और निजता का विचार बहुसंख्यक समाज की जरूरतों से मेल नहीं खाता। लेकिन संविधान के पहरेदार उच्चतम न्यायालय का कहना है कि यह कहना कि 'जरूरतमंद लोगों को बस आर्थिक तरक्की चाहिये, नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार नहीं' उचित नहीं है। देश की सबसे बड़ी अदालत के इस निर्णय के निहितार्थ को समझने का प्रयास करें तो आपको यह निर्णय नहीं बल्कि एक सुंदर कविता प्रतीत होगी, जो बार-बार पढ़ी जानी चाहिये। सच कहें तो हम इस निर्णय के ऐतिहासिक महत्व की पहचान तब तक नहीं कर पाएंगे, जब तक कि हम निजता के महत्व से ही अनजान हों।

सन्दर्भ

1. एस राज, (2006), समकालीन भारतीय मुद्दे, नई दिल्ली, सी.एस.टी. पब्लिकेशन, पृष्ठ 606
2. कश्यप सुभाष, (2002), भारतीय संविधान-नई दिल्ली
3. एस राज, (2006), समकालीन भारतीय मुद्दे, सी.एस.टी. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 607
4. निजता अब मूल अधिकार, दृष्टि पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 25 अगस्त, 2017
5. के. एस पुत्तुस्वामी बनाम भारत सरकार, 24 अगस्त, 2017, सर्वोच्च्व न्यायालय।
6. निजता अब मूल अधिकार, दृष्टि पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 25 अगस्त, 2017
7. टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 26 अगस्त, 2017
8. एडवर्ड स्नोडेन एक अमेरिकन खुफिया सूचना प्रकटक है। इन्होंने मीडिया की सहायता से अमेरिका व ब्रिटेन की सरकारों के कुछ गुप्त 'जन निगरानी कार्यक्रमों' के वर्गीकृत विवरणों को सार्वजनिक किया है। इन्होंने निजी कम्पनियों द्वारा डाटा सूचनाओं के अवैध दुरुपयोग की भी चेतावनी दी है। फलतः इन्हें अमेरिका से पलायन कर रूस में शरण लेनी पड़ी थी।

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

भारत में संसदीय गरिमा का अवमूल्यन : समस्या एवं समाधान

मेहर सिंह
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा
डॉ. मंजीत
सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा

शोधालेख सार

वस्तुतः भारत की संसदीय प्रणाली कोई नयी घटना नहीं है। वैदिक युग में भी हमारी संसदीय संस्थाओं से मिलती-जुलती ही व्यवस्थाएं थी। अन्तर केवल इतना है कि उस समय राजतन्त्र था और वर्तमान में लोकतन्त्र है, जिसमें संसदीय परम्पराएं काफी विकसित परिपाटी का निर्वहन करते हुए संसदीय गरिमा को सुरक्षित रखती हैं। लेकिन 1990 के दशक में हमारे संसदीय लोकतन्त्र को आहत करने वाली घटनाएं देखने को मिलने लगी। वर्ष 1991 में कांग्रेस पार्टी की नरसिम्हा राव सरकार में बहुमत बनाए रखने के लिए सांसदों की खरीद फरोत का मामला ऊजागर हुआ। तत्पश्चात् कई राजनीतिक घोटालों ने देश की ही गरिमा को आघात पहुंचाया। संसद का नोट कांड भी संसदीय गरिमा का अवमूल्यन करने वाली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसी तरह के अनेक प्रयास हमारी संसदीय गरिमा का अवमूल्यन करने वाले सिद्ध हुए हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत की संसदीय प्रणाली के अवमूल्यन की समस्या को उजागर किया गया हैं।

मूल शब्द : संसदीय प्रणाली, संसदीय गरिमा, राजनीतिक भ्रष्टाचार, संसदीय परम्पराएं।

भूमिका

आज अधिकांश राजनीतिक विश्लेषक इस बात से सहमत हैं कि भारत में राजनीति व प्रशासन दोनों में नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है, यही कारण है कि वे जनता के प्रति संवेदनशील नहीं है। वर्तमान समय में राजनीति का व्यवसायीकरण होने के कारण लोक कल्याण व लोकहित की भावना विलुप्त हो गई है। शीर्ष राजनीतिक स्थान प्राप्त करने की नेताओं में रस्साकशी तथा राजनीतिक शिखर से एक-दूसरे को धक्का देकर नीचे गिराने की साजिशों, चारा-घोटाला के आरोपी बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री लालू यादव द्वारा जेल से शासन चलाने की घोषणा एवं अपनी पत्नी राबड़ी देवी को मुख्यमंत्री पद सौंपने, उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भण्डारी के आचरण से बुद्धिजीवी वर्ग को झकझोर दिया है अर्थात् अनुच्छेद 356 के बार-बार दुरुपयोग ने राज्यपाल को केन्द्र का दलाल तक कहा गया। अन्ततः इन घटनाओं से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के प्रति देश में अनास्था की एक ऐसी लहर ने जन्म लिया है कि हमारे संसदीय लोकतन्त्र के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया है।

राजीव शुक्ला ने अपने लेख ''संसदीय हंगामे की परम्परा'' में संसदीय गरिमा के पतन एवं अवमूल्यन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, ''संसद बनी ही इसलिए है कि विचारों का आदान-प्रदान हो, गरमा-गरम बहस हो। सांसद नियमों के मुताबिक अपनी बात कहें, लेकिन इधर यह रवैया बन गया है कि किसी भी मुद्दे पर कुछ सदस्य उठकर अध्यक्ष के आसन

पर चले जाते हैं और उस समय अध्यक्ष असहाय हो जाता है। उसके सामने सदन को स्थगित कर देने के अलावा कोई चारा नहीं रहता। आजकल जितनी जल्दी-जल्दी सदन स्थगित हो रहा है, वह लोकतंत्र के लिए कोई शुभ लक्षण नहीं है। अब तो यह हाल हो गया है कि किसी राज्य में कोई छोटी-सी घटना हुई तो उस पर भी संसद की कार्यवाही ठप कर दी जाती है। जो विषय विधानसभा में उठने लायक है उन्हें संसद में उठाया जा रहा है। इसकी एक वजह यह भी है कि आजकल क्षेत्रीय दलों का संसद में ज्यादा प्रभाव है। वोट बैंक के लिहाज से उन्हें अपने राज्य की घटना ज्यादा महत्वपूर्ण लगती है। उसका पूरा राजनीतिक फायदा उठाने के लिए वे उसे संसद में उठाकर कार्यवाही ठप करा देते हैं। कभी-कभी हम लोग पत्रकारों से मजाक में कहते हैं कि यदि दोनों सदनों में प्रेस गैलरी खत्म करा दी जाए तो दोनों हाउस का कोरम पूरा हो पाना भी मुश्किल हो जाएगा। फिर शायद ही कुछ सांसद सदन में जाएंगे और बोलेंगे। ज्यादातर सांसद दस्तखत करके सेंट्रल हाल में बैठेंगे, बाहर लगे टी.वी. कैमरे में पार्टी की तरफ से बयान देकर चले जाएंगे। लालकृष्ण आडवाणी बताते हैं कि वर्ष 1957 में पार्टी के दो-चार सांसद ही होते थे। इनमें अटल बिहारी वाजपेयी भी एक थे। हम कई दिनों तक भाषण तैयार करते थे, लेकिन बोलने के लिए मौका ही नहीं मिलता था। तर्क होता था कि आपकी पार्टी के इतने कम सदस्य हैं, इसलिए आपको डेढ़ मिनट से ज्यादा वक्त नहीं मिल सकता। तब ऐसा नहीं होता था कि वाजपेयी उठकर जबरदस्ती बोलने लगते या सदन न चलने देने की कीमत पर जबरन अपनी बात कह देते, पर आज भाजपा के ही सदस्य इस परंपरा को तोड़ रहे हैं। सच तो यह है कि हर पार्टी के लोग संसद को सुचारू रूप से चलाने के लिए गंभीरता का परिचय नहीं दे रहे हैं।''

वैसे तो हमारे देश में सैद्धांतिक रूप से संसद को भारतीय लोकतंत्र की कार्यशाला और व्यक्तिगत स्वतंत्रता और गौरव की रक्षक के रूप में जाना जाता है। इसके साथ-साथ सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधायी कार्यों और गंभीर विचार-विमर्श का मंच प्रदान करने के साथ-साथ इससे यह अपेक्षा की जाती है कि यह शासन तंत्र के बौद्धिक अनुभाग के रूप में कार्य करे ताकि राष्ट्र निर्माण के स्वप्न को साकार किया जा सके। हालांकि व्यवहार में इनमें से कोई भी कार्य और जिम्मेदारी का सही ढंग से निर्वहन नहीं किया जा रहा। यहां इस बात पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है कि भारत का संविधान संघात्मक शासन व्यवस्था कायम करता है, इसे संसदीय लोकतन्त्र की महत्त्वपूर्ण विशेषता माना जाता है। परन्तु विगत कुछ वर्षो से विखण्डित संघीय प्रवृत्तियां तेजी से उभरी हैं, जिससे देश की एकता व अखण्डता को भयानक खतरा उत्पन्न हुआ है। 1990 के दशक से ही गठबन्धन राजनीति की उत्पत्ति ने भारतीय संघवाद का स्वरुप ही बदल दिया। इस दौर में क्षेत्रीय दलों की बढ़ती राजनीतिक भूमिका ने संघवाद में सौदेबाजी की पीत राजनीति व राजनीतिक अस्थिरता को जन्म दिया। इसके साथ-साथ भारतीय संघवाद को क्षेत्रीय संतुलन की चुनौती का भी सामना करना पड़ा है। जब क्षेत्रीय हितों को संसदीय पटल पर उजागर किया जाता है तो संसदीय कार्य व्यवहार में बाधा उत्पन्न होती है। क्षेत्रीय दलों के हिमायती सांसद का समय बर्बाद करते हैं। इस तरह संघवाद की बदलती प्रवृत्ति ने हमारे संसदीय लोकतन्त्र की गरिमा को ठेस पहुंचाने का ही कार्य किया है।

जगमोहन ने अपने लेख- ''संसद की समस्या'' में लिखा है कि वर्तमान समय में संसद की तरफ से अनुशासनहीनता, असंयम और अलोकतांत्रिक व्यवहार जैसे तमाम गलत संकेतों का मिलना गम्भीर चिंता की बात है। अत: आज राष्ट्र निर्माण में इसका योगदान नकारात्मक ही है। लोकसभा के पीठासीन अधिकारी अक्सर सदस्यों से यह कहते सुने गए हैं कि 'मैं आप लोगों के कारण शर्मिदा हूं। संसद सदस्यों को अपने वायदे और वचन तोड़ने में जरा भी आत्मग्लानि नहीं होती। वर्ष 1997 में तत्कालीन लोकसभा स्पीकर पी.ए. संगमा ने सदन की कार्यवाही में सुधार के लिए तहेदिल से प्रयास किए। संसद के स्वर्ण जयंती सत्र में इस मुद्दे पर विशेष रूप से चर्चा भी की गई तथा गहन विचार-विमर्श के बाद चर्चा में भाग लेने वाले करीब-करीब सभी सदस्यों ने सदन में अनुशासन कायम रखने और मर्यादित तरीके से कार्यवाही चलाने पर जो दिया। इसे संसदीय गरिमा को बढ़ाने वाला कदम माना जाता है औ यही अपेक्षा हमारे सांसदों से हम आज भी रखते हैं।

परन्तु हमारे संसदीय लोकतन्त्र की यह विडम्बना है कि दूसरी तरफ कुछ लोगों को इतना काला धन प्राप्त हो गया है कि वे समझ नहीं पा रहे हैं कि उसे कैसे खर्च किया जाए? 21वीं सदी के प्रथम दशक में इंडियन पार्लियामेंट ग्रुप के अधिकांश सदस्यों ने खुलकर कहा कि आए दिन उजागर होते हुए घोटालों के कारण आम जनता का विश्वास राजनेताओं पर से उठता जा रहा है। लोग सपने में भी नहीं सोचते थे कि पर्दे के पीछे कैसा-कैसा खेल हो रहा हैं और ये सफेदपोश लोग कोयले का कैसा काला धंधा कर रहे हैं। कई निष्पक्ष सांसदों और पूर्व सांसदों ने इस बात पर घोर चिंता जताई कि जिस तरह से संसद

के दोनों सदनों की कार्यवाही अवरुद्ध हो गई है उससे संसद का आखिर क्या भविष्य होगा? मानसून सत्र होहल्ले के बीच ही समाप्त हो गया। लोगों को डर है कि शायद संसद के शीतकलीन सत्र का भी यही हाल हो। ईमानदार व निष्पक्ष सांसदों की यह चिंता बिना वजह ही नहीं है। प्राय: संसदीय सत्र बिना किसी समस्या का समाधान किए ही समाप्त हो जाते हैं।

गठबन्धन राजनीति के दौर में संसदीय हंगामा संसदीय परम्परा बन गई है। इससे संसदीय लोकतंत्र की गरिमा का ह्रस हो रहा है। इसी तथ्य पर टिप्पणी करते हुए स्वप्न दास गुप्ता ने अपने लेख- 'नाजुक दौर में संसदीय तन्त्र' में लिखा है कि जब किसी युक्ति का बार-बार प्रयोग किया जाता है जो उसे नकारात्मक परिणाम आने लगते हैं। संसद में आए दिन होने वाले हंगामें के कारण जनप्रतिनिधियों से लोगों की उम्मीदें खत्म होने लगी हैं। स्वतंत्रता की पचासवीं वर्षगांठ पर स्पीकर पी.ए. संगमा ने तमाम पार्टियों से अपील की थी कि संसदीय आचरण के कुछ मूल मानकों का पालन करें। परन्तु इस अपील का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अत: आज संगठित हुड़दंग सदन की एक सतत् समस्या बन गयी है। संसद में हंगामा मचाने वाली भारतीय जनता पार्टी अकेली नहीं है आज जो कांग्रेस संसद की नियति पर रोष प्रकट कर रही है, वह भी विपक्ष में रहने के दौरान इतनी ही उपद्रवी थी, जितनी अब भाजपा है। ताबूत घोटाला, तहलका के स्टिंग ऑपरेशन और यहां तक कि इराक में युद्ध जैसे मुद्दों पर कांग्रेस ने वैसी ही दलीलें देकर संसद के बाधित किया था जैसे कोयला घोटाले मामले में प्रधानमंत्री के त्यागपत्र की मांग पर भाजपा दलीलें दे रही है। इसका सीधा सा तात्पर्य है कि कोई भी राजनीतिक दल दूध का धोया नहीं है। संसद में विपक्षी दल अपने मूल लक्ष्य से भटक कर केवल मात्र सत्तारूढ़ पार्टी को निशाना बनाकर निरन्तर हंगामा मचाए रखना ही अपना राजनीतिक धर्म समझते हैं।

वर्ष 2012 में संसदीय प्रणाली की हीरक जयन्ती के अवसर पर संजय गुप्त ने एक लेख में लिखा कि आज संसदीय प्रणाली के बारे में आत्ममंथन की आवश्यकता है। इसके साथ-साथ उन्होंने संसदीय गरिमा के गिरते स्तर पर चिंता व्यक्त की है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि आज संप्रभु भारत की संसद की पहली बैठक की हीरक जयंती है। साठ वर्ष पहले पंडित जवाहर लाल नेहरू ने नेतृत्व वाली पहली संरकार ने 13 मई 1952 को संसद की पहली बैठक के जरिये जिस संसदीय परम्परा की शुरुआत की थी, वह आज अनेक उतार-चढ़ाव के बावजूद लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए एक आदर्श बनी हुई है। देश के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने संसद की पहली बैठक को संबोधित करते हुए समस्याओं का उल्लेख करते हुए संसदीय प्रणाली के जरिये उनका निदान करने का भरोसा जताया था। उनका यह विश्वास सही साबित हुआ है। संसद की कार्यवाही आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी अपनी पहली बैठक के समय थी। यह बात अलग है कि समय के साथ संसदीय कार्यवाही के स्तर और गरिमा में गिरावट महसूस की जा रही है। संसदीय बैठकों का समय लगातार कम होता जा रहा है। वर्ष 1952 में लोकसभा की जहां 103 बैठकें हुई थीं, वहीं 2011 में यह संख्या घटकर 73 रह गई हैं। पहले जहां प्रत्येक विधेयक पर संसद में पूरी बहस होती थी, वहीं अब संसद में विधेयक पारित होने से पहले उसे स्थायी समितियों के हवाले कर देने का नया चलन आरंभ हो गया है। इसके चलते विधेयकों पर चर्चा और उन्हें पारित करने के दौरान होने वाली बहसों ने एक प्रकार की औपचारिकता का रूप ले लिया है। इस तरह संसद की कार्यवाही व बैठकों में विधेयकों को लेकर आज संसदीय प्रणाली की गरिमा को हानी हुई है। वर्तमान में प्रत्येक विधेयक पर संसदीय बहस नाममात्र की रह गई है। वर्ष 2020 में तीन कृषि विधेयकों को पास करते समय कोई बहस नहीं हुई थी।

यहां यह बात कहना अधिक प्रासंगिक है कि संसद में बहस का स्तर भले ही गिरता जा रहा हो, लेकिन पक्ष-विपक्ष के दलों को यह अवश्य पता है कि संसद में जोरदार तरीके से अपनी बात कहकर आम जनता को यह आभास करा सकते हैं कि वे उसके हितों को लेकर गंभीर हैं। अपनी इस कोशिश में वे विरोधी राजनीतिक दलों को नीचा दिखाने का कोई मौका नहीं छोड़ते। भले ही राजनीतिक दल इसे लोकतांत्रिक प्रणाली का हिस्सा मानें, लेकिन उन्हें इस पर विचार करना चाहिए कि क्या संसद का इस्तेमाल केवल एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए किया जाना चाहिए? आज यह तथ्य किसी से छिपा नहीं कि छोटे-छोटे मुद्दों को लेकर संसद एक तरह से ठप हो जाती है। इस तरह संसद का बहुमूल्य समय तो नष्ट होता ही है, आम जनता यह सोचने के लिए विवश हो जाती है कि जिन्हें उसने अपने प्रतिनिधि के रूप में चुनकर भेजा है वे देश की समस्याओं के प्रति गंभीर नहीं हैं चूंकि सूचना क्रांति के इस युग में मीडिया के माध्यम से आम जनता को न केवल सूचनाएं जल्दी मिल जाती हैं, बल्कि उन पर बहस भी आरंभ हो जाती है। ऐसे में संसद में एक-डेढ महीने बाद उसी मुद्दे पर जब चर्चा होती

है तो उसका कोई विशेष महत्व नहीं रहा जाता। एक लोकतांत्रिक देश होने के नाते हमारे जन प्रतिनिधियों द्वारा संसद में जवलंत मुद्दों का उठाना स्वाभाविक ही है और यह हमारी संसदीय व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू भी है, लेकिन परिवर्तित राजनीतिक परिवेश में खुद संसद को अपनी उपयोगिता पर नए सिरे से विचार करना चाहिए। इसमें संसदीय कार्यप्रणाली, संसदीय आचार संहिता का पालन करने पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है। इस दिशा में निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते है –

- प्रश्नकाल के दौरान सदन में शान्ति बनाए रखी जाए ताकि संसद का अमूल्य समय नष्ट न हो।
- सदन के बीच में आने से बचने की कोशिश की जाये ताकि संसद की जो कार्यवाही चल रही है, उसमें अवरोध उत्पन्न न हो।
- सभी संसद सदस्यों को अपने कर्त्तव्यों के साथ–साथ मर्यादा एवं राष्ट्रीय अस्मिता का सदैव ध्यान रखना चाहिए। यह हमारी संसदीय प्रणाली के लिए एक सम्मान की।
- सदन में किसी तरह की नारेबाजी नहीं की जानी चाहिए। वास्तव में यह एक अशोभनीय संसदीय व्यवहार है, जिसकी उम्मीद हमारे जनप्रतिनिधियों से नहीं की जाती।
- संसद में किसी जनप्रतिनिधि द्वारा विरोध व्यक्त करने के लिए सदन में कोई दस्तावेज नहीं फाड़ा जाना चाहिए। यह एक अशोभनीय संसदीय व्यवहार है, जिसकी उम्मीद किसी जनप्रतिनिधि से नहीं की जा सकती।
- किसी भी जनप्रतिनिधि को पीठासीन अधिकारों की बिना पूर्व अनुमति के सदन में कोई बयान नहीं पढ़ना चाहिए। इसके लिए अध्यक्ष द्वारा सभी सदस्यों को पहले निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार समय दिया जाता है।
- अत: अध्यक्ष द्वारा अनुमति दिए जाने के पूर्व सदस्यों को किसी मामले पर नहीं बोलना चाहिए।
- स्पीकर की सदन संचालन की व्यवस्था पर न तो कोई सवाल उठाया जाना चाहिए और न ही किसी तरह की टिप्पणी की जानी चाहिए। यह संसदीय नियमों का उल्लंघन है, जो सदन में अव्यवस्था पैदा करता है।
- सदन की समितियों के सदस्यों को किसी मामले के तथ्यों को जानने के लिए तब तक यात्रा पर नहीं जाना चाहिए जब तक कि यह अति आवश्यक न हो।
- संसद सदस्यों को उपलब्ध कराए गए सरकारी आवास को किराए पर या अन्य किसी व्यक्ति को रहने के लिए न देकर उससे किसी तरह का आर्थिक लाभ अर्जित न किया जाए। यह संसदीय मर्यादा व गरिमा को ठेस पहुँचाने वाला कृत्य है।
- किसी जनप्रतिनिधि को कोई ऐसा साहित्य, प्रश्नावली, पर्चा, प्रेस विज्ञप्ति, संसद या विधानमण्डल के परिसर में वितरित न करें, जिसका सदन के कामकाज से कोई संबंध न हो।
- किसी भी विधायक या सांसद द्वारा सदन में कोई झण्डा, निशान या किसी तरह की अन्य वस्तु का प्रदर्शन नहीं किया जाए क्योंकि यह संसदीय व्यवहार के विरूद्ध जाता है।
- सभी सांसदों व विधायकों को जन प्रतिनिधित्व की सही तस्वीर पेश करनी चाहिए ताकि सम्बन्धित निर्वाचन क्षेत्र की समस्याओं का ज्ञान सत्तारूढ़ दल को हो और संतुलित विकास की प्रक्रिया से उस क्षेत्र को जोड़ा जा सके।

सारांश

अत: आज हमारे संसदीय लोकतन्त्र को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है तथा राजनीति का अपराधीकरण व संसदीय मर्यादाओं का चीर–हरण एक बहुत बड़ी समस्या बनकर उभरी है। वास्तव में आज हमारी संसद व विधानमंडल में सांसदों व विधायकों का व्यवहार वैसा नही है जो वर्ष 1952 में प्रथम बैठक में दिखाई दिया था। वर्तमान दौर में हमारी संसदीय परम्पराओं को हानि पहुंचाने में सर्वाधिक योगदान अपराधिक प्रवृत्ति वाले जनप्रतिनिधियों का ही है। दिन–प्रतिदिन सांसदों द्वारा असंसदीय भाषा का प्रयोग और असंसदीय आचरण आम बात हो गई है। इसलिए आज समय की मांग है कि भारतीय संसदीय लोकतंत्र की रक्षा के लिए जरूरी है कि हमारे जनप्रतिनिधियों द्वारा संसदीय परम्पराओं का सम्मान किया

जाए और संसदीय गरिमा बनाए रखी जाए। संसदीय लोकतन्त्र में जनता का विश्वास बनाए रखने के लिए जनप्रतिनिधियों द्वारा स्वस्थ संसदीय परम्पराओं का निर्वहन किया जा सके। इसके लिए जरूरी है कि सांसदों के विशेषाधिकारों की रक्षा की आड़ में संसदीय मर्यादाओं के साथ कोई खिलवाड़ न किया जाए। इसी के दृष्टिगत सांसदों के लिए आचरण के नियमों का निर्धारण करना बहुत आवश्यक है ताकि वे संसद में ऐसा व्यवहार न कर सकें जिससे संसदीय गरिमा का ह्रास हो और संसदीय प्रजातन्त्र के लिए उनका व्यवहार एक चुनौती बनकर उभरे। अन्ततः संसदीय गरिमा के अवमूल्यन को रोकने के लिए चुनावी आचार संहिता के साथ-साथ संसदीय आचार संहिता का भी कठोरता से अनुपालन सुनिश्चित किया जाए। इसमें जनजागरूकता कार्यक्रमों की विशेष भूमिका हो सकती है। यदि मतदाता किसी अपराधिक प्रवृत्ति वाले उम्मीदवार को संसद या विधानमंडल में पहुंचने ही न दे तो अधिकतर समस्याएं तो नदारद हो जाएगी तथा संसदीय लोकतन्त्र के सुन्दर भविष्य का स्वप्न साकार होगा।

संदर्भ

- सिंह, राजबीर, भारतीय संविधान, एशियन प्रेस बुक्स, कोलकाता, 2022
- शुक्ला, राजीव, ''संसदीय हंगामें की परम्परा'', दैनिक जागरण, 25 अगस्त, 2007
- जैन, अनिल, ''नैतिकता का अर्थ सिर्फ कठोरता नहीं'', दैनिक भास्कर, 29 दिसम्बर, 2005
- कुमारी, रीना एवं सोनिका, ''वैश्वीकरण के युग में भारतीय संघवाद की चुनौतियां'', दृष्टिकोण-शोधपत्रिका, वर्ष-12, अंक-5, सितम्बर-अक्तूबर 2020
- जगमोहन, ''संसद की समस्या'', दैनिक जागरण, 3 अप्रैल, 2008
- राजहंस, गौरी शंकर, ''लोकतंत्र के भविष्य का सवाल'', दैनिक जागरण, 9 सितम्बर, 2012
- गुप्ता, स्वप्न दास, ''नाजुक दौर में संसदीय तंत्र'', दैनिक जागरण, 3 सितम्बर, 2012
- दीक्षित, हरदयनारायण, 'संसदीय मर्यादा का चीरहरण'', दैनिक जागरण, 7 सितम्बर, 2012
- सिंह, कमलेश कुमार, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008
- https://byjusexamprep.com/current-affairs/decline-of-parliament-in-india
- https://www.orfonline.org/expert-speak/has-the-indian-parliament-stood-the-test-of-time
- https://www.deccanherald.com/opinion/main-article/decline-of-parliament-638351.html

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

माध्यमिक स्तर पर समायोजन, मूल्यों एवं शैक्षिक उपलब्धि के सम्बन्ध में अभिभावक-छात्र सम्बन्धों के सीखने की रणनीति के विकास का अध्ययन

सरोज कुमार
शोधार्थी, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर
डॉ. नीरू वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर
डॉ. संजय कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, ए.टी.एम.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, हापुड़, उ.प्र.

सारांश

आधुनिक परिवार कानून एक ऐसे परिवार पर आधारित है जिसमें दंपत्ति के अपरिपक्क बच्चे शामिल हैं। आधुनिक अभिभावक-बाल कानून, ऐसे ही माता-पिता और अपरिपक्व बच्चों के बीच संबंधों को नियंत्रित करते हैं, जो दो सघर्षशील पीढ़ियों में सन्तुलन बनाने का कार्य करता है। अभिभावक-बाल कानून का दर्शन अभिभावक-उन्मुख सिद्धांत नहीं है, बल्कि बच्चे के कल्याण और हितों की रक्षा करने और उसे पूर्ण सम्मान देने के उद्देश्य की ओर बढ़ाता है। इस कारण से अनुशासित और अभिभावक-बाल कानून माता-पिता और बच्चों के बीच नियंत्रण और आज्ञाकारिता पर आधारित होते हैं, जबकि यहां माता-पिता की इच्छा के हितों को प्राथमिकता दी जाती है। अत: अपने घर के बच्चों में वे सारे संस्कार विकसित करने होंगें जिससे वे सफल नागरिक बनकर समाज को समुन्नत कर सकें व राष्ट्रीय गौरव में भी वृद्धि कर सकें। अपने बुनियादी शिक्षा के मन्तव्य के पक्ष में महात्मा गाँधी ने कहा था कि बुनियादी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें बच्चा भाषा, गणित व विषयों को पढ़ने के अलावा कुछ ऐसा भी सीखे जिससे वह तकनीकी रूप से आत्मनिर्भर हो सके। अत: अभिभावक का यह शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक दायित्व भी है कि वे बालक को शिक्षित ही नहीं आत्मनिर्भर व स्वावलम्बी नागरिक बनाने में सहयोग करें। अभिभावक समय व समाज की आवश्यकता के अनुरूप अपने बालकों को तैयार करता है।

मुख्य शब्द : माध्यमिक विद्यालय, समायोजन, मूल्य एवं अभिभावक-छात्र सम्बन्ध।

प्रस्तावना (Introduction)

आज के समय में अभिभावक का सामाजिक उत्तरदायित्व बढ़ गया है, क्योंकि आज समाज में स्वीकार्यता का मापदण्ड ही बदल गया है। पहले दुष्टजन रास्ता छोड़ देते थे, जब सज्जन पुरूष आ रहा होता था क्योंकि समाज में तब सज्जनता की साख थी। आज का समाज उन्हें महत्व दे रहा है जिनसे समाज को ही खतरा है तथा आश्चर्य की बात यह है कि समाज के आशीर्वाद से ही वे उच्च पदों तक पहुँचने में कामयाब हो रहे हैं। आज समाज बबूल को पूज रहा है, जो काँटो से लथपथ

है। ऐसी स्थिति में अभिभावक का उत्तरदायित्व और भी चुनौतीपूर्ण हो जाता है। अभिभावक को अपने घर में ऐसा वातावरण सृजित करना होगा कि उसकी आँच से समाज की कुरीतियाँ भस्म हो सकें तथा अपने बालकों को इस प्रकार शिक्षित व दीक्षित करना होगा कि उनमें प्रतिरोध करने की भावना व अदम्य साहस पैदा हो सके। ज्ञान, संस्कार, सामाजीकरण, दया, धैर्य, पराक्रम, राष्ट्रीयता, उत्तरदायित्व, कर्त्तव्यनिष्ठा, सहयोग, धर्मनिरपेक्षता, अनुशासन, आत्मनियंत्रण आदि मूल्य किसी विधायिका, न्यायपालिका या किसी सरकारी अफसर के कार्यालय में नहीं सिखाए जाते वरन् इनके सिखाने का एक मात्र स्थान घर होता है और सिखाता अभिभावक ही है। अत: अपने घर के बच्चों में वे सारे संस्कार विकसित करने होंगें जिससे वे सफल नागरिक बनकर समाज को समुन्नत कर सकें व राष्ट्रीय गौरव में भी वृद्धि कर सकें। अपने बुनियादी शिक्षा के मन्तव्य के पक्ष में महात्मा गाँधी ने कहा था कि बुनियादी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें बच्चा भाषा, गणित व विषयों को पढ़ने के अलावा कुछ ऐसा भी सीखे जिससे वह तकनीकी रूप से आत्मनिर्भर हो सके। अत: अभिभावक का यह शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक दायित्व भी है कि वे शिक्षित ही नहीं आत्मनिर्भर व स्वावलम्बी नागरिक पैदा करने में सहयोग करें। अभिभावक समय व समाज की आवश्यकता के अनुरूप अपने बालकों को तैयार करता है।

प्रस्तुत शोध में विभिन्न स्थितियों से संबंधित वास्तविक समस्याएं तथा उनसे संबंधित संभव व्यावहारिक समाधान पर विचार किया गया है। स्थितियों के संदर्भ में संभावित व्यवहारों का विश्लेषण समाज-शास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक दृष्टि से किया गया है। कहीं-कहीं उनके औचित्य तथा अनौचित्य पर टिप्पणी भी की गयी है। नैतिक व्यवहार का निष्कर्ष निर्धारित करने के लिए यह आवश्यक है कि अभिभावक अधिक से अधिक कष्ट उठाकर किसी भी कीमत पर नैतिक व्यवहार करे। अभिभावक का सामान्य व्यवहार तो अधिकतर ठीक होता है।

भारत में माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education in India)

माध्यमिक शब्द का अर्थ है – 'मध्य की' से है। माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक और उच्च्च शिक्षा के मध्य की शिक्षा है। अंग्रेजी में इसके लिए सेकेण्डरी शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ है – दूसरे स्तर की, पहले स्तर की प्राथमिक और उसके बाद दूसरे स्तर की यह सेकेण्डरी शिक्षा है। हमारे देश में प्राचीन और मध्यकाल में शिक्षा केवल दो स्तरों में विभाजित रही – प्राथमिक और उच्च्च शिक्षा। भारत में प्राथमिक शिक्षा का श्रीगणेश आधुनिक युग में ईसाई मिशनरियों ने किया। भारत में आधुनिक माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप निश्चित करने में सबसे बड़ी भूमिका सन् 1854 में वुड के घोषणा पत्र की रही। इस प्रकार कहा जा सकता कि औपचारिक रूप शिक्षा की संरचना की शुरूवात थी। उसमें माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य और पाठ्यक्रम का निर्धारण किया गया। सन् 1882 में ब्रिटेन सरकार के भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा को दो भागों में विभाजित करने का सुझाव दिया- 1. साहित्यिक शिक्षा। 2. व्यावसायिक शिक्षा।

संबंधित साहित्य के स्त्रोत

शोध के क्षेत्र में सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक है। सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण द्वारा शोधकर्ता को उद्देश्यों की पूर्ति हेतु समस्याओं के निरूपण में सहायता मिलती है। सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन के महत्व को स्पष्ट करते हुए जे.एम.एल. के अनुसार – ''नियमानुसार किसी भी शोध प्रबन्ध का सम्बन्धित विवरण तब तक उपयुक्त नहीं समझा जाता है जब तक उस शोध से सम्बन्धित साहित्य किस आधार विवरण में नहीं होता है।'' सन्दर्भ साहित्य का ज्ञान ही शोधकर्ता को ज्ञान के उस शिखर तक ले जाता है जहां पर अपने क्षेत्र के नवीन एवं परस्पर विरोधी उपलब्धियों का परिचय प्राप्त करता रहता है –

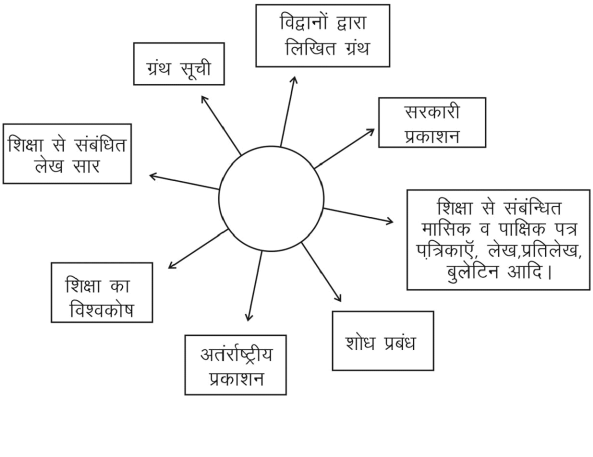

आधुनिक सन्दर्भ में मूल्यों का अर्थ (Meaning of Values in Modern Context)

व्यक्तिगत आवश्यकताओं, गुणों तथा जीवन मूल्यों की प्रस्तावित सूची आगे दी गयी है जिनमें कुछ व्यापक प्रकृति के हैं और कुछ भारतीय संदर्भ के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन तीनों कारकों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक हैं। जीवन मूल्य विश्वव्यापी होते हैं परन्तु फिर भी समाज जीवन दर्शन के आधार पर कुछ जीवन मूल्यों पर अधिक बल देता है और कुछ जीवन मूल्यों पर कम। उदाहरण के लिए भारतीय जीवन दर्शन तथा पाश्चात्य जीवन दर्शन की तुलना निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर की जा सकती है। पाश्चात्य जीवन दर्शन परस्पर प्रतियोगिता का पक्षधर है जबकि भारतीय चिंतन परस्पर सहयोग को श्रेष्ठ मानता है। पाश्चात्य चिंतन ने संघर्ष को जीवन का आधार माना है, जबकि भारतीय जीवन दर्शन सह-अस्तित्व में विश्वास करता है। पाश्चात्य चिंतन में भोग को और भारतीय चिंतन में त्याग को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। पाश्चात्य चिंतन प्रकृति के शोषण तथा भारतीय चिंतन प्रकृति के दोहन की बात करती है।

समायोजन (Adjustment)

यहाँ समायोजन से तात्पर्य माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के शैक्षिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक समायोजना है। यह अवस्था छात्रों के बनने और बिगड़ने का पहला और सबसे प्रमुख अवस्था है इसलिए प्रमुख मनोवैज्ञानिक स्टेनले हॉल ने इसे आँधी-तूफान का काल भी कहा है। इस अवस्था में छात्रों में कुछ करने का जुनून होता है, तथा वह अपनी वर्चस्व दिखाना चाहता है तथा इसी अवस्था में उनमें नयी नयी आदते विकसित होने लगती है। अगर माता-पिता इस अवस्था में छात्रों पर सही रूपों में सही समय पर ध्यान नहीं देंगे तो वह छात्र अपने लक्ष्यो से भटक कर गलत रास्ते अपना कर अपना जीवन अंधकारमय कर लेंगे। जिसके बदले वे एक असामाजिक कारक के रूप में समाज एवं राष्ट्र को प्रगति के रास्ते में एक अवरोधक का कार्य करेंगे।

अभिभावक-छात्र के सम्बन्ध (Parent-Students Relationship)

अभिभावक-छात्र के सम्बन्धों और समस्याओं के अध्ययन से नई पीढ़ी और सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी लाभ हो सकता है। छात्र उन्हें अपना शुभचिन्तक मानकर उनकी देखभाल करे और उनके अनुभवों से जीवनयापन का ढंग सीखें। अभिभावक शान्त, धैर्य, और समर्पण का अनोखा प्राणी होता है। वह कम-से-कम आवश्यकताओं की पूर्ति कर परिवार को दिशा देता है ताकि समाज के द्वारा शिक्षा का प्रचार और प्रसार निर्बाध गति से चलता रहे। शिक्षा वह साधन प्रदान करती है जो प्रत्येक प्राणी को अपने साध्य को प्राप्त करने के लिए ताकत देती है। अभिभावक समाज से कमियों को, कुप्रथाओं को व कुसंस्कारों को हटाता है और छात्र में समता को व्यवस्थित करता है फिर व्यवस्थित करके देश को अच्छे नागरिक देता है। अभिभावक प्रजातान्त्रिक मूल्यों का प्रसार प्रत्येक नागरिक में करता है। समाज के अन्दर मूल्यों का समावेश, सभ्यता और संस्कृति का संरक्षण और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव का संचरण अभिभावक के द्वारा ही होता है। ''लिंटन'' 1955 पृष्ठ सं.-279 का मत है कि व्यक्तित्व का गठन ''कार्य व्यवहार'' के सिद्धान्त के आधार पर होता है। इसमें आयु, लिंग, व्यवसाय, समाज, परिवार और अनुकूलता आदि के प्रभाव को प्रमुखता दी जाती है। इस प्रकार से यह अधिक महत्व होता है। इन सदस्यों में परिपक्व अनुभवी और दक्ष सदस्य का महत्व अधिक बढ़ जाता है। यही व्यक्तित्व अभिभावक में होते हैं, जो अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से परिवार के सदस्यों की आदतों, रुचियों और मनोवृत्तियों को दिशा देते हैं तथा समाज में सहिष्णुता सहयोग और सहभागिता आदि प्रजातान्त्रिक गुणों का विकास करने में सहयोग देते हैं। ''शर्मा'' 1968 पृष्ठ सं.- 585 का मत है कि जो बच्चे आत्म विश्वासी होते हैं उन पर परिवार के द्वारा प्रेम, आदतें, रुचियों और मूल्यों का सकारात्मक प्रभाव डाला जाता है।

शैक्षिक शोध की आवश्यकता (Need of the Education Research)

अभिभावक-छात्र की वर्तमान दशा निम्न स्तर पर है। यह सत्य है कि आज अभिभावक सामान्यत: अपने बालक से असन्तुष्ट है साथ ही बालक भी अपने अभिभावक से असन्तुष्ट है। यद्यपि आज से कुछ वर्ष पहले अभिभावक की आर्थिक दशा वास्तव में खराब थी, तब भी उनका व्यवहार इस तरह का नहीं था। वे छात्रों के भविष्य व संस्कार को प्राथमिकता देते थे व गरिमा पूर्ण छवि बनाए रखते थे। वे समाज के सबसे आदरणीय पात्र थे। आज उनकी आर्थिक दशा भी आकर्षक हो

गई लेकिन वे अन्य कार्यो में ज्यादा लिप्त पाए जाते हैं। जैसे-जैसे सुविधाएँ बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे तृष्णा का आकार भी बढ़ता जा रहा है। अन्य व्यवसायों की तरह आज का अभिभावक भी पैसे को अधिक महत्व देता है। आज वह बेचैन है तथा पुराने समय के अभिभावक से भिन्न है। इस वर्ग के लोग परीक्षा परिणामों में हेर-फेर करवाने, दलाली करने तथा लाभ के लिए राजनैतिक दलों से साँठ-गाँठ करने से नहीं चूकते हैं। ऐसे कामों को वे धनोपार्जन का अतिरिक्त साधन मानते हैं और यह भूल जाते हैं कि अभिभावक का सिर्फ और सिर्फ एक ही काम है कि बालक में संस्कार व ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करने अपना ध्यान पुर्णरूप से छात्रों में लगाएं।

प्रस्तुत शोध विषय का शीर्षक - ''वर्तमान शैक्षिक सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर पर समायोजन, मूल्यों एवं शैक्षिक उपलब्धि के सम्बन्ध में अभिभावक-छात्र सम्बन्धों का एक अध्ययन।''

अध्ययन उद्देश्य (Objectives of Research)

किसी भी शोधकर्ता का कार्य उसके उद्देश्यों में समाहित व निर्देशित होता हैं। वस्तुत: प्रस्तुत अध्ययन के प्राप्य उद्देश्य मधुबनी, दरभंगा, सीतामढी व पटना जिलों के मण्डल के माध्यमिक स्तरीय विद्यालयों के छात्रों के संदर्भ में शोधकर्ता द्वारा निम्न उद्देश्य लिए गए हैं -

1. माध्यमिक स्तरीय विद्यालयों के छात्रों का समायोजन (Adjustement) पर अभिभावक-छात्र सम्बन्धों के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तरीय विद्यालयों के छात्रों का मूल्यों (Values) पर अभिभावक-छात्र सम्बन्धों के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पना (Hypothesis of Study)

इस अध्ययन संबंधित परिकल्पना का निर्माण शोधकर्ता द्वारा शून्य परिकल्पना के रूप मे किया है। सामान्यत: जिन क्षेत्रों मे अध्ययन का अभाव होता है वहां शून्य परिकल्पना की जाती है। इसे सांख्यिकीय परिकल्पना भी कहते हैं। इस आधार पर अध्ययन के प्राप्य उद्देश्यों में प्रयुक्त शून्य परिकल्पनाओं का विवरण निम्नवत हैं -

1. अभिभावक-छात्रों के सम्बन्ध समायोजन को प्रभावित नहीं करते हैं।
2. अभिभावक-छात्रों के सम्बन्ध मूल्यों को प्रभावित नहीं करते हैं।

जनसंख्या (Population)- जनसंख्या से अभिप्राय उन सभी व्यक्तियों, वस्तुओं अथवा तथ्यों के समूह से होता है, जो पूर्व परिभाषित विशेषताओं के क्षेत्र में आता है। प्रस्तुत अध्ययन में कारक संरचना के आधार पर बहु-स्तरित दैव न्यादर्श विधि द्वारा बिहार प्रदेश के पटना मण्डल के माध्यमिक स्तर के 280 छात्रों का चयन किया गया।

चर (Variables)- अनुसंधान कार्य में चरों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मनोविज्ञान की भाषा में व्यवहार तथा व्यवहार को उद्दीप्त (Stimuluate) करने वाले सभी कारकों (Factors) को 'चर' (Variables) नाम दिया जाता है। 'चर' को परिभाषित करते हुए - गैरेट (Garrett) ने बताया कि - ''चर वह लक्षण या गुण है जिसकी मात्रा में परिर्वतन होता है और यह परिर्वतन किसी माप या आयाम पर होता है।''

डी. अमेंटो (D'Amato) के अनुसार - ''चर किसी वस्तु, घटना या प्राणी का मापन के योग्य गुण या लक्षण है।'' (Variable is any measurable attributes of objects, things or beings.)

अत: सारांश रूप में कह सकते कि चर शोध अध्ययन में महत्वपूर्ण होते है। सामान्य रूप से किसी भी शोध में चरों का प्रयोग किया जाता है। चरों को मुख्य रूप से चार भाग में विभाजित किया जाता है -

1. स्वतंत्र चर (Independent Variable)
2. आश्रित चर (Dependent Variable)
3. मध्यवर्ती चर (Intervening Variable)
4. जैविक चर (Organismic Variable)

शोध-अध्ययन के चर (Variable of research study) – शोध-अध्ययन में निम्नलिखित चरों का प्रयोग किया गया – मुख्य चर (Main Variable) – माध्यमिक स्तर, समायोजन, व मूल्य। आश्रित चर (Variable) शैक्षिक उपलब्धि, अभिभावक-छात्र सम्बन्ध।

न्यादर्श का चयन (Selecation of Sampling)

शोध कार्य में न्यादर्श का विशेष महत्व होता है। इसके बिना शोध कार्य पूर्ण नहीं किया जा सकता है। न्यादर्श का तात्पर्य सम्पूर्ण अध्ययन के लिए ऐसे भाग को अलग करने से होता है जो सम्पूर्णता का प्रतिनिधित्व करता है और सम्पूर्णता की अपेक्षा छोटा होता है। इस प्रकार कुल छः.माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के 280 छात्रों का चयन किया, जिसमें से अन्तिम रूप से पूर्ण शुद्ध व सही पाए 260 छात्र-छात्राओं के न्यादर्श को शोध अध्ययन हेतु चयनित किया गया।

जिनका विवरण निम्नलिखित है –

विद्यालयों की स्थिति	न्यादर्श के लिये चुने विद्यालयों का नाम	छात्रों की संख्या	चयनित छात्रों की संख्या
पटना	1. शहीद राजेन्द्र प्रसाद सिंह, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, गर्दनी बाग, पटना, बिहार।	42	35
	2. राजकीय बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय, गर्दनी बाग, पटना-2, बिहार।	51	45
नालन्दा	3. रामबाबू हाई स्कूल, हिलसा, नालन्दा, बिहार।	52	48
	4. नेताजी श्रीसुभाष हाई स्कूल, इस्लामपुर, नालन्दा, बिहार।	48	45
भोजपुर (आरा)	5. स्वामी श्री सूर्यनाथ उच्च माध्यमिक विद्यालय, सरैया, आरा, बिहार।	53	45
	6. टाउन हाई स्कूल आरा (भोजपुर), बिहार।	44	42
	कुल विद्यार्थियों की संख्या	280	260

उपकरण (Tools) – यह बात सर्वविदित हैं कि बिना उपकरण के अनुसंधान प्रक्रिया पूर्ण करना सम्भव नहीं है। शैक्षिक अनुसंधान में सर्वेक्षण में प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरणों का प्रयोग किया जाता हैं। इन उपकरणों में प्रश्नावली, साक्षात्कार, निरीक्षण, मनोवैज्ञानिक परीक्षण व अभिसूची इत्यादि आते हैं। अनुसंधान में उपकरणों का चयन, अध्ययन समस्या, अनुसंधान का उद्देश्य व स्वरूप पर निर्भर करता हैं। प्रस्तुत अनुसंधान में प्रश्नावली उपकरण का प्रयोग किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण व परिणाम (Result and Data Analysis)

परिकल्पना नं. 1 : अभिभावक-छात्रों (माता) के सम्बन्ध समायोजन को प्रभावित नहीं करते हैं।

मापदंड	सांख्यिकीय मान				
	Mean	**SD**	**r**	**t**	**p**
माता की स्वीकृति	18.20	3.31	+0.261	6.031	< 0.01
समायोजन	50.52	14.31			

सारणी संख्या -1. चयनित किशोरों के बीच समायोजन के साथ माता की स्वीकृति के बीच सह-सम्बन्ध को दर्शाता है।

परिणाम (Results) – परिकल्पना नं. 1 के बारे में माता-पिता किशोरों के सम्बन्धों पर माताओं की स्वीकृति का मध्यमान को दर्शाता है। मध्यमान 18.20 है, और SD का 3.31 है, जबकि समायोजन का मध्यमान 50.52 और SD का 14.31

है। माताओं की स्वीकृति एवं समायोजन के मध्य सहसंबंध +0.261 है, जोकि 1% सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

अत: इससे ये संकेत मिलते हैं कि अपने किशोर बच्चों के लिए मां की स्वीकृति नाम, स्वास्थ्य, सामाजिक, घर और भावनात्मकता जैसे सभी क्षेत्रों में समायोजन के लिए महत्वपूर्ण एवं सकारात्मक योगदान देती है। समायोजन के लिए मध्यमान उच्च है।

परिकल्पना नं. 2 : अभिभावक–छात्रों (पिता) के सम्बन्ध समायोजन को प्रभावित नहीं करते हैं।

मापदंड	सांख्यिकीय मान				
	Mean	SD	r	t	p
पिता की स्वीकृति	14.90	3.40	+0.251	5.761	< 0.01
समायोजन	50.54	14.32			

सारणी संख्या –2 : चयनित किशोरों के बीच समायोजन के साथ पिता की स्वीकृति के बीच सह–सम्बन्ध को दर्शाता है।

परिणाम (Results) – परिकल्पना नं. 2, तालिका में मध्यमान पिता की और माता–पिता के किशोर बच्चों के रिश्तों के समायोजन पर प्रकाश डाल रहा है। पिता की स्वीकृति का मध्यमान 14.98 और SD का 3.41 है, जबकि समायोजन का मध्यमान 50.54 और SD का 14.32 है। पिता की स्वीकृति एवं समायोजन के मध्य सहसंबंध +0.251 है, जोकि 1% सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

अत: इससे ये संकेत मिलते है कि अपने किशोर बच्चों के लिए पिता की स्वीकृति नाम, स्वास्थ्य, सामाजिक, घर और भावनात्मक जैसे सभी क्षेत्रों में समायोजन के लिए महत्वपूर्ण एवं सकारात्मक योगदान देती है। समायोजन के लिए मध्यमान उच्च है।

परिकल्पना–3 : अभिभावक–छात्रों के सम्बन्ध मूल्यों को प्रभावित नहीं करते हैं।

सारणी संख्या –3 : चयनित किशोरों के बीच धार्मिक मूल्यों के साथ समायोजन के बीच सह–सम्बन्ध को दर्शाता है।

मापदंड	सांख्यिकीय मान				
	Mean	SD	r	t	p
समायोजन	50.51	14.31	+0.070	1.566	> 0.05
धार्मिक मूल्य	13.77	03.01			

परिणाम (Results) – परिकल्पना नं. 3 के बारे में समायोजन स्कोर और धार्मिक मूल्य के बीच माध्य, SD और सहसंबंध। औसत समायोजन स्कोर 50.51 और SD, 3.00 है। इसका अर्थ है कि जिन छात्रों का समायोजन विभिन्न क्षेत्रों के मामले में मध्य है वो अपने धार्मिक मूल्यों के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं रखते हैं।

अत: यह कह सकते हैं कि धार्मिक दृष्टिकोण और मूल्य के मध्य समायोजन का कोई महत्वपूर्ण संबन्ध नही है।

निष्कर्ष (Discussion)

किसी भी शोध को उसके लक्ष्यों को ध्यान में रखकर तथा उसकी तार्किक कसौटी को परखने के लिए परिकल्पनाओं का निर्धारण किया जाता है। इस अध्याय में शोध–अध्ययन की परिकल्पनाओं द्वारा माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों से सम्बन्धित माता–पिता, शिक्षकों, प्रधानाध्यापकों व संस्था प्रधानों आदि के लिये सारांश और शोध अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही समस्या से सम्बन्धित सुझावों एवं भविष्य में समस्या से सम्बन्धित हो सकने वाले सुझावों पर चर्चा की गई है। जिनको अपनाकर या लागू करके छात्रों के लिए अच्छा वातावरण प्रस्तुत किया जा सकता है।

सन्दर्भ

- अग्रवाल, वी.पी. : राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भारतवर्ष की आधुनिक शिक्षा का आलोचनात्मक अध्ययन।
- शर्मा, पं. श्रीराम : अपरिमित संभावनाओं का आधार मानवी व्यक्तित्व, प्रकाशक अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, 1998
- शर्मा, पं. श्रीराम : भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व, प्रकाषक अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, 1998
- जायसवाल, डॉ. सीताराम : सामान्य मनोविज्ञान, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली पृ.सं.- 36-45, व 81 से 124
- लाल बिहारी, रमन : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त रस्तौगी पब्लिकेशन,मेरठ 2005-06
- लाल बिहारी, रमन : भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं आर.लाल बुक डिपो, मेरठ 2008 पृ. 617-607
- कृष्णमूति, जे. : संस्कृति का प्रश्न, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया, राजघाट फोट, वाराणसी, पृ. 72.
- कुमार, आनन्द : आत्मविश्वास, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-2005
- गारेट, एच. ई. : डेस्क्रिप्ट स्टाटिटिस्कस, प्रेन्टिस हाल इंडिया, 1999
- मिश्र भास्कर : वैदिक शिक्षा मीमांसा भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
- त्रिपाठी,जयगोपाल : मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियां, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1994
- चौबे सरयू प्रसाद : भारतीय शैक्षिक विचारधारा, सेन्ट्रल बुक डिपो इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972
- गुप्त, धर्मेन्द्रकुमार (सम्पादक) : काव्यादर्श, मेंहरचन्द लछमन दास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
- सरीन, शशिकला : शैक्षिक अनुसंधान विधियां, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1990
- सिंह, वंशीधर : भारतीय शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास, गया प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा, 1957

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

राजस्थानी लोक साहित्य में शेखावाटी लोकगीतों का परिचय

वन्दना गजराज
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर
डॉ. वीणा छंगाणी
शोध पर्यवेक्षक, अधिष्ठाता, मानविकी एवं कला विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

भारतीय संस्कृति के परिदृष्य में राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र की अहम भूमिका है। शेखावाटी में लोकगीतों की समृद्ध परम्परा रही है। जीवन के विविध पक्षों को लोकगीतों के माध्यम से उभारा गया है। इन लोकगीतों में छिपे भाव, लय हमें उत्साह प्रदान करते हैं। यह हमें अपनी जड़ों से जोड़े रखते हैं। इनमें उल्लास, प्रेम-ईर्ष्या, घृणा, ग्लानि, शोक, विषाद, भक्ति, विस्मय आदि का सरल रूप में दर्शन होता है। इसी प्रकार इन लोगीतों में लोक संस्कृति के व्यापक भावों के स्वच्छ एवं स्वाभाविक दर्शन देखने को मिलते हैं। यहाँ की लोक कथाएँ, लोकगीत, लोकसंगीत, लोक नाट्य, लोक कला, वेशभूषा तथा जीवन शैली अनोखी और जीवन्त है।

प्रस्तावना

राजस्थानी लोकगीत सांस्कृतिक विविधता की अमूल्य धरोहर है। प्रत्येक क्षेत्र एवं प्रदेश में स्थानीयता के साथ-साथ सांस्कृतिक सन्दर्भ को भी लोकगीतों के माध्यम से अपनी योग्यता और रोचकता के साथ बड़े ही मनोरंजक ढ़ग से सांस्कृतिक ज्ञान को जनसमूह के हृदय में उतारा हैं। लोक साहित्य में लोकगीतों का अपना एक विशिष्ट स्थान है। समाज में इनका अपना महत्व है। लोक संस्कृति की झांकी कदम कदम पर लोकगीतों में दिखाई देती है। 'लोक साहित्य' दो शब्दों 'लोक' और 'साहित्य' से मिलकर बना है। जहाँ लोक शब्द संस्कृत के ''लोक'' धातु में ''धञ्'' प्रत्यय लगाकर बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है, देखने वाला। साधारण अर्थों में इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ है। हिन्दी शब्दकोश में 'लोक' शब्द के लिए स्थान विशेष, संसार, प्रदेश, जन या लोक आदि अर्थ उल्लेखित है। लोक शब्द के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों की अलग अलग राय है।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार, ''लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है। इनमें भूत, भविष्य और वर्तमान संचित है। अर्वाचीन मानव के लिये लोक सर्वोच्च प्रजापति है।''[1]

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ''लोक'' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम से न लेकर नगरों व गांवों में फैली उस समूची जनता से लिया है, जो परिष्कृत, रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्थ होती है।''[2]

इसी प्रकार डॉ. कुंज बिहारी दास ने लोकगीतों की परिभाषा देते हुए कहा है ''लोकसंगीत उन लोगों के जीवन की अनायास

प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर कम या अधिक आदिम अवस्था में निवास करते है। यह साहित्य प्रायः मौखिक होता है और परम्परागत रूप से चला आ रहा है।''[3] श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का कहना है कि ''लोकगीत का मूल जातिय संगीत में है।''[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कह सकते हैं कि ''लोकगीत हमारे जीवन विकास की गाथा है। इसमें जीवन के सुख-दुःख, मिलन-विरह, उतार-चढ़ाव की भावनाएं व्यक्त हुई हैं। सामाजिक रीति एवं कुरीतियों के भाव इन लोकगीतों में है, इनमें जीवन की सरल अनुभूतियों एवं भावों की गहराई है।

लोकगीत का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। इनमें सदियों से चले आ रहे धार्मिक विश्वास एवं परम्पराएं जीवित है। ये हृदय की गहराइयों से जन्में है। श्रुतिपरम्परा के आधार पर ये अपने विकास का मार्ग बनाते रहे है। अतः इनमें तर्क के स्थान पर भावना अधिक है। लोकगीत लोकमानस की साधारण अभिव्यक्ति है। जिसका रचियता एक व्यक्ति ही होता है।

शेखावाटी के लोकगीत

राजस्थान की लोकसंस्कृति में शेखावाटी क्षेत्र की अहम् भूमिका है। चूरू, झुन्झुनूं, नागौर, अलवर, बीकानेर और हरियाणा की संस्कृति में यह क्षेत्र एक कड़ी की भूमिका निभाता है। सांस्कृतिक रूप से शेखावाटी में सीकर, झुन्झुनूं और चूरू का कुछ हिस्सा शामिल है। शेखावाटी लोक संगीत, लोक नृत्य, लोकगीत परम्पराओं का अक्षय खजाना रहा है साथ ही इसमें प्रकृति ने अपनी सुषमा को बिखरने में अहम् भूमिका निभाई है। इस क्षेत्र के निवासी सौंदर्य प्रेमी हैं उनकी यह भावना लोकगीतों में बड़ी ही कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त होती है। मरूभूमि होने के कारण यहां वर्षा ऋतु का अत्यधिक महत्त्व है। वर्षा ऋतु में यहां आनन्द और उल्लास के साथ अनेक त्योहार मनाये जाते हैं। इन त्योहारों पर लोकगीतों को गाकर ये लोग अपनी संस्कृति और इस धरा के सुरों के प्रति एक नया आकर्षण जागृत करते हैं।

इन गीतों का वर्गीकरण करना आसान नहीं है। शेखावाटी में लोकगीतों का अटूट खजाना भरा है। यहाँ इन गीतों का संक्षिप्त वर्णन किया जा सकता है।

शेखावाटी के मुख्य लोकगीतों का संक्षिप्त वर्णन

शेखावाटी में अनेक पर्व एवं त्योहार मनाये जाते हैं, जैसे- होली, गणगौर, तीज, रक्षाबंधन, नवरात्र, बछबारस, दशहरा आदि इन पर्वों व त्योहारों से संबंधित लोकगीत गाये जाते हैं। भारतीय जीवन में धर्म का स्थान कितनी महत्ता रखता है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

देवी देवताओं के गीत

शेखावाटी क्षेत्र ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण राजस्थानी धार्मिक गीतों में भी देवी देवता सम्बन्धी लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। देवी देवताओं से संबंधित कुछ गीत-

1. गणेश जी (लोकगीत)-

म्हारा प्यारा गजानन्द आइज्यों,
रिद्धि-सिद्धि न सागै लाईज्यों जी,
म्हारा प्यारा गजानन्द आईज्यों जी।
थाने सबसूं पहली मनावां,
लड्डुवन को भोग लगावा,
थे मूषक चढ़कर आईज्यों जी,
म्हारा प्यारा गजानन्द आईज्यों जी

2. श्याम जी-

श्याम जी से मिलने का सत्संग ही बहाना है।
दुनिया वाले क्या जाने मेरा रिस्ता पुराना है।

3. सेडल माता-

वाड़ विचाले पींपली जी
जारी सीली छांय
बला ल्यू सेडल माता को
जी तब बालो खेलतो भी
खेलत चढ़ गयी ताव
बला ल्यू सेडल माता की

4. भोमिया जी (लोकगीत)

सरवर आवे, भोमिया सरवर जाय,
गुडला डकावे सखरिया पाल
तीखा सा नैणा रो भोग्यो प्यारो लागे।
जुगल म्हारा दिवला, कार्य री बात।
काये रो धीरत बले सारी रात
सोनारो दिवलो रेशम री बात
तीखासा नैणा रा भोम्या प्यारा लागो राज।

5. गोगाजी (लोकगीत)-

सांपड़ आया, भजन कर आया तो लीनौ है इरिनाग,
प्रयाग जी में सांपड़ आया।
चांवला राघूला, हरि सांपड़ आया।
तो इरियो मृगा की छाल, धाराजी में सांपड़ आया।
घी वरताऊली बावड्या, हरि सांपड़ आया।

त्योहारों के गीत

धर्म सम्बन्धी लोकगीतों में धार्मिक पर्व, संस्कार व व्रत त्योहारों के लोकगीत आते है। ये गीत उपदेषात्मक व नैतिकता प्रधान होते है।

गणगौर (लोकगीत)

एक नायिका अपने पति से सोलह श्रृंगार की वस्तुएं जुटाने का अनुरोध करती है ताकि वह अपनी सखियों के साथ गणगौर मना सके। देखिये नायिका के मन की व्यथा –

भंवर म्हाने खेलन दो गणगौर,
ऐजी सहेल्या म्हारी सहेल्या जोये बाट,
भंवर म्हाने पूजण दो गणगौर,
भल खेलों गणगौर सुन्दर गौरी,
भल खेलो गणगौर।

होली (लोकगीत)

रंग-बिरंगे वस्त्रों में सामूहिक नृत्यों का जलवा उभारती हुई, उसमें पायल की झंकार, लोक वाद्यों की मधुरिमा से गली-गली में इस लोकगीत की गूंज सुनाई देती है-

होली आई ए.....
सहैल्या मिल खेल्या भूर
होली आई ए......
रिम-झिम बिछिया बाजे,
ढनक-ढनक बाजे पायलड़ी,
होली आई ऐ.....

तारा री चुनड़ी (लोकगीत)

प्रस्तुत गीत शेखावाटी का प्रसिद्ध लोकगीत है। इस गीत में नायिका अपने पति से जयपुर से तारों की चुनड़ी लाने का आग्रह करती है।

बाईसा रा बीरा जयपुर जाइयो जी,
आता तो लाईज्यो तारा री चुनड़ी।
बाईसारी भावज भात बतावो जी,
कशीक रंग की तारा री चुँदड़ी।
बाईसारा वीरा हरया-हरया पल्लाजी,
कसूमल रंग की तारा री चुनड़ी।
म्हारी मिरगा नैणी ओढ़ दिखावो जी,
कशीक सोहे, तारा री चुँदड़ी।

1. तीज- राजस्थान की तीज का त्योहार पूरे भारत में प्रसिद्ध है। प्रस्तुत गीत में एक स्त्री अपने पति से लहरिया, लाने की आग्रह करते हुए कहती है-

सावण सुरंगों आईजो जी।
कोई आई-आई सावणियां री तीज राज,
लहरियों लेद्यों जी राज..................

2. पीपली-

बाय चढ़यां छां भंवर जी पीपली जी,
हाजी ढोला हो गई घेर घुमेर
छांया बैठण री रूत चाल्या चाकरी जी................

3. घुडल्या-घुड़ला एक छिद्रों वाले छोटे से घड़े को कहा जाता है, जिसमें दीपक जलता रहता है। गौरी पूजन करने वाली कन्याएं शीतला-अष्टमी से संध्या के समय घुड़ला घुमाती है। और अपने माता-पिता, परिचित लोगों के यहां गीत गाती हुई जाती है।

घुड़लो घुमैं छै जी घुमें छै
घुड़ले रे बांध्यों सूत
घुड़लो घूमें छै जी घूमै छे...................

विवाह सम्बन्धी गीत

1. पीठी- हस्ताथान के पश्चात् नियमित वर-वधू को उबटन करके स्नान कराया जाता है। उबटन लगाते समय स्त्रियां यह गीत गाती है।

मगरे रा मंग मंगावो ऐ
म्हांरी पीठी मंगर चढ़ावों ऐ
म्हांरी तेलण आ भल आयी ऐ
तेलण तेल घड़ो भर लायी ऐ।

2. मेहंदी- विवाह संस्कार के पहले दिन वर-वधु के मेहंदी लगायी जाती है। उस समय यह गीत गाया जाता है। मेहंदी स्त्रियों के लिये सुहाग का एक लक्षण है और इसका गहरा रंग दाम्पत्य प्रेम का प्रतीक माना जाता हैं।

मेहंदी वायी-वायी बालूड़ा री रेत,
प्रेम-रस मेहंदी राचणी।
मेहंदी सींची सींची जल जमना रे नीर,
प्रेम रस मेहंदी राचणी।

3. बन्ना-बन्नी- बन्ना बन्नी के गीत हस्ताथान और परिग्रहण के बीच के समय में प्रतिदिन वर-वधु के घर में गाये जाते है। संध्या के समय घर-परिवार की व अन्य स्त्रियां एकत्र होकर इन्हें गाती हैं।

तुम खाना खालो बन्ना कटोरदान का,
आलू की बनी सब्जी हलवा बादाम का।
दादाजी संग आये बन्ने को लेने।
वो आशिर्वाद देंगें तुम्हारी शादी का।
आलू की बनी सब्जी हलवा बादाम का।

4. विदाई गीत-

ओलूं- ओलूं गीत लड़की के पीहर से विदा होते समय गाये जाते हैं। यह गीत अत्यन्त कारुणिक होते हैं।

म्हें थां ने पूछां म्हारी धीवड़ी
म्हें था ने पूछां म्हारी बालकी
इतरों बाबोजी रो लाड़ छोड़ रे।

पारिवारिक गीत

परिवार ही सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य परिवार में रहते हुए जीवन व्यापन करता है। अत: परिवार, बाल्यकाल व दाम्पत्य जीवन (संयोग व वियोग) से संबंधित गीत इसी वर्ग में चित्रित हुए है।

1. केवड़ो- प्रस्तुत गीत एक सुखी परिवार का है, जिसमें एक बालिका अपने सुखी परिवार का वर्णन कर रही है।

म्हाँरें बाबोजी री ऊँची सी पोल,
आंगण में उभों केवड़ों
म्हारे बाबोजी री ऊँची सी रावटी
कोओी ज्याँ रा लाल किवाड़
आंगण में उभो केवड़ो

2. नींबू- प्रस्तुत नींबू गीत पारिवारिक जीवन से संबंधित है। एक वधु के पारिवारिक स्नेह का इसमें सुन्दर चित्रण हुआ है। वह अपने ससुराल के प्रत्येक सदस्य से प्रेम करती है और उसे सम्मान देती है। उपालम्ब और स्नेह का मनोहारी चित्रण इस गीत में हुआ है।

उदयपुरिया सूं बीज मंगा, ओ बण वारी रे हंजा।
जोधाणे री बाड्या में नींबू नीपजे ओ राज॥
माखणियां री पाल बंधाय, ओ घण वारी रे हंजा।
दूधा ने सींचवों ढोलाजी रो नींबूड़ों, ओ राज॥
नींबूड़े री जड़ गयी पाताल, ओ था पर वारी रे सचियां।

3. सास- परिवार की सुख शान्ति के लिए घर में सास और बहु के संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। यहां सास के व्यवहार से तंग आकर बहु की भावनाएं इस गीत में बतलायी गयी है।

सासू लड़मत-लड़मत न्यारी कर दे।
न्यारी करदे, म्हाने जुदी करदे।
हूं तो मेड़ी नहीं मांगू, झरोखा नहीं मांगा
म्हानै ऊपर को चौबारों खाली कर दे,
सासू लड़मत-लड़मत न्यारी करदे।

4. सूंठ- प्रस्तुत गीत में ननद और भाभी के संबंध दर्शाये गये है। ननद भाभी का स्नेह भरा वार्तालाप है। नववधु अपनी प्रिय ननद से अपने पति का पूरा परिचय लेती है। इस गीत में पारिवारिक सामंजस्य का चित्रण है।

कठे से आई सूंठ कठे से आयो जीरो।
कठे से आयो ऐ। भोली ननद भारथारो बीरो।
जैपुर से आई सूंठ दिल्ली से आयो जीरो।
कलकत्ते से आयो ए, भोली भावज म्हारो बीरो।

5. भाई बहन का गीत- प्रस्तुत गीत में एक बहन का भाई के प्रति प्रेम बतलाया गया है।

काली काली रे बीरा म्हारे काजलिया री रेख
कला ने बादल में चिमकै बीजली
मोटोड़ी छांटा रो बरसे मेह
बरसे बरसे रै मेहराण बाबोसा रे देश

6. कागा- प्रस्तुत गीत कौऐ को सम्बोधित करके कहा गया है। विरहिनी नायिका शकुन मान रही है कि यदि घर की छत पर कौआ आकर बैठ जाये और उसे उड़ने के लिये कहे और वह उड़ जाये तो प्रवासी पति शीघ्र ही लौट आता है। प्रस्तुत गीत में नायिका कौए को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन दे रही है।

उड़-उड़ रे म्हारा काला रे कागला
कद म्हारा पिवजी घर आवे
खीर खांड रो तने थाल परोसू
थारी सोने जांच मंढ़ाऊ रे कागा
जद म्हारा मारूजी घर आवे।

उपर्युक्त लोकगीत शेखावाटी संस्कृति की स्पष्ट झलक प्रस्तुत करते हैं। यहाँ का लोकमानस और लोक जीवन शेखावाटी लोकगीतों की पृष्ठभूमि है। यहां के सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक और लौकिक जीवन का कोई पहलू लोकगीतों की स्वर लहरी से अछूता नहीं रहा है। जीवन का आनन्द और उत्साह इन मानवीय गीतों में मुखरित हुआ है।

निष्कर्ष

शेखावाटी लोकगीतों में धार्मिक आस्था भी है और परम्परा के प्रति समर्पण भाव भी। इन लोकगीतों में श्रम की प्रतिष्ठा

भी हुई है और धार्मिक मान्यताएँ, शकुन, अपशकुन का विचार भी समाहित है। सुख–दु:ख में लोक मानस के आधार पर देवी–देवताओं की प्रार्थना, गुणगान भी लोकगीतों में दिखाई देता है। यह लोकगीत व्यक्तिगत न होकर समूचे समाज के होते हैं। अतः लोकगीतों के अध्ययन में ध्यान देना जरूरी है। लोकगीतों का विकास अधिक से अधिक होना आवश्यक है ताकि हमारी संस्कृति का जतन हो।

संदर्भ

- ''शेखावाटी की लोक संस्कृति'' संदीप कुमार मील, पृष्ठ सं. 1
- ''शेखावाटी वैभव'' टी.सी. प्रकाश, पृष्ठ सं. 67–70 पहदपजमकण् पद
- ''राजस्थानी लोकगीत'' पुरुषोत्तम लाल मेनारिया, पृष्ठ सं. 12–30, 20
- ''राजस्थानी लोक साहित्य में लोकगीत'', पिंकी पारीक, असिस्टेंट प्रोफेसर, बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
- लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम : शान्ति जैन, पृ.सं. 1, 2
- राजस्थान के लोकगीत : सूर्यकरण पारीक
- आपणी संस्कृति आपणा गीत : सरस्वती ढाका
- राजस्थान गाता है : पूर्णिमा गहलोत, पृ. सं. 71, 74, 75

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

बी.एड. के छात्रों की आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता और भावनात्मक बुद्धिमत्ता का एक अध्ययन

रीना कश्यप
शोधार्थिनी, मंगलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
डॉ. रचना गिहार
सहायक-आचार्य, मंगलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
डॉ. संजय कुमार
सहायक-आचार्य, ए.टी.एम.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, सम्बद्ध चौ.सी.सी.एस. वि.वि., मेरठ

सारांश

किसी इन्सान को विलक्षण प्रतिभा का धनी कौन बनाता है? अधिकतर लोगों का जबाव होगा, बुद्धि यानी आई क्यू। लेकिन आई क्यू के अलावा भी कुछ और साधारण कारक हैं जिनके बल पर मनुष्य अपनी छिपी हुई प्रतिभा को सामने लाने में सफल रहता है। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर मौजूद है आध्यात्मिक लब्धि या क्षमता (स्प्रिच्युअल क्योशंट या एस.क्यू.)। कोई भी व्यक्ति अपने अंदर इस अदभुत क्षमता को विकसित कर जीवन को और अधिक मूल्यवान व ऊर्जावान बना सकता है। यह लेख मनुष्य के अन्दर छिपी इस असाधारण क्षमता पर रोशनी डाल रहा है। व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से बुद्धिमान बन सकता है, यह एक दिव्य क्षमता है, जो हम सभी में विद्यमान है परन्तु आवश्यकता है तो सिर्फ इस दिव्यता को अनावृत करने की। अत: यह कहा जा सकता कि अब तक उपलब्ध बुद्धियों में आध्यात्मिक बुद्धि व भावनात्मक बुद्धि सर्वश्रेष्ठ बुद्धि है तथा यह जीवन कार्यों के प्रति समग्र उपागम प्रदान करती है। अत: इसके लिए हमें मन, बुद्धि एवं भावना को पवित्र एवं निर्मल करना होगा।

मुख्य शब्द : आध्यात्मिक बुद्धि, भावनात्मक बुद्धिमत्ता, सामाजिक बुद्धि व छात्राध्यापक।

प्रस्तावना

बुद्धि का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक बुद्धि व संवेगात्मक बुद्धि से है। किसी समस्या के समाधान के लिये अपनाए गए तरीको में मुख्य भाग बुद्धि का होता है। बुद्धि वह है, जो क्रिया कलापों को करने से पहले हमें स्वस्थ्य एवं महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायता करती है। बुद्धि को लेकर अनेक वैज्ञानिकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार रखे है तथा बुद्धि का अलग-अलग रूपों में वर्णन किया है। इस शोधकार्य में बी.एड. में अध्ययनरत् छात्रों की आध्यात्मिक बुद्धि व भावनात्मक बुद्धिमत्ता का अध्ययन किया गया है।

आध्यात्मिक बुद्धि

आध्यात्मिक बुद्धि का अर्थ है जो आत्मा की खोज व अस्तित्व के आधार के रूप में या रचनात्मक जीवन शक्ति के रूप में मानव का मार्गदर्शन करती है। आध्यात्मिक बुद्धि भौतिक संसार, मन, शरीर, आत्मा और जीवन तत्वों की गहरी समझ के लिए जागृति पैदा करती है। यह माना जाता है कि आध्यात्मिक बुद्धि मनोवैज्ञानिक विकास से परे है। यह स्वयं पृथ्वी और जीवित प्राणी के बारे में आत्म ज्ञान का जागरण है। आध्यात्मिक बुद्धि, बुद्धि का एक उच्च आयाम है, जो ज्ञान, करुणा, अखंडता, आनंद, प्रेम, रचनात्मकता और शांति के रुप में प्रमाणिक, स्वयं के गुणों और क्षमताओं को सक्रिय करती है।

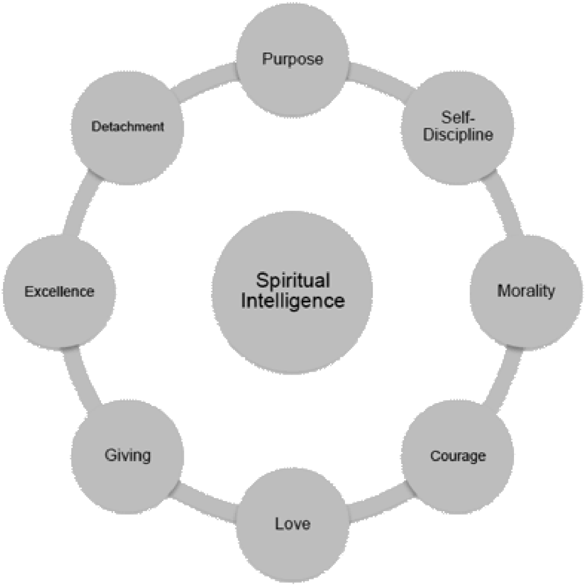

भावनात्मक बुद्धि

भावनात्मक बुद्धिमत्ता वह क्षमता है, जिसे समझने, अपनी भावनाओं को सकारात्मक रूप से उपयोग करने, दूसरों के साथ सहानुभूति रखने की क्षमता रूप में माना जाता है। इसमें आत्म जागरुकता, आत्म प्रबंधन, और सामाजिक जागरुकता भी शामिल है। भावनात्मक बुद्धिमत्ता के अन्तर्गत मुख्य रूप से निम्न बिन्दुओं को शामिल किया जाता हैं –

1. भावनात्मक धारणा।
2. भावनाओं की तार्किक क्षमता।
3. भावनाओं को समझने की क्षमता।
4. भावनाओं को प्रबंधित करने की क्षमता।

समस्या कथन– बी.एड. के छात्रों की आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता और भावनात्मक बुद्धिमत्ता का एक अध्ययन।

अध्ययन की आवश्यकता और महत्व

1. बी.एड. में अध्ययनरत् छात्रों की भावनात्मक स्थिति को जानने के लिए।
2. बी.एड. में अध्ययनरत् छात्रों की आध्यात्मिक स्थिति को जानने के लिए।
3. बी.एड. में अध्ययनरत् छात्रों की मानक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए।
4. बी.एड. में अध्ययनरत् छात्रों के कौशल और दक्षताओं का विकास करना।

5. बी.एड. में शिक्षण कार्य में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए उन्हें तैयार करना।
6. बी.एड. के छात्रों की निष्क्रियता को कम करना और, भावनात्मक और आध्यात्मिक बुद्धि को पहचानकर सक्रिय भागीदारी को बढ़ाना एवं उनका मार्गदर्शक करके आचरण व व्यवहार में परिवर्तन लाना।
7. रटकर सीखने की आदत को कम करना और आधुनिक तरीके से सीखने के तरीकों को उन्नत करना।

अध्ययन के उद्देश्य

1. बी.एड. के छात्रों (महिला व पुरुष) की आध्यात्मिक बुद्धि का अध्ययन करना।
2. बी.एड. के छात्रों (महिला व पुरुष) की भावनात्मक बुद्धिमत्ता का अध्ययन करना।
3. बी.एड. के छात्रों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति के संबंध में ;संयुक्त और एकल परिवारद्ध की आध्यात्मिक बुद्धि की तुलना करना।
4. बी.एड. के छात्रों के मूल स्थानों (ग्रामीण और शहरी) के संबंध में आध्यात्मिक बुद्धि की तुलना करना।

अध्ययन की परिकल्पना

1. बी.एड. के छात्रों (महिला व पुरुष) की आध्यात्मिक बुद्धि में कोई अंतर नहीं है।
2. बी.एड. के छात्रों (महिला व पुरुष) की भावनात्मक बुद्धिमत्ता में कोई अंतर नहीं है।
3. बी.एड. के छात्रों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति के संबंध में ;संयुक्त और एकल परिवारद्ध की आध्यात्मिक बुद्धि के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।
4. बी.एड. के छात्रों के मूल स्थानों ;ग्रामीण और शहरीद्ध के संबंध में आध्यात्मिक बुद्धि के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

शोध का परिसीमन

समय और संसाधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए अध्ययन को दायरे में इस प्रकार सीमांकित किया गया है–

- अध्ययन चौधरी चरण सिहं विश्वविद्यालय, मेरठ से संबद्ध दो बीएड कॉलिजों के चयनित नमूने तक सीमित किया गया है।
- अध्ययन में चयनित जनसांख्यिकीय चर जैसे– लिंग, सामाजिक व आर्थिक स्थिति और आवासीय स्थिति तक सीमित किया गया है।
- अध्ययन को डाटा संग्रह की चयनित विधि यानी ऑनलाइन गुगल फार्म तक सीमित किया गया है।
- अध्ययन केवल चयनित चरों अर्थात आध्यात्मिक बुद्धि और भावनात्मक बुद्धि तक सीमित है।

महत्वपूर्ण पद

आध्यात्मिक ज्ञान– आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता वह है, जो परिस्थिति की परवाह किये बिना आंतरिक और बाहरी शांति बनाए रखते हुए ज्ञान और करुणा के साथ व्यवहार करने की क्षमता प्रदान करती है।

भावनात्मक बुद्धिमत्ता– भावनात्मक बुद्धिमत्ता को भावनाओं तक पहुँचने और उत्पन्न करने के लिए एक क्षमता के रूप में परिभाषित करना। विचार, भावनाएं और भावनात्मकता के अर्थ को समझना। भावनात्मक और बौद्धिक विकास को बढ़ावा देने वाले तरीकों से भावना की चंचलता को प्रतिबंधित करना।

बी.एड. के छात्रों (छात्राध्यापक)– छात्र जो एक शिक्षक बनने के लिए अध्ययन कर रहा है और जो प्रशिक्षण के रूप में कक्षा निर्देशों का पालन करता है तथा प्राथमिक या माध्यमिक विद्यालय में शिक्षण का बारीकी से निरीक्षण करता है, वह छात्राध्यापक कहलाता है।

शोध विधि– प्रस्तुत अध्ययन में समंकों एवं समस्या के अनुसार वर्णनात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। अनुसंधानकर्ता ने एकत्रित आंकड़ों को सैद्धांतिक रुप से एकत्रित, विश्लेषण एवं प्रस्तुत किया है।

वर्णनात्मक अनुसंधान– एक वर्णनात्मक अनुसंधान में एक शोधकर्ता पूरी तरह से अपने शोध अध्ययन के तहत स्थिति या घटना का वर्णन करने में रुचि रखता है। यह सिद्धांत आधारित पद्धति है जो एकत्रित डाटा को विश्लेषण और प्रस्तुत करके बनाई गई है। यह शोधकर्ता को शोध के क्यों और कैसे में अंतर्दृष्टि प्रदान करने की अनुमति देता है। वर्णनात्मक डिजाइन दूसरों को शोध की आवश्यकता को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है।

अध्ययन में प्रयुक्त चर

स्वतंत्र चर– इस अध्ययन में जिन चरों का प्रयोग किया गया है वे सभी स्वतंत्र चर है। वर्तमान अध्ययन में स्वतंत्र चर लिंग, मूल स्थान, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, आध्यात्मिक बुद्धि और भावनात्मक बुद्धि। लेकिन एक सहसंबंध शोध में आश्रित और स्वतंत्र शब्द लागू नहीं होते हैं, क्योंकि शोधकर्ता कोई कारण और प्रभाव संबंध स्थापित करने का प्रयास नहीं कर रहा है।

अध्ययन के लिए प्रयुक्त उपकरण

1. आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता स्केल।
2. शिक्षक का भावनात्मक मापनी पैमाना।

जनसंख्या– शोध कार्य में न्यादर्श के रूप में 80 बी.एड. के छात्रों का चयन किया गया, जिसमें 40 महिला छात्र, 40 पुरूष छात्र पर शोध किया गया है।

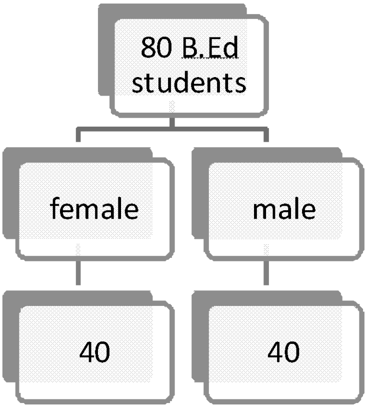

वर्णात्मक सांख्यिकी तकनीक

मध्यमान (M) = Σ/N,

मानक विचलन (S.D.) $\sigma = \sqrt{\Sigma^2/N}$

T-test—$t = M^1 - M^2/\sqrt{[(s^1)^2/n^1+(s^2)^2/n^2]}$

Pearson's Product Moment:

$$r = \frac{n(\Sigma xy) - (\Sigma x)(\Sigma y)}{\sqrt{[n\Sigma x^2 - (\Sigma x)^2][n\Sigma y^2 - (\Sigma y)^2]}}$$

परिकल्पना–1 : बी.एड. के छात्रों (महिला व पुरुष) की आध्यात्मिक बुद्धि में कोई अंतर नहीं है।

सारणी–1

आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता का सांख्यिकी विवरण

छात्रों की संख्या	माध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान की मानक त्रुटि
80	221.45	13.508	1.5198

परिकल्पना–1 के अनुसार – बी.एड. के छात्रों (महिला व पुरुष) की आध्यात्मिक बुद्धि में कोई अंतर नहीं है। बी.एड. के छात्रों के लिंग के आधार पर महिला छात्र व पुरुष छात्र के संबंध में परीक्षण का विश्लेषण करने पर परिकल्पना स्वीकृत की जाती है अर्थात कोइ अन्तर नही पाया गया।

परिकल्पना–2 : बी.एड. के छात्रों के (महिला व पुरुष) की भावनात्मक बुद्धिमत्ता में कोई अंतर नहीं है।

सारणी-2

भावनात्मक बुद्धिमत्ता का सांख्यिकी विवरण

लिंग	छात्रों की संख्या	माध्यमान	मानक विचलन	df	t-value	At 0.05 Level of Significance
महिला छात्र	40	224.13	14.97	78	1.54	1.99
पुरुष छात्र	40	219.48	11.89			Not Significant

परिकल्पना-2 के अनुसार ने बी.एड. के छात्रों की आध्यात्मिक बुद्धि के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। बी.एड. छात्रों के लिंग के संबंध में परीक्षण के आधार पर परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। टी का मान सारणी के अनुसार 1.99 है अर्थात महिला छात्र व पुरुष छात्र की भावनात्मक बुद्धिमत्ता में कोई अन्तर नही है।

परिकल्पना-3 : बी.एड. के छात्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संबंध में (संयुक्त और एकल परिवार) की आध्यात्मिक बुद्धि के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

सारणी-3

सामाजिक-आर्थिक स्थिति का सांख्यिकी विवरण

सामाजिक-आर्थिक स्थिति	छात्रों की संख्या	माध्यमान	मानक विचलन	df	t-value	At 0.05 Level of Significance
एकल परिवार	40	159.88	10.97	78	2.60	1.99 Significant
संयुक्त परिवार	40	152.90	9.70			

परिकल्पना-3 के अनुसार कि बी.एड. के छात्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संबंध में परीक्षण के आधार पर (संयुक्त और एकल परिवार) के छात्रों की आध्यात्मिक बुद्धि के बीच महत्वपूर्ण अंतर है। अत: परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है अर्थात जो छात्र एवं छात्राएं सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अनुसार संयुक्त या एकल परिवार में रहते है, उन पर इसका प्रभाव पड़ता है।

परिकल्पना-4 : बी.एड. छात्रों के मूल स्थानों (ग्रामीण और शहरी) के संबंध में आध्यात्मिक बुद्धि के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

सारणी-4

बी.एड. छात्रों के मूल स्थान का सांख्यिकी विवरण

क्षेत्र	छात्रों की संख्या	माध्यमान	मानक विचलन	df	t-value	At 0.05 Level of Significance
शहरी क्षेत्र	40	159.025	11.53	78	2.35	1.99 Significant
ग्रामीण क्षेत्र	40	153.15	10.81			

परिकल्पना-4 के अनुसार बी.एड. के छात्रों की भावनात्मक बुद्धिमत्ता के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। बी.एड. छात्रों के मूल स्थानों (ग्रामीण और शहरी) के संबंध में सार्थकता परीक्षण के आधार पर परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है अर्थात ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले छात्रों एवं शहरी क्षेत्रों में रहने वाले छात्रों की भावनात्मक बुद्धिमत्ता के बीच अन्तर पाया जाता है। अत: परीक्षण के आधार पर परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ

हितधारकों के लिए सुझाव– जीवन में शान्ति रहने पर सच्ची खुशी तभी हासिल होती है, तभी हम पूर्ण रूप से सन्तुष्ट रहते हैं तथा संतुष्टि भी मिलती है। अब प्रश्न उठता है कि शान्ति कैसे मिलेगी? इसका उत्तर यही हो सकता है कि हम जो कुछ भी करें, उसमें ईमानदारी और नैतिकता बरतें। अपने सहकर्मियों के अलावा प्रतिद्वन्द्वियों से भी सच्चा व अर्थपूर्ण सम्बन्ध बनाएं। इस प्रकार से हासिल शान्ति ही सही मायने में छात्रों को तनावमुक्त करती है। जब आपके आस-पास का माहौल तनावमुक्त बनेगा तो छात्र पायेंगे कि आपकी उत्पादकता व ऊर्जा पहले से कहीं ज्यादा बढ गई है। किसी संस्थान मे पढ.ने वाले छात्र एवं कार्यरत् शिक्षक में खुद को ज्यादा योग्य मानने जैसी सकारात्मक सोच विकसित हो जाए, तो न केवल लम्बे समय तक उनकी कार्यक्षमता बनी रहेगी वरन् यह काम के दौरान उपस्थित होने वाली हर प्रकार की चुनौती से भी निबटने में भी सक्षम होंगे। इन सकारात्मक सोच को विकसित करने में भावनात्मक एवं आध्यात्मिक बुद्धि की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। शोध के परिणाम के आधार पर छात्रों में इस प्रकार बुद्धि को विकसित करना चाहिए।

छात्र, समाज व शिक्षक के बीच की कड़ी है। समाज को आध्यात्मिक बुद्धि एवं भावनात्मक बुद्धि प्रदान करने मे शिक्षक की भूमिका ही महत्वपूर्ण हो सकती है। इस लिए बी.एड. छात्रों को उन सभी गुणों से युक्त होना चाहिए जो समाज में नैतिकता, सामाजिकता व संतुष्टि को फैलाने का कार्य करें।

सन्दर्भ

- चौबे सरयू प्रसाद : भारतीय शैक्षिक विचार धारा, सेन्ट्रल बुक डिपो इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972
- राय, पारसनाथ : अनुसन्धान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, उत्तर प्रदेश (पेज नं. 62)
- कुमार, अरूण : मोतीलाल बनारसीदास, बंगलों रोड, दिल्ली-110007 (पेज न.37 से 41)
- चोपड़ा, रविकान्त (सम्पादक) : उभरते भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा, (NCERT) नई दिल्ली।
- अस्थाना, विपिन, निधि : शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, उत्तर प्रदेश।
- अल्पोर्ट, बर्नन और लिन्डजे : मैनुबल फॉर द स्टडी ऑफ वेल्यूज वोस्टन, सन् 1960
- आयजेनिक : मैनुअल ऑफ माडस्ले परसोनेलिटी इन्वेन्टरी यूनिवर्सिटी ऑफ लन्दन, प्रेस, सन् 1959
- शर्मा, डॉ. आर. ए. : शिक्षा अनुसंधान, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ, 2007
- मल्होत्रा एस.पी., मल्होत्रा, पी.बी. व आर.एन. : शैक्षिक अनुसंधान विधियां, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- पाण्डेय, कामता प्रसाद : अभिक्रमित अधिगम की टैक्नोलॉजी, अमिताश प्रकाशन, गाजियाबाद, सन् 1988
- भटनागर, सुरेश : शिक्षा मनोविज्ञान, इण्टरनेशनल पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली, 2000
- अरोरा के. : डिफरेन्सेज बिटविन इफेक्टीब एन्ड इन इफेक्टीब टीचर्सयस चॉद, नयी दिल्ली, सन् 1978
- वर्मा एवं उपाध्याय : शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, वर्ष 1993।
- कार्बाइल ए.बी. : प्रोडिक्टिग फरफारमेन्सेज इन द टीविग प्रोपेशन, जनरल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, वाल्यूम 477 नं. 9, मई 1954
- गोलमैन डी. : इमोशनल इंटेलिजेंसी, बोटम न्यूयॉर्क, वर्ष 1995

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

चिढ़ावा तहसील में सिंचाई गहनता में परिवर्तन का प्रतिरूप (1993–95 से 2008–10)

डॉ. संजीव कुमार
सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, श्री राधेश्याम आर. मोरारका राजकीय महाविद्यालय, झुंझुनूं, राजस्थान
डॉ. कविता चौधरी
सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, श्री राधेश्याम आर. मोरारका राजकीय महाविद्यालय, झुंझुनूं, राजस्थान

शोध सारांश

कृषिगत अर्थव्यवस्था वाले देश के आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान होता है। राजस्थान राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि की महत्ता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि लगभग 70 प्रतिशत व्यक्ति अपनी आजीविका के लिये प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आश्रित है। हरित क्रान्ति के उपरान्त कृषि में उन्नत एवं अधिक उपज देने वाले बीजों के प्रयोग के फलस्वरूप कृषि की जल पर निर्भरता बढ़ी है। अध्ययन के लिये चयनित चिढ़ावा तहसील, राजस्थान राज्य के उत्तरी–पूर्वी अर्द्धशुष्क जलवायु वाले झुंझुनूं जिले के उत्तरी भाग में स्थित है यहां विषम जलवायु परिस्थितियों के कारण कृषि फसलों एवं मृदा में नमी बनाये रखने के लिये सिंचाई की महत्ती आवश्यकता होती है। चिढ़ावा तहसील, सतही जल स्त्रोतों के अभाव के कारण कृषि एवं पेयजल के लिये भूमिगत जल पर ही निर्भर है तथा जल आपूर्ति हेतु कुएं/नलकूप निर्माण करके भूमिगत दोहन की प्रवृति बढ़ रही है। परिणामस्वरूप वर्तमान में अध्ययन क्षेत्र अतिदोहित क्षेत्र में सम्मिलित है। इसके बावजूद भी अध्ययन क्षेत्र में शुद्ध सिंचित क्षेत्र 88257.5 हैक्टेयर जो शुद्ध बोया गया क्षेत्र का 80.8 प्रतिशत है एवं सिंचाई गहनता 107.8 प्रतिशत है।

मूल शब्द : शुद्ध सिंचित क्षेत्र, अर्द्धशुष्क, अतिदोहित क्षेत्र, आजीविका, सकल मूल्य संवर्धन।

प्रस्तावना

भारत एक कृषिप्रधान देश है तथा इसकी अर्थव्यवस्था में कृषि की अहम भूमिका है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश की आबादी का 54.6 प्रतिशत भाग आजीविका हेतु कृषि और इससे जुड़ी गतिविधियों में संलग्न है और देश के सकल मूल्य संवर्धन में इसकी हिस्सेदारी 17.08 प्रतिशत (सन् 2019–20) है।[1] कृषि योग्य भूमि सीमित है वहीं दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान आपूर्ति के लिए कृषि उपज बढ़ाना आवश्यक है। कृषि उत्पादन बढ़ाने में जल की कमी प्रमुख समस्या है। कुल उत्पादन एवं प्रति हैक्टेयर उत्पादन बढ़ाने के लिये 50 सेमी. से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिंचाई अनिवार्य आवश्यकता है।[2] भारत में सन् 2012–13 में सिंचाई क्षमता 108.21 मिली. हैक्टेयर है जो कुल फसली क्षेत्र का 33.9 प्रतिशत है।[3] राजस्थान में भी जीविकोपार्जन हेतु अधिकांश जनसंख्या कृषि एवं सहायक गतिविधियों पर निर्भर है। राज्य में कृषि मानसूनी वर्षा पर

आधारित है परन्तु यहां मानसून की अवधि कम है क्योंकि अन्य राज्यों की तुलना में मानसून विलम्ब से आता है एवं शीघ्र लौट जाता है। इसके अतिरिक्त वर्षा की मात्रा में भी उतार चढ़ाव होता रहता है। वही दूसरी ओर सतही जल संसाधनों की कमी के साथ भूमिगत जल स्तर भी निरन्तर गिरता जा रहा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतिकूल एवं विविधता युक्त भौगोलिक परिस्थितियों में स्थित राजस्थान राज्य की कृषि यहाँ की जलवायु द्वारा नियन्त्रित है वही दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या के भरण पोषण एवं लोगों के आर्थिक विकास के स्तर को ऊँचा उठाने हेतु कृषि व्यवसाय को विकसित करने के लिए सिंचाई सुविधाओं एवं उन्नत किस्म के बीज (कम सिंचाई की आवश्यकता एवं कम वर्धन काल) का विकास करना, राज्य की प्राथमिक आवश्यकता है। चिढ़ावा तहसील अर्द्धशुष्क जलवायु में स्थित एक कृषि प्रधान क्षेत्र हैं यहाँ भौगोलिक कारकों की विषमता के फलस्वरूप सतही जल संसाधनों का अभाव है परिणामस्वरूप यहाँ के निवासी पेयजल व सिंचाई सहित अन्य कार्यों हेतु जलापूर्ति के लिए भूमिगत जल संसाधन पर निर्भर है।

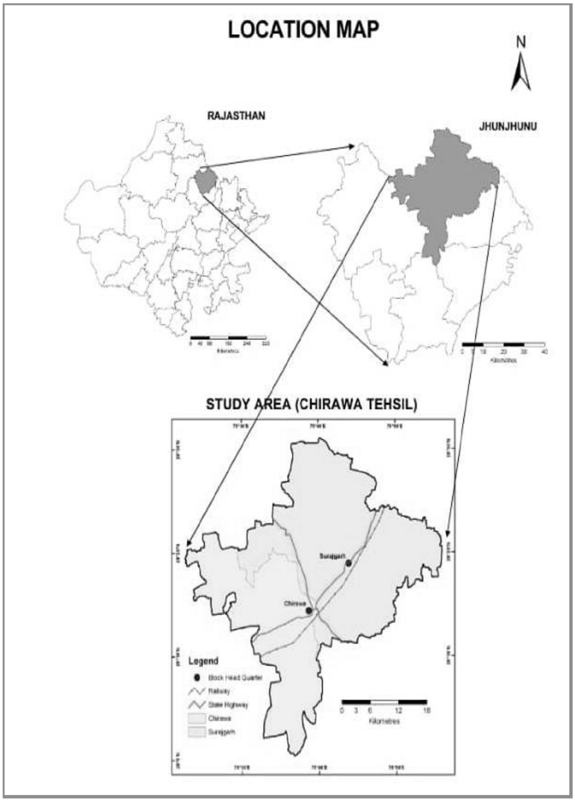

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र राजस्थान के उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित झुंझुनूं जिले के उत्तरी भाग में अवस्थित एक तहसील है जो 28°0′ से 28°31′ उत्तरी अक्षांश तथा 75°22′ से 75°56′ पूर्वी देशान्तर के मध्य अवस्थित है जिसके 130115 हैक्टेयर क्षेत्रफल पर कुल 204 गाँव एवं 3 कस्बे बसे हुए है। अध्ययन क्षेत्र की औसत ऊँचाई समुद्रतल से 300 से 380 मीटर के बीच है। यहाँ एकमात्र कांतली नदी (मौसमी) दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होती है जो वर्तमान में मृत प्राय है। जलवायु की दृष्टि से अर्द्ध शुष्क क्षेत्र में स्थित होने के कारण यहाँ तापमान सामान्यत: उच्च ही रहता है। औसत वार्षिक अधिकतम तापमान 32.7° सेल्सियस, औसत वार्षिक न्यूनतम तापमान 17° सेल्सियस है तथा औसत वार्षिक वर्षा 45.23 सेन्टीमीटर है। कुल जनसंख्या 420582, जनसंख्या घनत्व 323 तथा साक्षरता दर 73.7 प्रतिशत है।[4] चिढ़ावा तहसील में सिंचाई के प्रमुख साधन कुएँ एवं नलकूप हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

- चिढ़ावा तहसील में सिंचाई गहनता में परिवर्तन का गांववार अध्ययन करना।
- सिंचाई गहनता में वृद्धि हेतु सुझाव देना।

विधि तन्त्र एवं आंकड़ों का स्त्रोत

प्रस्तुत शोध चिढ़ावा तहसील में सिंचाई गहनता में परिवर्तन का प्रतिरूप में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों की सहायता ली गई है। प्राथमिक आंकड़े शोधार्थी द्वारा प्रतिचयन विधि से एकत्रित किए गये है। वही दूसरी ओर द्वितीयक आंकड़े तहसील राजस्व कार्यालय चिढ़ावा, जिला सांख्यिकीय रूपरेखा झुंझुनूं, सरकारी प्रकाशनों आदि से एकत्रित किये गये है तथा तालिकाओं, मानचित्र व सांख्यिकी विधियों द्वारा विश्लेषण किया गया है।

सिंचाई गहनता = सकल सिंचित क्षेत्र/शुद्ध सिंचित क्षेत्र द्वारा × 100

सिंचाई के साधन

अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई के प्रमुख साधन कुएं एवं नलकूप है, इनके द्वारा 100 प्रतिशत भाग पर सिंचाई होती है। भूमि से भू-जल प्राप्त करने हेतु भूमि में किया गया उर्ध्वाधर छिद्र कुआँ कहलाता है। कुएं को विभिन्न उपयोग हेतु भूजल दोहन का सरलतम परम्परागत तरीका माना जाता है। कुएं व नलकूप का निर्माण करते समय भू-जल स्तर की गहराई, भू-वैज्ञानिक स्थितियों, कुआँ बनाने का उद्देश्य तथा आर्थिक कारणों आदि को ध्यान में रखते हैं। 1970 के दशक के उपरान्त कृषि में अधिक उपज देने वाले बीजों का उपयोग किया जाने लगा जिन्हें अपेक्षाकृत अधिक जल की आवश्यकता होती है।

विभिन्न फसलों हेतु जल की मांग एवं पूर्ति

फसलों के लगातार विकास एवं उत्पादन बढ़ाने के लिए जल एक अनिवार्य आवश्यकता है। अध्ययन क्षेत्र की मृदा, उसके गठन, संरचना एवं जलवायु दशाओं के अनुसार अच्छी फसल (आदर्श स्थिति) के लिए गेहूँ को 6-7 बार सिंचाई, जौ को 4-5 बार सिंचाई, सरसों को 3-4 बार सिंचाई, चना को 2-3 बार सिंचाई की आवश्यकता है लेकिन कृषि क्षेत्र में विस्तार, भू-जल के अन्य घरेलू कार्यों के लिए दोहन, क्षेत्र की चट्टानों की पारगम्यता एवं सरंध्रता में कमी के कारण भू-जल स्तर काफी गहरा हो गया तथा भू-जल की सिंचाई के लिए उपलब्धता घटने के कारण इन फसलों को आवश्यकता से कम संख्या तथा कम क्षेत्र में पानी दिया जाता है, जैसे- गेहूँ में 5-6 बार, सरसों में 2-3 बार, जौ में 3-4 बार, चना में 1-0 बार पानी दिया जाता है (तालिका 1)।

खरीफ की फसलों यथा बाजरा, मूँग, चवला (चौला), मोठ, ग्वार आदि फसलों को अच्छी वर्षा (नियमित) होने पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन वर्षा में अन्तराल के बढ़ने एवं अनियमित होने पर रक्षित सिंचाई की आवश्यकता होती है, जिससे फसलों को जीवित रखा जा सके। इसके अतिरिक्त मूँगफली एवं कपास फसल बोने पर अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है।

तालिका-1 से स्पष्ट है कि सरसों व चना फसलों को गेहूँ, जौ व मैथी की अपेक्षा कम सिंचाई की आवश्यकता होती है। यह तथ्य फसल प्रतिरूप में परिवर्तन को प्रकट करता है क्योंकि किसान पानी की कमी के कारण गेहूँ, जौ की जगह चना एवं सरसों को बोने लगे हैं परन्तु सरसों में पिछले कुछ वर्षों से मरगोजा (परजीवी खरपतवार) के कारण प्रति हैक्टेयर पैदावार में कमी आई और चना फसल में फरवरी माह में पुष्प आने के समय आँधी चलने के कारण मिट्टी से पुष्प खराब हो जाते हैं जिससे प्रति हैक्टेयर आय की तुलना में लागत अधिक पड़ती है। अत: क्षेत्र के किसान जल की कमी के होते हुए भी फव्वारा सिंचाई विधि का गहन उपयोग करके गेहूँ, जौ तथा मैथी को अधिक उत्पादित करते हैं।

तालिका-1

विभिन्न फसलों में आवश्यक एवं वास्तविक सिंचाइयों की संख्या

फसलें	आवश्यक सिंचाई की संख्या	वास्तविक सिंचाई	सिंचाई में कमी
रबी फसलें			
गेहूँ	6.7	5.6	1.0
जौ	4.5	3.4	1.0
मैथी	4.5	3.4	1.0
सरसों	4.0	3.2	1.2
चना	2.3	1.0	1.2

खरीफ फसलें			
बाजरा	2.0	1.0	1.2
ग्वार	1.2	0.1	1.0
चवला (चौला)	–	–	–
मूँग	–	–	–
कपास	3.4	1.2	2.0
मूँगफली	2.3	1.2	1.0

स्रोत – शोधार्थी द्वारा क्षेत्र सर्वे

सिंचित क्षेत्र

कृषि के विकास के लिए विशेषकर शुष्क तथा अर्द्धशुष्क प्रदेशों में सिंचाई का बहुत ही महत्व है। कम व अनियमित वर्षा वाले क्षेत्रों में कृषि उत्पादन का विकास सिंचाई पर ही निर्भर है। चिड़ावा तहसील में 88257.5 हैक्टेयर क्षेत्र शुद्ध सिंचित क्षेत्र है जो शुद्ध बोया गया क्षेत्र (109232.5 हैक्टेयर) का 80.8 प्रतिशत है तथा कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 67.83 प्रतिशत है।

सिंचाई गहनता

सिंचाई गहनता कृषि प्रारूप एवं विकास के स्तर को मापने का प्रमुख कारक है क्योंकि सिंचाई के माध्यम से कृषि उत्पादकता स्तर एवं फसल क्षेत्र प्रभावित होता है। प्रस्तुत अध्ययन में सिंचाई गहनता से तात्पर्य एक कृषि वर्ष में एक खेत में एक से अधिक बार सिंचाई करने से है, इससे दो फसली सिंचित क्षेत्र ज्ञात हो जाता है। किसी क्षेत्र में शुद्ध सिंचित क्षेत्र की अपेक्षा सकल सिंचित क्षेत्र का अधिक होना सिंचाई गहनता की मात्रा को प्रदर्शित करता है। परन्तु सिंचित क्षेत्र में वृद्धि होने से यह आवश्यक नहीं है कि सिंचाई गहनता में वृद्धि हो।[5] अध्ययन क्षेत्र में सकल सिंचित क्षेत्र 95124 हैक्टेयर है तथा शुद्ध सिंचित क्षेत्र 88257.5 हैक्टेयर है एवं सिंचाई गहनता 107.78 प्रतिशत है। (95124÷88257.5×100)

सिंचाई गहनता में परिवर्तन प्रवृत्ति का प्रतिरूप

चिड़ावा तहसील में विगत 15 वर्षों के दौरान सिंचाई गहनता में न्यून धनात्मक परिवर्तन (1.17 प्रतिशत) हुआ है। सन् 1993–95 में सिंचाई गहनता 106.61 प्रतिशत थी जो बढ़कर सन् 2008–10 में 107.78 प्रतिशत हो गई है। किन्तु सर्वत्र यह परिवर्तन समान रूप से नहीं हुआ है। चिड़ावा तहसील में सिंचाई गहनता के प्रतिशत में परिवर्तन का गाँववार संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

तालिका–2

चिड़ावा तहसील में सिंचाई गहनता में प्रतिशतानुसार परिवर्तन का गाँववार विवरण

(1993–95 से 2008–10)

परिवर्तन प्रतिशत में	सम्मिलित गाँवों की संख्या	गाँवों का प्रतिशत
–10 से कम	27	13.23
–10 से 0	53	25.98
0 से 10	102	50.00
10 से 20	12	5.88
20 से अधिक	10	4.90

स्रोत – शोधार्थी द्वारा परिकलित।

सिंचाई गहनता में सर्वाधिक वृद्धि (20 प्रतिशत से अधिक)

अध्ययन क्षेत्र के पूर्वी भाग में सर्वाधिक धनात्मक परिवर्तन हुआ है। जिसका मुख्य कारण इन गाँवों में भू-जल सम्भाव्यता अधिक, कुओं की संख्या में वृद्धि एवं फव्वारा संयन्त्र का अधिक उपयोग है। इन गाँवों में सरदारपुरा (सर्वाधिक वृद्धि, 31.58 प्रतिशत), बलोदा (31.31 प्रतिशत), जीणी (27.71 प्रतिशत), पिपली (24.28 प्रतिशत), हरीपुरा, डुलानिया, घरड्, उरीकी आदि मुख्य हैं।

सिंचाई गहनता में मध्यम वृद्धि (10 से 20 प्रतिशत)

सन् 1993-95 से 2008-10 के दौरान अध्ययन क्षेत्र के 5.88 प्रतिशत गाँवों में सिंचाई गहनता में 10 से 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इन गाँवों में श्योसिंहपुरा, उरीका, पिच्यानमवासी, दोबड़ा, धीधवा-अगुना, भोजा का बास, सुल्ताना आदि मुख्य है जो अध्ययन क्षेत्र के मुख्यत: पूर्वी एवं दक्षिणी-पूर्वी भाग में अवस्थित हैं। इन गाँवों में अधिक हॉर्स-पावर की मोटर (पनडुबी मशीन) के द्वारा गहरे नलकूप एवं कुओं से भूजल का अधिक दोहन किया जा रहा है जिस कारण सिंचाई गहनता में मध्यम वृद्धि हुई है।

सिंचाई में निम्न वृद्धि (0 से 10 प्रतिशत)

चिढ़ावा तहसील के लगभग आधे गाँवों (50 प्रतिशत) में सिंचाई गहनता 0 से 10 प्रतिशत है। इन गाँवों में भू-जल के अधिक गहरा होने के कारण कुओं की जल निकासी क्षमता कम हो गई, जिससे कि दोहन कम होता है जिस कारण सिंचाई गहनता में निम्न वृद्धि हुई है।

ऋणात्मक परिवर्तन

सिंचाई गहनता में सर्वाधिक कमी (-10 प्रतिशत से कम)

विगत 15 वर्षों के दौरान अध्ययन क्षेत्र के 13.23 प्रतिशत गाँवों में सिंचाई गहनता में सर्वाधिक ऋणात्मक परिवर्तन हुआ है। इन गाँवों में सामान्यत: भू-जल गहरा है। जिसके कारण कुओं से सिंचाई जल कम प्राप्त होता है एवं लवणता की मात्रा बढ़ गई है। जिससे सिंचाई गहनता में कमी आई है। इन गाँवों में मुख्यत: चैनपुरा, गोवली, अलीपुर, पटेल नगर, भूकाना, चनाना, बुडानिया, तिगियास, क्यामसर, बजावा, जखोड़ा आदि है जो अध्ययन क्षेत्र के पश्चिमी एवं उत्तरी-पश्चिमी भाग में अवस्थित हैं।

सिंचाई गहनता में न्यून कमी (-10 से 0 प्रतिशत)

तालिका-2 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के लगभग एक-चौथाई गाँवों (53 गाँव) में सिंचाई गहनता मे न्यून कमी हुई है। इन गाँवों में भू-जल सम्भाव्यता में कमी आई है जिससे सिंचाई सुविधा में कमी हो गई है। इस वर्ग में नरहड़, झेरली, लाम्बा, नालवा, मण्ड्रेला, मालीगाँव, रायला, ढढारिया, लिखवा, दुदवा, जाखोद, कुशलपुरा आदि गाँव सम्मिलित हैं।

निष्कर्ष

मानव सभ्यता के जन्म से लेकर वर्तमान औद्योगिक व तकनीकी युग तक कृषि मुख्य व्यवसाय बना हुआ है। भारत की कुल भौगोलिक भूमि के 60 प्रतिशत क्षेत्रफल पर कृषि की जाती है तथा कृषि योग्य भूमि का केवल एक तिहाई भाग ही सिंचित है जिसका मुख्य कारण सतही जल एवं भूमिगत जल की कमी एवं जल का सुनियोजित उपयोग न होना है। राजस्थान का अधिकांश भाग शुष्क और अर्द्धशुष्क जलवायु प्रदेश में स्थित है जहाँ कृषि के सफल उत्पादन हेतु सिंचाई एक अनिवार्य आवश्यकता है परन्तु राज्य में देश के कुल जल संसाधनों का मात्र एक प्रतिशत ही जल उपलब्ध है वही दूसरी ओर राज्य के 61 प्रतिशत भाग पर मरूस्थलीय भाग विस्तृत है जहां वर्षा की कमी के कारण अधिकांश नदियों की लम्बाई कम एवं जल प्रवाह की दृष्टि से मौसमी है। फलस्वरूप सतही जल संसाधनों का अभाव है और भूमिगत जल ही विकल्प के रूप में उपलब्ध

हैं जिससे पेयजल एवं कृषि हेतु जल की आवश्यकता की आपूर्ति होती है। अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई योग्य सीमित जल संसाधनों, भूमिगत जल के अनियंत्रित दोहन, दिनों दिन बढ़ती हुई जनसंख्या व औद्योगिकीकरण के कारण जल की बढ़ती हुई मांग को ध्यान में रखते हुए जल का दक्षतापूर्ण उपयोग आज जरूरी हो गया है। चूंकि जल का अधिकतम उपयोग सिंचाई क्षेत्र में हो रहा है अतः सिंचाई के जल की हरेक बूंद का सुनियोजित उपयोग आज की महती आवश्यकता है। अध्ययन क्षेत्र एक अर्द्ध शुष्क प्रदेश है एवं यहाँ की मिट्टियां बलुई/बलुई दोमट अवस्था में अवस्थित है। वर्षा की अनिश्चतता/अनियमितता के कारण भूजल स्तर नीचे जा रहा है एवं पानी की कमी होती जा रही है, अतः कम पानी से अधिक क्षेत्र में सिंचाई करने एवं सिचाई गहनता में वृद्धि हेतु फव्वारा सिंचाई एवं बूंद-बूंद सिंचाई विधि ही अधिक कारगर एवं उपयोगी साबित होगी।

संदर्भ

1. भारत 2021 वार्षिक संदर्भ ग्रंथ, प्रकाशक विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 759.
2. कुमार प्रमीला - शर्मा श्री कमल, ''कृषि भूगोल'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रथ अकादमी, 2000, पृ. 90
3. गुर्जर रामकुमार - जाट बी.सी., ''भारत का भूगोल'', पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2021, पृ. 187
4. कुमार, संजीव (2012), ''चिढ़ावा तहसील में फव्वारा सिंचाई का भूमि उपयोग एवं फसली प्रतिरूप पर प्रभाव'' अप्रकाशित शोध प्रबंध, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, पृ. 63-71
5. कलवार, एस.सी., ''राजस्थान का भूगोल'', वर्द्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, 2007, पृ. 85
6. जिला सांख्यिकी रूपरेखा झुंझुनूं, आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग, झुंझुनूं, राजस्थान, 2010

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक शिक्षा हेतु आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन

विजय लक्ष्मी शर्मा
शोधार्थी, शिक्षा विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर
डॉ. अर्चना मेहन्दीरत्ता
शोध निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक शिक्षा हेतु आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के लिए 100 विद्यार्थियों का चयन किया एवं सर्वेक्षण विधि के माध्यम से आंकड़ों का संकलन किया गया। परिणाम में यह पाया कि उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक शिक्षा हेतु आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव में सार्थक अंतर नहीं है।

मुख्य शब्द : व्यावसायिक शिक्षा, आकांक्षा स्तर, पारिवारिक वातावरण।

प्रस्तावना

संसार में हर प्राणी अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है। सूर्य, चंद्र, सितारे सब अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहते हैं तो फिर विद्यार्थी अपने जीवन को बिना उद्देश्य कैसे रख सकता है संसार में शायद ही ऐसा कोई प्राणी होगा जिसका कोई लक्ष्य ना हो, कुछ अमीर बनना चाहते हैं कुछ नेता बनने की इच्छा रखते हैं तो कुछ लेखक बनने की, कुछ सिनेमा का कलाकार बनना चाहते है तो कुछ डॉक्टर, इंजीनियर, व्यापारी बनकर अपार धन और यश कीर्ति को प्राप्त करना चाहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति जीवन में कुछ ना कुछ विशेष प्राप्त करना चाहता है जीवन की प्रत्येक सुविधा को प्राप्त करने के लिए और समाज में व्यक्ति को भली-भांति जीवन जीने के लिए धन की आवश्यकता होती है धन प्राप्ति का एक ही उत्तम मार्ग है व्यवसाय, व्यवसाय करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। ज्ञान हमें शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त हो सकता है शिक्षा ही वह ज्योतिपुंज है जो मानव मस्तिष्क के अंधकार को दूर करके ज्ञान के प्रकाश को अलौकिक करती है। शिक्षा मानव को मुक्ति का मार्ग दिखलाती है। शिक्षा के द्वारा हमारी कीर्ति का प्रकाश चारों और फैलता है शिक्षा ही हमारी समस्याओं को सुलझाती है और हमारे जीवन को सुसंस्कृत बनाती है। अर्थात जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश प्राप्त कर कमल का फूल खिल उठता है तथा सूर्यास्त होने पर मुरझा जाता है ठीक उसी प्रकार शिक्षा के प्रकाश को पाकर प्रत्येक विद्यार्थी कमल के फूल की भांति खिल उठता है।

आज के विज्ञान के युग में निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं। जिससे विद्यार्थियों में व्यावसायिक शिक्षा हेतु अपेक्षाएं बढ़ रही हैं। माध्यमिक स्तर के बाद विद्यार्थी भविष्य के व्यवसाय हेतु विषयों का चयन करता है। इसी समय भविष्य की व्यावसायिक

आकांक्षा की पूर्ति के लिए वह नई–नई योजनाओं का निर्माण करता है विद्यार्थी की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उसका वातावरण जिम्मेदार होता है। इसी वातावरण में कुछ विद्यार्थी लक्ष्य में सफलता हासिल कर लेते हैं परंतु कुछ विद्यार्थी अपने अध्ययन से पूर्व ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग कॉलेज मे प्रवेश लेने के पश्चात औसतन 63 विद्यार्थी बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ देते हैं इस तरह देश के कुल 23 आईआईटी से 315 विद्यार्थी कोर्स के बीच में पढ़ाई छोड़ देते हैं। अध्ययन करने पर पाया गया कि विद्यार्थियों के परिवार का आर्थिक स्तर, सामाजिक दबाव, संस्कृति और माध्यम इत्यादि विद्यार्थियों को पढ़ाई छोड़ने के लिए मजबूर कर देता है।

विद्यार्थी अपना अधिकांश समय परिवार एवं समाज में व्यतीत करता है। इस समय विद्यार्थी की आकांक्षा पर उसके सामाजिक और पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थी का जो प्रथम वातावरण होता है वह उसका परिवार होता है जहां वह पूरी तरह से अपने अभिभावकों व अन्य सदस्यों पर निर्भर रहता है विद्यार्थी अपना अधिकांश समय परिवार में ही व्यतीत करता है विद्यार्थी का जो प्रथम वातावरण होता है वह उसका परिवार होता है जहां वह पूरी तरह से अपने अभिभावकों और अन्य सदस्यों पर निर्भर रहता है।परिवार में बालक जन्म लेता है। बड़े होकर उसके चरित्र के निर्माण की क्रियान्वित स्थाई निवास करके ही होती है। समाज का प्रारम्भिक रूप परिवार को माना जाता है। परिवार के सदस्य जीवनोपयोगी सभी गुणों का स्वयं में समावेश करते हैं। ये सभी गुण नैतिक और आध्यात्मिक गुणों पर आधारित होते हैं। इस प्रकार परिवार के सदस्यों का सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों का विकास परिवार में रहकर होता है। बालकों की आदतों का निर्माण भी परिवार की परंपराओं पर निर्भर करता है। परिवार में यदि प्रेम और सौहार्द का वातावरण है तो बालकों में भी उचित और सौहार्दपूर्ण भावनाओं का विकास होगा। उसमें बड़े उत्तम गुणों और अच्छी प्रवृत्तियों का विकास होगा। परिवार के सभी सदस्य यदि परस्पर सहयोग करते हैं और आदर्श वातावरण में जीवन जीते हैं तो बालक के मन पर इसकी अमिट छाप पड़ती है।परिवार वह स्थान है जहाँ प्रत्येक नयी पीढ़ी नागरिकता का नया पाठ पढ़ती है क्योंकि कोई व्यक्ति समाज में रहकर सहयोग के बिना जीवित नहीं रह सकता। विद्यार्थी का मन भी अबोध होता है और किशोरावस्था ऐसी अवस्था है जिसमें विद्यार्थियों को ज्ञात ही नहीं होता कि कौन सा कार्य नैतिक है कौन सा कार्य अनैतिक है। किशोरावस्था में ही विद्यार्थी के मन में अनेक विचारों का समावेश होता है विचारों के उथल–पुथल होती है इस समय परिवार के सदस्यों द्वारा उसके विचारों एव इच्छाओं को एक उत्तम रूप दिया जा सकता है अभिभावकों द्वारा विद्यार्थियों उचित मार्ग प्रशस्त करवाकर लक्ष्य को हासिल करने में सहयोग किया जाए तो विद्यार्थी अपनी आकांक्षाओं को मूर्त रूप दे सकता है बिना आकांक्षा इच्छा लक्ष्य के विद्यार्थी का जीवन असफल ही रहेगा जैसे बिना चप्पू की नौका जिसका कोई किनारा नहीं होता वह पानी के बहाव के साथ बिना दिशा के ही आगे बढ़ती रहती है उसी तरह विद्यार्थी बिना लक्ष्य के जीवन भर भटकता रहेगा उसे अपने दिशा ज्ञान नहीं होगा। भावी जीवन निर्धारण की शिक्षा भी बालक को परिवार से ही प्राप्त होती है।

वर्तमान समुदाय दो भागों में बटा हुआ है उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। निम्न वर्ग के परिवार अधिक धन व समय खर्च होने वाले व्यवसाय का प्रशिक्षण कराने में असमर्थ होता है जिन व्यवसायों के प्रशिक्षण में कम धन व समय खर्च होता है उन व्यावसायिक प्रशिक्षण विषयों को प्राथमिकता दी जाती है तथा उच्च वर्ग के परिवार ऐसे व्यावसायिक प्रशिक्षण विषयों का चुनाव अपने बालकों के लिए करते हैं जैसे इंजीनियरिंग, चिकित्सा तथा प्रशासनिक सेवाएं। इन विषयों के प्रशिक्षण में काफी धन व समय खर्च होता है जिसे वहन करने में उच्च वर्ग के परिवार समर्थ है तथा कुछ अभिभावक अपनी आर्थिक स्थिति, सामाजिक परंपराएं और सामाजिक मूल्यों और स्वयं की महत्वाकांक्षा को ध्यान में रखते हुए अपने बालक की व्यावसायिक आकांक्षा को दबाते हुए स्वयं की समझ के अनुरूप ही विषयों का चयन करवाते हैं। ऐसे क्षेत्र या समाज जिनमें अधिकांश सदस्य शिक्षित, अल्प शिक्षित व अनपढ़ हैं वे अपने बालक बालिकाओं को अपनी इच्छा अनुसार ही विषयों का चयन करने की अनुमति प्रदान करते हैं। समाज या परिवार में लिंग भेद की मनोवृति भी विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर को प्रभावित करती है।

इसी तरह वर्तमान में शिक्षा का आधार केवल प्रमाण पत्र या डिग्री प्राप्त करना है इन्हीं के आधार पर बालक की परीक्षा परिणामों की तुलना अन्य से की जाती है। इस आधार पर वर्तमान स्थिति यह है कि व्यक्ति परीक्षा तो उत्तीर्ण कर लेता है परंतु वह स्पर्धा में टिक नहीं पाता और ना ही व्यवसाय और जीवन के क्रियात्मक पक्ष को समेटने व सवारने में सफल हो पाता है। फलस्वरूप उसकी आकांक्षा पूर्ण नहीं हो पाती और विद्यार्थी उदास या निराश हो जाता है। इस कारण विद्यार्थी समाज के

लिए समाजोपयोगी ना होकर बाधक बन जाता है। इसका कारण उसका पारिवारिक व सामाजिक वातावरण हो सकता है जो कि उसकी आकांक्षाओं को समझने में असक्षम होता है। परिवार के सदस्य बालक को उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश तो दिलाते हैं पर यह भूल जाते हैं कि विद्यार्थी की स्वयं की आकांक्षा क्या है? समाज की अपेक्षाओं और परिवार के मूल्य, अभिभावकों की महत्वाकांक्षा, सामाजिक-आर्थिक स्तर को देखते हुए वह बालक की आकांक्षाओं की ओर ध्यान नहीं दे पाते है अभिभावक अपने बालक को व्यावसायिक शिक्षा तो दिलाते हैं पर यह जानने में असमर्थ हो जाते हैं की स्वयं के बालक के लिए कौन सा व्यवसाय उचित है वह सिर्फ दूसरों से तुलना करके स्वयं के बालक को वही व्यावसायिक शिक्षा में प्रवेश कराते हैं। इस तरह बालक का पारिवारिक वातावरण उसके आकांक्षाओं को मूर्त रूप दे सकता है और उसके भविष्य को संवार सकता है और यही वातावरण उसके भविष्य को अंधकार की ओर ले जा सकता है अत: परिवार के सदस्यों द्वारा बालक की आकांक्षाओं को नकारा ना जाए या दबाया ना जाए और उसकी आकांक्षाओं को पहचान कर उसकी इच्छा अनुसार व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाए तो बालक निश्चय ही सफलता की ओर अग्रसर हो सकेगा।

उद्देश्य- उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक शिक्षा हेतु आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना- उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक शिक्षा हेतु आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव में अंतर नहीं पाया जाता है।

षोध विधि एवं प्रारूप- इस शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। न्यादर्श के लिए 100 विद्यार्थियों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है। आंकडों का संकलन करने के लिए स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया तथा विश्लेषण माध्य, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण के द्वारा किया गया है।

विष्लेषण एवं व्याख्या

परिकल्पना-1 : उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक शिक्षा हेतु आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव में अंतर नहीं पाया जाता है।

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी-मूल्य	परिणाम
छात्र	50	133.82	21.17	0.64	0.01 सार्थकता
छात्राएँ	50	135.67	20.43		स्तर पर स्वीकृत

व्याख्या एवं विश्लेषण

उपरोक्त तालिका में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक शिक्षा हेतु आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव को प्रस्तुत करती है। तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों के व्यावसायिक शिक्षा हेतु आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का मध्यमान 133.82 तथा प्रमाप विचलन 21.17 है। दूसरी ओर उच्च माध्यमिक स्तर की छात्राएँ के व्यावसायिक शिक्षा हेतु आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का मध्यमान 135.67 तथा प्रमाप विचलन 20.43 है। प्राप्त मध्यमानों और प्रमाप विचलन की सहायता से टी परीक्षण की गणना करने पर टी परीक्षण का मूल्य 1.33 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता के अंष 98 पर 0.01 सार्थकता स्तर के लिए आवश्यक तालिका मूल्य 2.36 है। टी परीक्षण का परिकलित मूल्य तालिका के मूल्य से कम है। अत: शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह प्राप्त हुआ कि उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक शिक्षा हेतु आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव में अंतर नहीं पाया जाता है।

संदर्भ

- कौर, जी. (2015) : ''विद्यार्थियो में व्यावसायिक परिपवक्ता का पारिवारिक वातावरण के संबंध में अध्ययन'', अर्हात मल्टीडीसीप्लीनरी इन्टरनेशनल एजुकेशनल रिसर्च जर्नल, वाल्यूम- 4, अंक 11 4, पृ.सं. 69
- लाल कृष्ण (2014) : ''केरियर मैच्युरिटी इन रिलेशन टू लेवल ऑफ एस्पीरेशन इन एडोलसेंट,'' अमेरिकन इन्टरनेशनल जनरल ऑफ रिसर्च इन हयूमिनटिज, आर्ट्स एण्ड सोशियल साइंस (5) 1, पृ.सं. 113-118
- केन्टली, एफण्डीण् (2013) : ''इन्फलुएनशियल फेक्टर ऑफ स्टूडेन्ट वोकेशनल एस्पीरेशन इन टरकिश ऐलीमेन्टरी स्कूल'', एकेडमिक जनरलस 9(1), पृ.सं. 34-40
- ओसादोह एण्ड एल्यूरो ए.एन. (2011) : ''पेरेन्टस सोशियो, इकोनोसिक स्टेटस एण्ड इट्स इफेक्ट इन स्टूडेन्ट एजूकेशनल वेल्यू एण्ड वोकेशनल चांइस'', यूरोपियन जनरल ऑफ एजुकेशनल स्टडीज, 3(1), पृ.सं. 3-11
- मंगल, एस.के (2009) : ''शिक्षा मनोविज्ञान'' पृ.सं. 20-21
- एन.के. सिंह (2003) : ''शैक्षिक व मानसिक मापन'', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।
- रिचर्ड टी. लेपन (1992) : ''सरकमसक्राइबिंग वोकेशनल एस्पीरेशन इन जूनियर हाई स्कूल'', जनरल ऑफ काउंसलिंग साइकोलोजी, वाल्यूम-39, पृ.सं. 81-91
- रेही (1968) : ''ऑक्युपेशनल वेल्यु एण्ड चॉईस ऑफ यंग इंडियन'', अंक-जनवरीए पृ.सं. 3-5
- स्टेनल हॉल (1959) : ''पेटर्न ऑफ एजुकेशनल एण्ड वोकेशनल इंनटरेस्ट ऑफ एडोलसैंट'', पृ.सं. 208-209
- सियर, पी.एस (1940) : ''लेवल ऑफ एस्पिरेशन इन एकेडमिकली सक्सेसफुल एंड अनसक्सेसफुल चिल्ड्रन जनरल'', एबनॉर्मल सोशियोलॉजी पृष्ठ संख्या 498-536
- फ्रेक जे.डी. (1935) : ''समसाइकोलॉजिकल डिटरमिनेन्टस ऑफ द लेवल ऑफ एस्पिरेशन'', अमेरिकन जनरल ऑफ साइकोलाजी, पृ.सं. 285
- शिक्षा मनोविज्ञान बाल विकास एवं शिक्षा शास्त्र, अवनी पब्लिकेशन 4 एडिशन, पृ.सं. 149

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

क्षेत्रवाद : एक अवधारणात्मक विश्लेषण

डॉ. ममता डांगी
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, महारानी गर्ल्स कॉलेज, महेन्द्रासेज, जयपुर

सारांश

अपनी संस्कृति, भाषा एवं आर्थिक हितों का अधिकाधिक विकास प्रत्येक क्षेत्र के निवासियों की स्वाभाविक प्रवृति होती है। यदि राष्ट्रीय व्यक्तित्व के साथ–साथ विभिन्न क्षेत्रीय समुदाय अपनी स्वायत्तता एवं आर्थिक विकास के लिए राष्ट्र की केन्द्रीय सत्ता को सचेत रखने के लिए सदैव जागरूक रहें तो यह सकारात्मक क्षेत्रवाद कहा जायेगा। यदि केन्द्रीय सत्ता शक्ति के अधिकाधिक केन्द्रीयकरण से विभिन्न क्षेत्रों के हितों की ओर उचित ध्यान नहीं देती है तो क्षेत्रवाद नकारात्मक स्वरूप ग्रहण करके अलगाववादी स्थिति की ओर अग्रसर हो जाता है जिससे राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया शिथिल एवं समस्याग्रस्त होने लगती है।[1]

मुख्य शब्द : क्षेत्रवाद, अपकेन्द्री, अभिकेन्द्री, अन्त्रा क्षेत्रवाद, अन्तर क्षेत्रवाद, अधिराष्ट्र क्षेत्रवाद।

परिचय

क्षेत्रवाद किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के लिए चुनौती बन सकता है। विशेषकर बहुल भाषाई एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में क्षेत्रीय स्वायत्तता का राष्ट्रीय एकता में समन्वय आवश्यक है। यह कार्य प्रमुख रूप से नेतृत्व का होता है। यह राष्ट्रीय नेतृत्व का दायित्व है कि क्षेत्रवाद के नकारात्मक पक्ष को सतुंलित नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन द्वारा सकारात्मक रूप दें। क्षेत्रवाद केवल नकारात्मक ही नहीं है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

अत: किसी भी देश के राष्ट्रीय नेतृत्व के लिए यह अनिवार्य है कि वह क्षेत्रवाद के सकारात्मक पक्ष को कुचलने के बजाय उसे नकारात्मक प्रवृत्तियों से विलग्न रखें। यदि क्षेत्रवादी प्रवृत्तियों एवं राष्ट्रीय हितों में समन्वय एवं सामंजस्य उत्पन्न किया जाए तो क्षेत्रवाद की ज्वलन्त समस्या का समाधान किया जा सकता है।

क्षेत्रवाद की अवधारणा, स्वरूप एवम् प्रकृति

अवधारणात्मक रूप से क्षेत्रवाद का स्वरूप सार्वभौमिक है जिसे विश्व के राजनीतिक पटल पर एवम् किसी भी देश की आन्तरिक राजनीति में एक प्रभावी कारक के रूप में देखा जा सकता है।[2] आन्तरिक राजनीति, भाषायी, जातीय एवम् सांस्कृतिक आधार पर एक क्षेत्र विशेष की पहचान अभिव्यक्त करने की संकल्पना को क्षेत्रवाद कहा गया है।

क्षेत्रवाद एक मिश्रित अवधारणा है जिसे समाज विज्ञानियों द्वारा अलग–अलग प्रकार से परिभाषित किया गया है। कुछ विद्वानों के द्वारा क्षेत्रवाद को प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण और सवांद के मध्य स्थित एक मध्यस्थ राज्य या 'विश्व सघंवाद' के रूप में परिभाषित किया गया है। उनका मानना है कि क्षेत्रवाद की राजनीति अल्पसंख्यकों, प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण, स्थानीय

स्वशासन, स्वायत्तता, मातृभूमि के प्रति निष्ठा और 'धरती पुत्र' की भावना जैसे विभिन्न प्रकार के आधुनिक राजनीतिक और सांस्कृतिक तत्वों को शामिल करती है। वस्तुत: क्षेत्रवाद विभिन्न प्रकार के सामाजिक-सांस्कृतिक समूह का स्पष्ट रूप से राज्य में रहने की स्वतंत्रता का विशेष समर्पण भाव है जो भौगोलिक अलगाव, स्वतन्त्र ऐतिहासिक विरासत, नस्लीय, जातीय, धार्मिक निष्ठा जैसे तत्वों से पैदा होता है। कुछ पश्चिमी विद्वान क्षेत्रवाद को आधुनिकीकरण की उपजात (By product of Modernization) के रूप में देखते हैं।[3] क्षेत्रवाद वस्तुत: एक शक्तियुक्त और बहु-कोणीय अवधारणा है। इसमें भू-तात्विक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक-आर्थिक कारण शामिल होते हैं। क्षेत्रवाद का स्वरूप सदैव ही नकारात्मक नहीं होता। सकारात्मक दृष्टिकोण से क्षेत्रवाद एक विशिष्ट क्षेत्र के द्वारा अपनी स्वपहचान तथा आत्मनिर्भरता के द्वारा राष्ट्र का विकास करना है। अत: क्षेत्रीय पहचान की खोज सदैव राष्ट्र-निर्माण प्रक्रिया के विपरीत नहीं होती। नकारात्मक दृष्टिकोण से क्षेत्रवाद राष्ट्रीय मुख्यधारा से अलगाव की मनोदशा है जो अभिजन शासन के अत्यधिक केन्द्रीकरण तथा भेदभावपूर्ण नीति के द्वारा पैदा होती है। एक राजनीतिक व्यवस्था के नेताओं और राजनीतिज्ञों के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों और उप-सांस्कृतिय समूहों की क्षेत्रीय आशाओं को समाहित कर लिया जाये तो क्षेत्रवाद निश्चित ही सम्पूर्ण राष्ट्रीय विकास और राष्ट्रीय एकीकरण में वृद्धि कर सकता है। इस प्रकार **अपकेन्द्री** तथा **अभिकेन्द्री** ताकतों के मध्य उचित समन्वय के द्वारा नीति-निर्माता तथा अभिजन शासक वर्ग एक व्यवस्था में क्षेत्रवाद को सकारात्मक स्वरूप प्रदान कर सकते हैं।[4]

जब राजनीति के साधन के रूप में भौगोलिक पृथकत्व, स्थानीय हित, क्षेत्रीय राजनीतिक एवम् आर्थिक असमानता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक भिन्नता जैसे एक या अधिक कारणों को प्रयोग में लाया जाता है तब क्षेत्रवाद का उद्भव होता है। यह तब और भी प्रखर हो जाता है जब ये सभी कारण एक ही क्षेत्र विशेष में अतिव्याप्त होते हैं।[5] वस्तुत: क्षेत्रवाद के पीछे मूल कारण आर्थिक, राजनीतिक-प्रशासनिक, सामाजिक सांस्कृतिक भिन्नता है। पश्चिमी विद्वानों ने क्षेत्रवाद का अध्ययन मुख्यत: दो आधारों पर किया है : **प्रथमत:** अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अध्ययन में रुचि रखने वाले विद्वानों ने क्षेत्रवाद को विदेश नीति विश्लेषण के सम्बन्ध में प्रयुक्त किया है। तकनीकी आधार पर उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विश्लेषण के लिए एक महाद्वीप को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित कर दिया है। एशिया महाद्वीप को दक्षिण एशिया, पश्चिमी एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया तथा सुदूर पूर्व एशिया जैसे विभिन्न क्षेत्रीय समूहों में विभाजित कर देना। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दिखाई देने वाले विभिन्न क्षेत्रीय संगठन क्षेत्रवाद का ही परिणाम हैं। **द्वितीयत:** राष्ट्र की आन्तरिक राजनीति में भी क्षेत्रवाद का यही स्वरूप देखने में आता है।

भारत में राज्यों की राजनीति पर किये गए अध्ययन आन्तरिक क्षेत्रवाद की अवधारणा पर प्रतिबिम्ब डालते हैं। माइनर वीनर की **स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया** (1964)[6], इकबाल नारायण की **स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया** (1967, 1976)[7] तथा सेलिग हैरिसन की इण्डिया : द मॉस्ट डेन्जर्स डिकेड्स (1960)[8], आन्तरिक राजनीति में क्षेत्रवाद की भूमिका का श्रेष्ठ विवरण प्रदान करती हैं। इनके अलावा कौसर जे. आजम की **पॉलिटिकल अस्पेक्ट्स ऑफ नेशनल इन्टिग्रेशन** (1981)[9] तथा सतीशचन्द्रा, के.सी. पाण्डे और पी.सी. माथुर (सं.) की **रीजनलिज्म एण्ड नेशनल इन्टिग्रेशन** (1976)[10] आन्तरिक क्षेत्र में क्षेत्रवाद का विशेष रूप से अध्ययन प्रस्तुत करती है। दक्षिण एशिया अध्ययन केन्द्र का द्वि-वार्षिक जरनल का विशेष अंक साउथ एशिया स्टडीज (1980) पूर्णत: दक्षिण एशियाई देशों में क्षेत्रवाद के अध्ययन को समर्पित है।

इन्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सेज (IESS) के अनुसार क्षेत्र को भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक संरचना और जीवन स्वरूप के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है। एक क्षेत्र की सजातीय भौतिक तथा सांस्कृतिक विशेषताएँ पड़ौसी क्षेत्र से पृथक होती हैं। क्षेत्रवाद मूलत: एक स्वभाविक प्रवृति के रूप में उभर कर सामने आता है। किसी भी क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति एवम् समूह अपनी संस्कृति, भाषा, जातीयता को बनाए रखना स्वाभाविक रूप से चाहते हैं। यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों के निवासी एक साथ मिल-जुल कर एक राष्ट्र का चयन करते हैं, लेकिन अपनी निजी क्षेत्रीय भाषा एवम् संस्कृति के प्रति अनन्य आस्था बनाए रखते हैं।[11] **डिक्शनरी ऑफ सोशल साइन्सेज** के अनुसार 'क्षेत्रवाद' का तात्पर्य आन्दोलन से है जिसे निम्न आधारों पर परिभाषित किया गया है -

(अ) एक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक आन्दोलन के रूप में जो स्थानीय संस्कृति की रक्षा तथा पोषण करें एवम् एक क्षेत्र विशेष में स्वायत्त राजनीतिक संस्थाओं की वृद्धि करें।

(ब) एक प्रशासनिक तथा राजनीतिक आन्दोलन जिसका उद्देश्य राज्य एवं स्थानीय सरकार के परम्परागत अंगों के मध्य उचित समन्वय से एक लोकतान्त्रिक तथा स्थिर सरकार की स्थापना करें।[12] डिक्शनरी ऑफ सोशल साइन्सेज की उपरोक्त परिभाषा का सम्बन्ध क्षेत्रवाद के केवल आन्तरिक राजनीतिक पक्ष से है।

आर.ए. सेलिगमैन तथा जोनसन ने क्षेत्रवाद की अत्यधिक केन्द्रीकरण के खिलाफ आन्दोलन के रूप में पहचान की है। उनके अनुसार क्षेत्रवाद में जातीय, सांस्कृतिक, भाषायी तथा आर्थिक तत्वों का मिश्रण शामिल है जो उप-राष्ट्रीय समूह की भावना को उभारने का कार्य करता है। कौसर आज़म ने क्षेत्रवाद की परिभाषा राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रीय संस्कृति में स्थान प्राप्त नहीं होने के कारण एक समूह द्वारा नवीन राजनीति के प्रति राजनीतिक असंतोष और राजनीतिक निषेधवाद की अभिव्यक्ति के रूप में दी है। समाज की अभिकेन्द्री ताकतें इस समूह की भावनाओं को आत्मसात करने में विफल रही है।[13]

विख्यात उदारवादी दार्शनिक रूसो ने क्षेत्रवाद को राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र-राज्य के खिलाफ प्रतिक्रिया माना है। राष्ट्रवाद, राष्ट्र के नाम पर एक क्षेत्र विशेष की स्थानीय परम्पराओं, स्थानीय ऐतिहासिक विरासत, नस्लीय, जातीय, भाषायी विशेषताओं तथा साहित्य, नृत्य, संगीत, लोककथाओं की अभिव्यक्ति की उपेक्षा करता है।[14] हेडविग हिन्टज, यूरोप में क्षेत्रवाद की समस्या पर लिखते हैं – फ्रांस राजनीतिक एकता और प्रशासनिक केन्द्रीयकरण का उत्कृष्ट स्थान है। उन्होंने फ्रांस को क्षेत्रवाद का भी उत्कृष्ट स्थान माना है। हिन्टज के विचार में फ्रांस का क्षेत्रवादी आन्दोलन अन्य स्थानों पर हो रहे क्षेत्रीय आन्दोलनों के लिए एक मिसाल के रूप में कार्य कर सकता है।[15]

क्षेत्रवादी आन्दोलन न केवल फ्रांस बल्कि स्पेन, इटली तथा ब्रिटेन में भी सशक्त रूप से विद्यमान हैं तथा उनका केन्द्रीय सत्ता के साथ विरोध अभी भी अनसुलझा है। इसी प्रकार पूर्वी यूरोपीय देशों में क्षेत्रीयता की भावनाएँ दशको तक साम्यवादी शासन के नीचे दबी रही लेकिन अब वे अधिक प्रखर रूप से प्रकट हो रही हैं। दक्षिण एशिया के देश भी क्षेत्रीयता की समस्या से गम्भीर रूप से ग्रस्त है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के निवासी ज्यादा से ज्यादा स्वायत्तता की मांग कर रहे हैं।

क्षेत्रवाद के अस्तित्व का आधार ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक कारणों में देखा जा सकता है। सतीश चन्द्रा का मानना है कि स्थानीय समूह के साथ इतिहास के द्वारा अन्याय किया गया है।[16] पी.सी. माथुर के अनुसार क्षेत्रवाद का वास्तविक कारण साम्राज्यवादी नीति में नही बल्कि विलग मानसिकता में है।[17] प्रो. इकबाल नारायण तथा के. सी. पाण्डे के विचार में क्षेत्रवाद का जन्म अल्प ससांधन, तीव्र प्रतिस्पर्धा तथा असमान वितरणात्मक न्याय के कारण होता है।[18] क्षेत्रवाद की भावना का विकास तब होता है जब एक क्षेत्र विशेष की सत्ताधारी दल के द्वारा लम्बे समय तक उपेक्षा की जाती है या जब जनता जागरूक हो जाती है कि उनके प्रति पक्षपात का कारण राजनीतिक पिछड़ापन है। कई बार यह भी होता है कि एक दल विशेष के नेता अपनी पकड़ मजबूत रखने के लिए क्षेत्रवाद की भावना को भड़का देते हैं। यहां तक कि एक क्षेत्र के अन्दर एक भाग विकसित तथा दूसरा भाग उपेक्षित रहता है तब भी क्षेत्रवाद की भावना उग्र हो जाती है। क्षेत्रवाद में वृद्धि करने वाले कुछ कारण हैं –

- बेरोजगारी
- एक क्षेत्र विशेष की उपेक्षा
- जनता में क्षेत्र विशेष की उपेक्षा के प्रति जागरूकता
- छोटे राज्यों द्वारा तीव्र विकास
- क्षेत्रीय दलों की संख्या में वृद्धि
- राजनीतिक महत्वाकांक्षा

प्रमुख प्रकार

आन्तरिक राजनीति में क्षेत्रवाद की प्रवृति को तीन स्तरों पर देखा जा सकता है –

(अ) अन्त्रा-राज्य क्षेत्रवाद

(ब) अन्तर राज्य क्षेत्रवाद

(स) अधिराष्ट्र क्षेत्रवाद

अन्त्रा-राज्य क्षेत्रवाद

यह क्षेत्रवाद किसी भी राज्य अथवा प्रान्त की आन्तरिक राजनीति में देखा जा सकता है। अन्त्रा-राज्य क्षेत्रवाद का सकारात्मक स्वरूप एक राज्य या प्रान्त के अन्दर एक भाग के द्वारा स्व-पहचान तथा स्व-निर्भरता की खोज करना है, जबकि नकारात्मक स्वरूप में एक राज्य या प्रान्त के अन्दर राज्य का एक भाग दूसरे भाग के प्रति भेदभावपूर्ण तथा पक्षपातपूर्ण मानसिकता रखता है।

अन्तर प्रान्तीय क्षेत्रवाद

अन्तर प्रान्तीय क्षेत्रवाद वह क्षेत्रवाद होता है, जिसमें एक या एक से अधिक प्रांतों के मध्य स्वयं के हितों की रक्षा के लिए संघर्ष होता है, अंतर प्रांतीय क्षेत्रवाद विभिन्न प्रांतों के मध्य राष्ट्रीय संसाधनों का असमान वितरण, असमान विकास, ईर्ष्या, वैमनस्य एवं प्रतिस्पर्धा पर आधारित होता है।

अधिराष्ट्रीय क्षेत्रवाद

अधिराष्ट्रीय अथवा परा राष्ट्रीय क्षेत्रवाद राष्ट्रीय सीमाओं के बंधन को स्वीकार नहीं करता है। एक राष्ट्र विशेष में रहने वाला जातीय समूह पड़ौसी राष्ट्र में रहने वाले उसी जातीय समूह से एकाकार होने की इच्छा प्रकट करता है तथा जनमत संग्रह के आधार पर एक नये राष्ट्र अथवा प्रांत की मांग प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के क्षेत्रवाद के पीछे सांस्कृतिक, भाषायी एवं प्रांतीय तत्व निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

निष्कर्ष

क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति स्वयं में घातक नहीं है। क्षेत्रवाद विशाल राष्ट्रवाद का लघु स्वरूप है। यदि एक राष्ट्र में विविधता का समुचित एवं संतुलित विकास किया जाए तो क्षेत्रवाद चुनौती के बजाए राष्ट्र की विशाल सांस्कृतिक धरोहर के रूप में स्वयं को प्रतिबिम्बित कर सकता है। एक राष्ट्र में रहने वाले विभिन्न क्षेत्रीय एवं जातीय समूह राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवम् सांस्कृतिक विकास के समान अवसर प्राप्त करना चाहते हैं, इनका लक्ष्य क्षेत्रीय स्वायत्ता स्थापित करना है। यदि शासक वर्ग द्वारा उन्हें यह अवसर नहीं दिये जाए, तो उनमें अलगाववाद एवं विघटन के तत्वों का प्रबल होना अस्वाभाविक नहीं है। आरंभ में उनका लक्ष्य स्वायत्तता की खोज होता है। यदि उनके प्रति दमनात्मक रवैया अपनाया जाता है तो स्वतंत्र राष्ट्र की खोज ही उनके समक्ष एकमात्र विकल्प रहता है।

टिप्पणी एवम् सन्दर्भ

1. इकबाल नारायण, कल्चरल प्लुरलिज्म, नेशनल इन्टीग्रेशन एण्ड डेमोक्रेसी इन इंडिया, **एशियन सर्वे**, 10, 1976, पृ. 904-913
2. सुरेन्द्र सिंह, **पोलिटिक्स ऑफ रीजनलिज्म इन पाकिस्तान, ए स्टडी ऑफ सिन्ध प्रोविन्स**, नई दिल्ली, कलिंगा पब्लिकेशन, 2003, पृ. 2.
3. डंकन बी. फोरेस्टर, सबरिजनलिज्म इन इण्डिया, **पेसिफिक अफेयर्स**, XLVII, 1, स्प्रिंग, 1970, 5-21.
4. विस्तार के लिए देखें, एस. एन. कौशिक, पॉलिटिक्स ऑफ रीजनलिज्म इन पोस्ट-1971 पाकिस्तान इन बाइ-एनुअल जरनल **साउथ एशियन स्टडीज** वोल्यू. 15, Nos. 1-2, जनवरी-दिसंबर, 1980, पृ. 93.
5. माइनर वीनर, पॉलिटिकल इन्टिग्रेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलपमेंट, **एनाल्स ऑफ द अमेरिकन एकेडमी ऑफ पॉलिटिकल एण्ड सोसियल साइन्सेज**, वोल्यू. 358, 1965, पृ. 52.

6. माइनर वीनर, **स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया**, प्रिन्सटन, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966.
7. इकबाल नारायण (सं.) (1) **स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया**, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1967.
8. इकबाल नारायण (सं.) **स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया**, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1976. सेलिग एस. हैरिसन, इण्डिया, द मोस्ट डेन्जर्स डिकेड्स, मद्रास (चैन्नई), आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1960.
9. कौसर जे. आजम, **पॉलिटिकल अस्पेक्टस ऑफ नेशनल इन्टिग्रेशन**, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1981.
10. सतीश चन्द्रा, के. सी. पाण्डे, पी. सी. माथुर (सं.), **रीजनलिज्म एण्ड नेशनल इन्टिग्रेशन**, जयपुर, आलेख पब्लिशर्स, 1976.
11. डेविड एल. सिल्स (सं.), **इन्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सेज**, द मैकमिलन कम्पनी एण्ड द प्रेस, खण्ड 13, 377–81.
12. जूलियस गोल्ड विलियम, एल. कौब (सं.), **ए डिक्शनरी ऑफ सोशल साइन्सेज**, न्यूयार्क, द प्रेस, 1967.
13. कौसर जे. आजम, **पॉलिटिकल अस्पेक्टस ऑफ नेशनल इन्टिग्रेशन**, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1981, पृ. 82–86.
14. देखें, बद्रीनाथ चतुर्वेदी, **रीजन, नेशन एण्ड वर्ल्ड : मस्ट वन निगेट द अदर? द टाइम्स**, जुलाई 31, 1998.
15. सुरेन्द्रसिंह, **पॉलिटिक्स ऑफ रीजनलिज्म इन पाकिस्तान**, दिल्ली, कलिंगा प्रकाशन, 2003, पृ. 8.
16. पी.सी. माथुर, **रीजनलिज्म एण्ड नेशनल इन्टीग्रेशन इन इण्डिया** इन सतीश चन्द्रा, ओ.पी.सी.आई.टी., पृ. 185.
17. उपरोक्त, पृ. 185.
18. उपरोक्त, पृ. 177–178.

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना का अध्ययन

रेखा महर्षि
शोधकर्त्री, शिक्षा विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर
डॉ. रीटा झाझड़िया
शोध निर्देशिका व एसोसिएट प्रोफेसर, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

साइबर–अपराध वह अपराध है जो कंप्यूटर और नेटवर्क का उपयोग करके किया जाता है। साइबर–अपराध का खतरा निजी और पेशेवर दोनों क्षेत्रों में हमेशा मौजूद और बढ़ती हुई वास्तविकता है। इंटरनेट के आगमन के साथ, पुराने अपराधों ने एक नया रूप धारण कर लिया है। प्रस्तुत अध्ययन उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना पर आधारित है। इस अध्ययन का उद्देश्य उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना का अध्ययन लिंग और विद्यालय के प्रकार के संदर्भ में करना था। इस अध्ययन के लिए वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। न्यादर्श के लिए शोधकर्त्री ने जयपुर जिले के 50 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया और आकडों का विश्लेषण माध्य, मानक विचलन और टी–परीक्षण के द्वारा किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना का अध्ययन लिंग और विद्यालय के प्रकार के संदर्भ में सार्थक अंतर नहीं है।

मुख्य शब्द : साइबर क्राइम, साइबर सुरक्षा, इंटरनेट, आईटी अधिनियम, चेतना।

प्रस्तावना

वर्तमान तकनीकी युग में कम्प्यूटर और इन्टरनेट का उपयोग निरंतर बढता जा रहा है। इंटरनेट के बढते प्रभाव के कारण कोई भी कार्य बिना कम्प्यूटर की सहायता से करा बहुत मुश्किल लगता है। कम्प्यूटर और इंटरनेट के क्षेत्र में लगातार विकास हो रहा है और इस विकास को देखते हुये अपराधी भी इस तकनीक के माध्यम से ज्यादा जागरूक हो रहे हैं। वह क्राइम को अंजाम देने के लिए कम्प्यूटर, इंटरनेट, डिजिटल डिवाइसेज और वर्ल्ड वाइब वेब आदि का प्रयोग कर रहे हैं। ऑनलाइन माध्यम से ठगी या चोरी करना भी इसी श्रेणी में आता है। किसी की वेबसाइट को हैक करना या सिस्टम डेटा को चुराना यह सभी तरीके साइबर क्राइम की श्रेणी में आते हैं।

साइबर क्राइम पूरी दुनिया में सुरक्षा और जाँच एजेंसियों के लिए एक महत्वपूर्ण समस्या बन गया है। साइबर क्राइम एक ऐसी अवैध गतिविधि है जिसमें कम्प्यूटर को एक माध्यम के रूप में या निशाने के रूप में या क्राइम करने के माध्यम

के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि साइबर क्राइम एक ऐसा अवैधानिक कृत्य है जिसमें कम्प्यूटर साधन के रूप में या साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त होता है। इसमें अनेक प्रकार की आपराधिक गतिविधियां शामिल रहती है और ये गतिविधियां कम्प्यूटर डाटा या सिस्टम की गोपनीयता या विश्वसनीयता पर विपरीत प्रभाव डालती है और जिनसे कम्प्यूटर में संग्रहित सामग्री और कॉपीराइट संबंधी अधिकार का उल्लंघन होता है।

साइबर क्राइम अन्तरदेशीय स्वरूप का होता है क्योंकि इसका प्रभाव विश्व के विभिन्न देशों तक होता है। साइबर क्राइम में अपराधकर्ता दूर रहकर भी अपने क्राइम के लक्ष्य बिन्दु के सम्पर्क या सामने आये बिना अपने क्राइम को क्रियान्वित कर सकता है। जिसके फलस्वरूप उसके पकडे जाने के अवसर नगण्य प्राय: होते हैं और यदि पकडा भी जाये तो इसे साक्ष्य के आधार पर साबित करना अत्यन्त कठिन होता है। एन.सी.आरबी की रिर्पोट के अनुसार भारत इस श्रेणी के तहत क्राइम दर 2019 में 3.3 फीसदी से बढकर 2020 में 3.7 फीसदी हो गई है। 2020 में दर्ज किए गए साइबर क्राइम के 60.2 प्रतिशत मामले (30,142) धोखाधडी के थे। ऑनलाइन बैंकिंग फ्रॉड 4,047, ओटीपी धोखाधडी 1,093, क्रेडिट/डेबिट कार्ड फ्रॉड 1,194, एटीएम से जुडे केस 2,160, सोशल मीडिया पर फर्जी सूचना 578, ऑनलाइन परेशान करने के केस 972, फर्जी प्रोफाइल 149, आंकडों की चोरी 98 मामले सामने आये। उपर्युक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि भारत में साइबर क्राइम तेजी से बढ़ रहा है।

साइबर क्राइम की श्रेणियाँ

साइबर क्राइम की प्रमुख श्रेणियों को उनके लक्ष्य और प्रभावों के आधार पर मुख्य रूप से निम्नलिखित चार समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- **व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध**– इस तरह के अपराध किसी खास व्यक्ति को नुकसान पहुंचाने के लिए किए जाते हैं। इनमें हैकिंग, क्रैकिंग, ईमेल के माध्यम से उत्पीड़न, साइबर–स्टाकिंग, साइबर बुलिंग, मानहानि, अश्लील सामग्री का प्रसार, ईमेल स्पूफिंग, एसएमएस स्पूफिंग, कार्डिंग, धोखाधड़ी और धोखाधड़ी, चाइल्ड पोर्नोग्राफी, धमकी द्वारा हमला, सेवा हमले से इनकार, जालसाजी, और फ़िशिंग।
- **संपत्ति के खिलाफ अपराध**– किसी व्यक्ति की संपत्ति को नुकसान पहुंचाने के लिए साइबर क्राइम किए जाते हैं। उन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है – बौद्धिक संपदा अपराध, साइबर–स्क्वाटिंग, साइबर बर्बरता, कंप्यूटर सिस्टम को हैक करना, कंप्यूटर बर्बरता, कंप्यूटर जालसाजी, सूचना को नुकसान पहुंचाने के लिए वायरस और दुर्भावनापूर्ण सॉफ्टवेयर प्रसारित करना, ट्रोजन हॉर्स, साइबर अतिचार, इंटरनेट समय की चोरी, डकैती या धन की चोरी जबकि धन हस्तांतरण, आदि।
- **सरकार/फर्म/कंपनी/व्यक्तियों के समूह के खिलाफ अपराध**– इस प्रकार के अपराधों में साइबर आतंकवाद, अनधिकृत जानकारी रखना, पायरेटेड सॉफ्टवेयर का वितरण, वेब जैकिंग, सलामी हमले, लॉजिक बम आदि शामिल हैं। इनमें अपराधी देश के नागरिकों को आतंकित करना चाहते हैं।
- **समाज के विरुद्ध अपराध**– उपरोक्त सभी अपराधों का समाज पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव बड़े पैमाने पर है। इसलिए इसमें ऐसे सभी अपराध शामिल हैं जैसे पोर्नोग्राफी, ऑनलाइन जुआ, जालसाजी, अवैध वस्तुओं की बिक्री, फिशिंग, साइबर आतंकवाद आदि।

संबंधित साहित्य की समीक्षा

- हेनरी (2016) द्वारा, ''साइबर क्राइम विक्टमाइजेशन इट्स एक्टेंट एंड फॉर्म एमगं कॉलेज स्टूडेन्टस इन चेन्नई'' मद्रास विश्वविद्यालय से सम्बद्ध चेन्नई शहर में स्थित सरकारी, सहायता प्राप्त तथा स्ववित्तपोषित कला और विज्ञान कॉलेजों में स्नातक एवं परास्नातक डिग्री में अध्ययनरत 1,520 छात्रों के न्यादर्श पर किये गए अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के अनुसार उत्तरदाताओं ने चार प्रकार के साइबर क्राइम जैसे साइबर उत्पीड़न, साइबर स्टॉकिंग, साइबर हैकिंग एवं साइबर यौन उत्पीड़न से पीड़ित होने का अनुभव किया। इन सभी स्वरूपों में से, साइबर स्टॉकिंग साइबर

क्राइम पीड़ितता का सबसे प्रमुख रूप है। पीड़ितों में आधे से अधिक ने बताया कि वे डरते थे कि दूसरों को उनके पीड़ित होने के विषय में पता चल जाएगा और लगभग इतने ही उत्तरदाता ऐसा अनुभव दोबारा होने के प्रति भयभीत थे। इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साइबर यौन उत्पीड़न और साइबर हैकिंग की अपेक्षा साइबर स्टॉकिंग ने साइबर क्राइम पीड़ितों पर अधिक प्रभाव डाला है।

- देशमुख, जाह्नवी जे तथा चौधरी, सुरभि आर (2014), ''साइबर क्राइम इन इंडियन सिनैरियो–ए लिटरेचर स्नैपशॉट'' द्वारा किये गए अध्ययन में भारतीय परिदृश्य में साइबर क्राइम को रेखांकित किया गया है। अध्ययन में भारत में साइबर क्राइम के प्रचलित स्वरूपों वास्तविक संसार में घटित साइबर क्राइम के मामलों के परिदृश्य एवं कार्यप्रणाली का उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही साइबर क्राइम में वैश्विक वृद्धि के परिणामस्वरूप आर्थिक क्षेत्र में उपभोक्ता विश्वास एवं उत्पादन पर साइबर क्राइम के सम्भावित प्रभाव पर विचार किया गया है। अध्ययन के अंत में साइबर सुरक्षा हेतु कुछ जरूरी उपायों का सुझाव दिया गया है।
- सक्सेना, परिधी (2014), ''साइबर क्राइम : अनअ्दर डाईमेन्शन ऑफ वीमेन विक्टमाइजेशन'' द्वारा किये गए अध्ययन में साइबर क्राइम को महिलाओं के प्रति क्राइम के एक अन्य आयाम के रूप में देखा गया है। अध्ययन में महिलाओं के प्रति साइबर क्राइम के विभिन्न स्वरूपों का उल्लेख करते हुए साइबर कानून की आवश्यकता पर विचार किया गया है। भारत में साइबर कानून की स्थिति पर दृष्टि डालते हुए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की कुछ धाराओं का उल्लेख किया गया जो महिलाओं को साइबर क्राइम से थोड़ी बहुत सुरक्षा प्रदान करता है। इसके साथ ही अधिनियम की कमियों की तरफ ध्यान आकर्षित किया गया है तथा इस लिंग आधारित आयाम का सामना करने हेतु कुछ सुझाव दिया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में यह बतलाया गया है कि साइबर क्राइम एक वैश्विक क्राइम है परन्तु इससे अधिकांश संख्या में महिलाएं प्रभावित हो रही है। साइबर क्राइम मूल रूप से महिलाओं के विरूद्ध निर्देशित जानबूझकर उन्हें नुकसान पहुँचाने हेतु आधुनिक दूरसंचार तकनीकों जैसे इंटरनेट और मोबाइल फोन की सहायता से किया गया क्राइम है। कठोर कानून का अभाव एवं क्राइम की रिपोर्ट दर्ज ना कराये जाने के कारण क्राइम से सम्बन्धित सांख्यिकीय आंकड़ों का अभाव है।

वर्तमान समय में ऐसे विषयों पर अध्ययन की आवश्यकता है क्योंकि इन विषयों पर किया गया अध्ययन विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को उनकी कार्य योजना को बनाने में मदद करेगा। प्रस्तुत लेख में शोधकर्त्री ने अनेक पत्र पत्रिकाओं और शोधों का अध्ययन किया और पाया कि वर्तमान समय में यह अत्यंत प्रासंगिक विषय है और इस कार्य हेतु विभिन्न जनसांख्यिकीय चरों को सम्मिलित करते हुए उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में साइबर क्राइम के प्रति चेतना का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र और छात्राओं में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना का अध्ययन करना।
2. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी और गैर सरकारी विद्यार्थियों में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र और छात्राओं में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
2. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी और गैर सरकारी विद्यार्थियों में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में स्वनिर्मित ''**साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना**'' का प्रयोग किया गया।

शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में जयपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के 50 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में लिया गया हैं। जिनमें सरकारी विद्यालयों से कुल 25 और गैर सरकारी विद्यालयों से 25 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। विद्यार्थियों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है।

संख्यिकीय तकनीकी

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है- माध्य, मानक विचलन और टी-परीक्षण।

व्याख्या एवं विश्लेषण

परिकल्पना-1 : उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र और छात्राओं में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका-1

उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र और छात्राओं में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-परीक्षण	सार्थकता स्तर
छात्र	25	235.78	23.21	1.12	0.05 सार्थकता
छात्राएँ	25	242.26	28.89		स्तर पर स्वीकृत

तालिका-1 से स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र और छात्राओं में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना का माध्य क्रमश: 235.78 तथा 242.26 है, वही मानक विचलन क्रमश: 23.21 तथा 28.89 है। माध्य एवं मानक विचनल से टी-परीक्षण का मान 1.12 प्राप्त हुआ है जो 0.05 सार्थकता स्तर पर दिए गए टी-अनुपात तालिका मूल्य (1.96) से कम है। अत: शून्य परिकल्पना को स्वीकृत होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र और छात्राओं में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

परिकल्पना-2 : उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी और गैर सरकारी विद्यार्थियों में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका-2

उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी और गैर सरकारी विद्यार्थियों में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-परीक्षण	सार्थकता स्तर
सरकारी विद्यार्थी	25	232.63	21.56	1.11	0.05 सार्थकता
गैर सरकारी विद्यार्थी	25	238.58	26.87		स्तर पर स्वीकृत

तालिका संख्या 2 से स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी और गैर सरकारी विद्यार्थियों में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना का माध्य क्रमश: 232.63 तथा 238.58 है, वही मानक विचलन क्रमश: 21.56 तथा 26.87 है। माध्य एवं मानक विचनल से टी-परीक्षण का मान 1.11 प्राप्त हुआ है जो 0.05 सार्थकता स्तर पर दिए गए टी-अनुपात तालिका मूल्य (1.96) से कम है। अत: शून्य परिकल्पना को स्वीकृत होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उच्च माध्यमिक

स्तर के सरकारी और गैर सरकारी विद्यार्थियों में साइबर क्राइम कारकों एवं रोकथाम के प्रति चेतना में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

निष्कर्ष और सुझाव

इंटरनेट के उपयोगकर्ताओं में वृद्धि के साथ ही साइबर क्राइमों में भी वृद्धि देखी जा सकती है। रोजमर्रा की जिंदगी में तरह–तरह के साइबर क्राइम हो रहे हैं। लेकिन लोगों को ऐसे सभी प्रकारों की जानकारी नहीं है। ज्यादातर लोग हैकिंग और वायरस/वर्म के बारे में ही जानते हैं। उन्हें फ़िशिंग, मानहानि, पहचान की चोरी, साइबर स्टाकिंग आदि की जानकारी नहीं होती है। इंटरनेट से जुड़े इन अपराधों के बारे में जानकारी होना आज की दुनिया की जरूरत है। बुनियादी साइबर सुरक्षा के प्रति जागरूक रहना प्रत्येक का कर्तव्य है। साइबर क्राइम पर नियंत्रण के लिए सरकार भी प्रयास कर रही है। लोगों को विभिन्न साइबर–अपराधों और साइबर सुरक्षा के बारे में जानने में मदद करने के लिए साइबर कानून बनाए हैं। सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) अधिनियम, 2000 साइबर संबंधित अपराधों से संबंधित है। अपराधियों को पकड़ने के लिए सरकार ही नहीं जनता को भी साथ मिलकर काम करना चाहिए। जो लोग इनमें से किसी भी साइबर क्राइम के शिकार हुए हैं, उन्हें आगे आकर विशेष साइबर क्राइम सेल में उनके खिलाफ शिकायत दर्ज करानी चाहिए। इससे निश्चित तौर पर साइबर क्राइम से निपटने में मदद मिलेगी। इस प्रकार, साइबर–अपराधों और सुरक्षा के बारे में चेतना समय की आवश्यकता है।

संदर्भ

- भार्गव, एस. (1977). आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- माथुर, एस.एस. (2013). शिक्षा की दार्शनिक तथा समाजिक आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- मंगल, एस.के. (2008). शिक्षा में सांख्यिकी (2एडी), पी.एच.आई.प्रा.लि., जयपुर।
- मंगल, एस.के. शुभ्रा (2014). व्यावहारिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियाँ, पी.एच.आई.प्रा.लि., दिल्ली।
- वालिया, जे. (2010). शिक्षा तकनीकी, अहम पाल पब्लिशर्स, पंजाब।
- गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता, ए. (2008). उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- जायसवाल, एस. (1992). शिक्षा मनोविज्ञान, रेलवे क्रासिंग सीतापुर रोड, लखनऊ।
- शर्मा, आर.ए. (2011). शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर लाल बुक डिपो, मेरठ।

❑❑

ATISHAY KALIT
Vol. 10, Pt. A, Sr. 17, 2023
ISSN : 2277-419X

रवाईं का किसान आंदोलन - रवाईं ढ़डक

डॉ. राकेश मोहन नौटियाल
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, वीर शहीद केसरी चंद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डाकपत्थर, देहरादून, उत्तराखंड
डॉ. आशाराम
सहआचार्य, इतिहास विभाग, वीर शहीद केसरी चंद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डाकपत्थर, देहरादून, उत्तराखंड

गढ़वाल रियासत तथा हिमांचल प्रदेश के राजाओं एवं गढ़पतियों ने समय-समय पर आक्रमण करके रवाईं क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के असफल प्रयास किए। रवाईं क्षेत्र इन दो तरफी राज सत्ताओं के मध्य चक्की के गेंहू की तरह पिसता रहा। शांतिप्रिय एवं कठोर परिश्रम करने वाले यहाँ के लोगों का शोषण निरंतर होता रहा। परंपरागत कृषि और पशुपालन से जुड़े लोगों को खाने के लिए एवं पहनने के लिए वस्त्र ऊन से मिल जाते थे और अपनी दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं जैसे नमक एवं गुड़ के लिए चकराता जाना पड़ता था जिसे ढाकर कहते थे।

रवाईं के समाज में विरोध के स्वर तभी उठे जब राज सत्ता की और से इनके जीवन में घुसपैठ हुई। टिहरी के शासक कीर्तिशाह के शासनकाल तक लोगों को काठ-कुशलों में आलू चौलाई बोने, जंगलों में पशुओं के चरान-चुगान, इमारती और कृषि उपकरण बनाने के लिए लकड़ी, मकान बनाने के लिए पत्थर तथा पटाल निकालने पर कोई प्रतिबंध नहीं था। टिहरी रियासत की गद्दी पर 4 अक्टूबर 1919 को नरेंद्रशाह बैठे। कुछ समय बाद 1920-21 में रियासत में राजशाही द्वारा लागू बरा-बेगार, पुलिस जुल्म व नौकरशाहों के भ्रष्ट कारनामों के खिलाफ पूरी रियासत में आंदोलन चलने लगे। आंदोलन के दमन के लिए पुलिस और फौज कई दिनों तक गावों में मौजूद रही। इस समय नरेंद्रशाह को अपने नाम का नया शहर बसाने की इच्छा हुई। सन 1921 से 1925 तक ओड़ाथली नामक स्थान में महल एवं नगर का निर्माण हुआ और इसका नाम नरेंद्रनगर रखा गया। इस पर राजकोष के 60 लाख रूपए से अधिक खर्च हुए। यह टिहरी की छोटी रियासत के लिए बहुत बड़ी रकम थी। रियासत का कुल राजस्व राज्य कर्मचारियों के वेतन एवं राजदरबार के खर्चे के लिए बमुश्किल पूरा हो पाता था। राज्य के सामने विशाल अर्थ संकट पैदा हो गया था। जनता पर ज्यादा कर लगने लगे थे। अब राज्य के सामने राजस्व बढ़ाने का एक ही उपाय था की जंगलों का सीमांकन किया जाए और जंगल से ली जाने वाली हर वस्तु पर टैक्स शुल्क लगाया जाए।

रवाईं ढ़डक की शुरुआत - टिहरी

राज्य द्वारा सन 1925 में यह तय किया गया की जंगलात बंदोबस्त नए तरीके से करके आरक्षित वनों की सीमा बढ़ा दी जाए। जिसके लिए फ्रांस से प्रशिक्षण प्राप्त डी.एफ.ओ. पद्मदत्त रतूड़ी को वन बंदोबस्त के लिए वर्किंग प्लान ऑफिसर बनाया गया। सन् 1926-27 तक वर्किंग प्लान की रूप रेखा तैयार हो गई थी और जंगलात का नया बंदोबस्त शुरू कर दिया गया। रियासत के सबसे सम्पन्न जंगल रवाईं क्षेत्र में थे इसलिए जंगलात के सीमांकन का कार्य रवाईं-जौनपुर से प्रारंभ किया गया। इसी बंदोबस्त ने रवाईं में विद्रोह (ढ़डक) का रूप धारण किया जिसकी परिणीति तिलाड़ी गोली कांड के रूप में हुई। सन

1927–28 में नई वन व्यवस्था के आधार पर वनों की जो सीमाएँ निर्धारित की गई उनमें आम जनता के हितों की उपेक्षा कर दी गई। परगना रवाईं के ग्रामीणों के आने-जाने के मार्ग (रास्ते), खेत-खल्याण (आँगन) और पशुओं के बांधने के स्थान, गौशालाएँ आदि भी वनों की सीमा के अंतर्गत आ गए। इससे जनता में व्यापक असंतोष फैल गया। राज्य की और से यह घोषणा की गई की आरक्षित वनों में किसानों के कोई अधिकार नहीं होंगे और वनों का उपयोग करने पर पशुओं से लेकर आदमियों तक पर टैक्स लगेगा। इससे कृषि और पशुपालन पर आश्रित जनता के सामने यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि पशुओं का चरान-चुगान कहाँ कराया जाएगा।

मुनारें खिसकाकर गांवों के पास चिनी जाने लगी। गांव वालों से बरा-बेगार इतना अधिक लिया जाने लगा की जनता का जीवन दूभर हो गया। जंगलात विभाग के अत्याचार बढ़ते गए। एक व्यक्ति ने इन अत्याचारों का वर्णन इस प्रकार से किया ''जंगलात वालों ने हमारी हड्डीयां चूस ली है। जगंलात वाले सड़क बनवाते हैं। मुनारे चिनवाते हैं। जोत कटवातें हैं। बरा वसूलतें हैं। बेगार ढुलान करवाते हैं। लेकिन मजदूरी नहीं देते हैं। हमारे जंगल के सारे हक-हकुक समाप्त किये जा रहे है। मुनारें गावों के पास लगाए जा रहे है। इसलिए हमकों आंदोलन करना पड़ा।''

जन सभाएँ

लोगों ने नई वन व्यवस्था से उत्पन्न संकट से निजात पाने के लिए स्थान-स्थान पर जन सभाएँ की और यह निर्णय लिए कि प्रत्येक गांव में लोगों को इस बात के लिए जागरूक किया जाए की जहां भी वन विभाग मुनारें बनाता है उनको तोड़ दिया जाए। इस बात की भनक जब पद्‌म दत्त रतूड़ी को लगी तो उसने इसके बारे में टिहरी जाकर दीवान चक्रधर जुयाल को बताया और दीवान से फौज की मांग की। दीवान चक्रधर जुयाल ने फौज देने से मना किया किन्तु जनता की योजना विफल करने के लिए क्षेत्र में सभाएं करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस समय लोगों ने बैठक करने के स्थान थापला (पट्टी ठकराल), देव डोखरी (पट्टी बनाल), चांदा डोखरी (पट्टी गोडर), लाखामंडल के नीचे यमुना के किनारे नियत थे। किन्तु लोगों को मजबूरन बैठके लाखामंडल में करनी पड़ी क्योंकि यह स्थान टिहरी रियासत के अधिकार क्षेत्र से बाहर था। बैठक में सर्व सहमति से जो बातें पारित होती थी उस प्रस्ताव की सूचना लोगों को पैदल चलकर ब्रिटिश वायसराय या उसके प्रतिनिधि तक पहुंचानी पड़ती थी।

आजाद पंचायत

अपनी बात सरकार तक पहुंचाने के लिए सन् 1928 के आरंभ के महीनों में गांव-गांव में संघर्ष समितियों तथा केन्द्रीय स्तर पर आजाद पंचायतों का गठन किया गया था। आजाद पंचायतों के अध्यक्ष-दयाराम (कनसेरू), उपाध्यक्ष - हीरसिंह (नगाणं गांव), कोषाध्यक्ष- कलम सिंह (डखयाड गांव), मंत्री-बैजराम तथा मुख्य सदस्य धूम सिंह (चक्कर गांव), दिला (बाड़िया) लुदर सिंह और दलपति (बड़कोट), जमन सिंह (कनसेरू), फ़तेसिंह (बिन्नाई), संयोजक-लाला राम प्रसाद (राजतर) थे।

राजा से न्याय की मांग

सन 1928 में राजा नरेंद्रशाह ने राजगढ़ी रवाईं का दौरा (भ्रमण) किया और राजगढ़ी में खुली अदालत लगी। उस दिन सैकड़ों किसान वहाँ पहुंचे और उन्होंने महाराजा से मिलने की इच्छा प्रकट की। परंतु चालाक अधिकारियों ने किसानों को बाहर ही रोक दिया और राजा को उस समय प्रजा से नहीं मिलने दिया। परेशान किसानों ने नारे लगाए

''बद्रीनाथ की दुहाई है।
बोलन्दा बद्रीनाथ न्याय दो''

टिहरी राजाओं को बद्रीनाथ का प्रतिनिधि माना जाता है इसलिए किसान नारे लगा रहे थे की बद्रीनाथ भगवान की शपथ है, बोलने वाले साक्षात बद्रीनाथ रूपी राज हमें न्याय दो परंतु चालाक अधिकारियों ने किसानों और राजा की बात नहीं होने दी यदि राजा किसानों की बात सुन लेते तो शायद तिलाड़ी का गोलीकांड नहीं होता? राजा ने किसानों की आवाज सुनकर

भोजनावकाश के नाम पर कचहरी (कोर्ट) स्थापित कर दी। राजा ने जब अव्यवस्था के लिए कर्मचारियों को डांटा तो कर्मचारियों ने किसानों के खिलाफ गलत बातें बढ़ा-चढ़ा कर राजा से कही। भोजन करने के बाद जब राजा किसानों से मिले तो उन्होंने 400 (चार सौ) हस्ताक्षरों से युक्त एक मांग पत्र राजा को दिया, जिसे राजा ने अस्वीकार कर दिया। इस घटना के बारे में डी.एफ.ओ. ने खुद तिलाड़ी की आजाद पंचायत को दिनांक 15 मार्च 1930 को एक पत्र लिखा जिसे लेकर जंगलात का एक अधिकारी चंद्र मोहन पैन्यूली चांदा डोखरी (आजाद पंचायत मुख्यालय) गया था। इस पत्र में पद्मदत्त रतूड़ी ने स्वीकार किया था। ''जरूर परार (3 वर्ष) का साल माँ सकीर का दौरा का वक्त आप लोगु न एक अर्जी पेश करी थई। आप लोगु नि सणी या बात मानणी पड़ ली की आप लोगु न कायदा का खिलाफ द्वि चार सौ आदमियों का दस्तखत करि क अर्जी पेश करी।''

यह बात बिल्कुल साफ थी कि क्षेत्र की जनता के विरोध को नरेंद्रशाह सन् 1928 से जानते थे। लेकिन वे अपनी जिद पर अड़े रहे पर सत्यग्राही नेताओं को सबक सिखाने व सीधा करके झुका देने का इरादा बनाए रहे। तिलाड़ी गोली काण्ड कोई आकस्मिक विद्रोह नहीं था बल्कि इसकी शुरुआत 1926-27 में हो गई थी।

पंचायतों द्वारा प्रत्यावेदन देना

गांव-गांव में संघर्ष समितियाँ बनाई गई और केन्द्रीय ढ़डक पंचायतों ने राजदरबार को समय-समय पर अपने हक-हकूको के लिए ज्ञापन दिए। सर्किल प्लान डिवीजन के एकॉउन्टेन्ट आलम सिंह गुसाईं ने डी.एफ.ओ. को 21 फरबरी 1930 को पत्र लिखा। **''हम जनवरी के तीसरे सप्ताह में मास्टर कुलानंद सकलानी से मिलने सुनालड़ी गांव गए थे तो पता चला कि शिव सिंह पटवारी कह रहा था कि महाराजा ने अगर हमारी मांगे स्वीकार की तो ढ़डक नहीं होगा।''** आलम सिंह गुसाई का 22 फरबरी 1930 को लिखा पत्र इस बात को उजागर करता है की स्थानीय जनता ने लगातार निवेदन किए थे। रवाईं और जौनपुर के किसानों का संगठन धीरे-धीरे आरंभ हुआ। सारे क्षेत्र की एक पंचायत बनाई गई, जिसकी बैठकों के लिए चांदा डोखरी, तिलाड़ी, और थापला स्थान नियत किये गए। इस बात का घर-घर में प्रचार होने लगा।

प्रारंभ में इस आंदोलन से लाभ उठाने के लिए जागीरदार थोकदार भी पंचायत में शामिल हुए। उन्होंने किसानों को अपने लिए कुछ अधिक अधिकार पाने के लिए अस्त्र बनाना चाहा। लेकिन जब उनकी कुछ न चली तो वे राजा के भेदिए बन गए। समझोते के लिए राजा के वजीर हरीकृष्ण रतूड़ी आगे आए। किसानों ने तो फैसला कर लिया था कि बातों का आधार केवल उनकी मांगे ही हो सकती है। लेकिन बूढ़े वजीर ने यह आश्वासन देकर की उनकी मांगे मान ली जाएगी उन्हें बातचीत करने के लिए राजी कर लिया था। इस दौरान भीतर ही भीतर चाल खेली जा रही थी कि इस बार जनता को ऐसा दबा दिया जाए कि वह फिर कभी सिर ही न उठा सके।

किसान नेताओं को बंदी बनाना

20 मई 1930 को आंदोलन के प्रमुख नेताओं दयाराम, रुद्र सिंह, राम प्रसाद, जमन सिंह गिरफ्तार करके स्थानीय मजिस्ट्रेट ने जंगलात के अफसर पद्मदत्त रतूड़ी के साथ टिहरी ले लिए रवाना कर दिया। उधर पीछे-पीछे किसान नेताओं का पता लगाने किसानों का जत्था राड़ी पहुंचा। जब गांव के लोगों को पता चला तो उन्होंने इस बात को हर गांव तक पहुंचाने के लिए बाजगियों की सहायता ली क्योंकि उस समय टेलीफोन की सुविधा नहीं थी। बाजगियों ने अपने ढोल एवं रणसिंगों से पड़ोस के गावों को ध्वनि संचार माध्यम से अवगत कराया की आज हमारे नेताओं को बंदी बना लिया गया जिन्हे टिहरी जेल ले जाया जा रहा है यह बात बाजगियों के रणसिंगों की ध्वनि से एक गांव से दूसरे गांव में आग की तरह फैल गई और रवाईं के अनेकों लोग अपने नेताओं को छुड़ाने राड़ी के रास्ते में पहले ही पहुँच गए।

डी.एफ.ओ. पद्मदत्त रतूड़ी द्वारा गोली चलाना

काउन्सल और दरबार में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए चक्रधर जुयाल षड्यन्त्र कर रहे थे। कूटनीतिक रूप से अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए दीवान चक्रधर जुयाल नैनीताल में पोलिटिकल एजेंट मिस्टर स्टाइफ़ से डी.एफ.ओ. पद्म दत्त रतूड़ी

के साथ मिले। इन्होंने अपने राजनीतिक षड्यन्त्र में पोलिटिकल एजेंट को भी समिलित कर लिया। 26 मई को रतूड़ी और जुयाल नैनीताल से नरेंद्रनगर पहुंचे। इसी दिन उन्होंने अपराह्न में सेना को रवाईं में कूच का हुकूम दे दिया। भलड़ियाना (भल्याणा) नामक जगह पर जब सेना की समीक्षा की गई तो 7 सिपाही आगम सिंह बखरेटी, जीत सिंह, मालचंद, सीताराम–नगाड़ गांव, झूम सिंह, सैपाल सिंह, लखिराम निवासी काली बाजरी रवाईं के पाए गए जिन्हें नरेंद्र नगर वापस भेज दिया गया । 28 मई को दीवान चक्रधर जुयाल राजगढ़ी पहुंचा, तब आंदोलनकारियों की बेठक टटाव गांव में चल रही थी। फौज की सूचना पर इन्होंने 29 मई सुबह टटाव छोड़ दिया और तिलाड़ी सेराड़ में इक्कठे हो गए। किसानों के निहत्थे जत्थे पर डी.एफ.ओ. पद्मदत्त रतूड़ी ने रिवाल्वर से डंडाल गांव के पास फायर किया जिससे दो किसान नेता झूम सिंह एवं अजीत सिंह घटनास्थल पर ही शहीद हो गए। कुछ घायल हुए एक गोली डिप्टी कलेक्टर सुरेन्द्र दत्त को भी लगी। इन हत्याओं को देखकर पद्मदत्त डरा तो था ही साथ ही डिप्टी कलक्टर भी मर गया यह मानकर वह वहाँ से भागने में सफल हुआ किसानों की टोली ने अपने शहीदों और घायलों और सुरेन्द्र दत्त कलेक्टर को राजतर लेकर आयी। हत्याकांड का किस्सा सुनकर पुलिस वालों के होश उड़ गए और उन्होंने गिरफ्तार व्यक्तियों को छोड़ दिया। घायल डिप्टी कलेक्टर का इलाज सरकारी वैध दिवाकर डँगवाल से करवाया गया। पद्मदत्त रतूड़ी रातों–रात भागकर घोड़े से अपने घर सिराईं टिहरी पहुंचा वहाँ यथेष्ट सुरक्षा लगाकर सीधा नरेंद्रनगर गया। उसने अपने को बचाने के लिए उसने तरह–तरह के झूठ दीवान के सामने प्रस्तुत किए। 29 मई को दीवान चक्रधर जुयाल तथा पद्मदत्त रतूड़ी फौज लेकर चल पड़े। अब फौज के आने की स्थिति पर विचार करने के लिए आजाद पंचायत की आम सभा यमुना नदी के किनारे तिलाड़ी के मैदान में बुलाई गयी।

तिलाड़ी काण्ड

30 मई की सुबह चक्रधर जुयाल ने एक चपरासी भेजा की वो आंदोलन समाप्त कर दें। दोपहर 2:00 बजे दिन में प्रभावी सैनिक कार्यवाही की गई। पहाड़ की और चोटी पर सैनाध्यक्ष नत्थु सिंह ने पोजीशन ली। उत्तर पूर्व की तरफ से ग्राम छटाँगा से ग्राम किसन तक तिलाड़ी सेरा को सेना ने घेर लिया था। 30 मई 1930 को सभा करते हुए किसानों पर तिलाड़ी के मैदान में तीन तरफ से फौज ने घेरकर दीवान चक्रधर की सीटी बजाने पर तीनों तरफ से गोलियां बरसने लगी। एक राजा की फौज ने अपनी प्रजा पर गोलीबारी कर दी। सेना ने निर्दोष ग्रामीणों के साथ–साथ नदी पार मुर्दा ले जा रहे लोगों तक भी गोलियां पहुंची। नदी पार सुनालड़ी गावों में चर रहे गाय तथा ग्रामीण भी घायल हुए। इस गोलीबारी के बीच चक्र गांव के धूम सिंह दीवान के समक्ष पहुँच गए और उनके माथे पर बंदूक रख दी लेकिन इसमें उनका अंगूठा टूट गया, जिसमें सेकड़ों लोगों मारे गए। कुछ यमुना में कूद कर मरे। मरने वालों की स्पष्ट संख्या ज्ञात नहीं है कुछ समाचार पत्रों में यह संख्या 200 बताई गयी है। जलियाँवाला बाग हत्याकांड के 11 ग्यारह वर्ष बाद एक राजा की फौज ने अपनी ही जनता को गोलियों से भून डाला यह इतिहास की पहली घटना है जब अपनी ही फौज ने अपने ही लोगों को मौत के घाट उतार दिया था। घटना को सरकारी तंत्र के द्वारा जलियावाला बाग की तरह लीपापोती करके बताया गया पर गढ़वाली के संपादक विशंभर दत्त चंदोला इस घटना में 100 से अधिक लोगों के मारे जाने और 194 व्यक्तियों की गिरफ्तारी की रिपोर्ट करते है।

किसानों का यह विद्रोह यहीं समाप्त नहीं हुआ इसके बाद फौज ने धर–पकड़ की। इन्होंने घर–घर में घुसकर माताओं बहिनों के जेवरातों के साथ साथ इज्जत तक लूट ली। जब राजा विलायत से वापस आए तो प्रजा के नाम पर एक पत्र भेजा गया की हमारी फौज ने जनता के साथ अन्याय किया आप दरबार में आकर अपनी बात रख सकते हैं। भोले–भाले किसान जब टिहरी पहुंचे तो उन्हें कैद कर लिया गया जिससे से आधे से ज्यादा लोगों की टिहरी जेल में भूख और ठंड से मौत हो गयी थी। 7 जुलाई 1930 को महाराज यूरोप से लौटे तो पोलिटिकल एजेंट स्टाइफ़ और जुयाल ने अपनी स्थिति स्पष्ट की और अपने को सुरक्षित कर लिया। क्योंकि तिलाड़ी कांड कोई एक दिन की घटना नहीं थी और ना ही एक दिन में उपजी समस्या थी यह तो रतूड़ी और जुयाल की महत्वकांक्षा, अहंकार और जन उपेक्षाओं का परिणाम था। यह दुर्भाग्य पूर्ण घटना जिसे उत्तराखंड का जलियांवाला बाग हत्याकांड भी कहा जाता है इसमें सत्ता ने जुर्म की सभी सीमाओं को लांघ दिया। इस घटना से टिहरी रियासत की साख को धक्का लगा। अंग्रेजों की नजर में रियासत की साख बचाने के लिए पंजाब सनातन धर्मसभा के प्रतिनिधि

पंडित गणेश दत्त शास्त्री, पंडित शिवानन्द थपलियाल अवकाश प्राप्त प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में एक जांच आयोग गठित किया गया। जांच आयोग ने सभी सम्बद्ध पक्षों के बयान दर्ज किये, माना यह जाता है की इसकी रिपोर्ट जुयाल और रतूड़ी के खिलाफ थी पर यह रिपोर्ट दबा दी गई। जुयाल ने अपनी साख बचाने के लिए और दबाव बनाने के लिए चंदोला और इंडियन स्टेट रेफॉर्म्स के संपादक अनंत नारायण पर मानहानि का मुकदमा चलाया। जिसमें दोनों को एक-एक वर्ष की सजा दी गई। तारादत्त गेरोला पर भी मुकदमा चला पर असफल हुआ। लगातार दबाव और जन विद्रोह के फलस्वरूप 01 जुलाई 1939 को जुयाल को पद से हटा दिया गया। उसको देश निकाला दिया गया साथ ही साथ कालसी के ऊपर प्रदेश में प्रवेश प्रतिबंधित कर दिया गया। इस घटना से राज्य की साख समाप्त हो गई और राज्य में नए आंदोलन की परिस्थितियाँ भी बन गई। यद्यपि इस कांड में 100 से अधिक लोग मारे गए पर प्रामाणिक रूप में 9 शहीदों का विवरण प्राप्त होता है तुलसी-पड़ारी जौनपुर, किसिया-पांडे खनेटी, मोर सिंह-बंडोगी दशगी, नारायण सिंह-कामदा दशगी, भागीरथ-कामदा दशगी, हरीराम-कुमाड़ी, मूंगरसत्ती शहीद स्थल पर ही शहीद हो गए थे। इसके अतिरिक्त 7 लोग जेल में शहीद हुए। लंबी लड़ाई के बाद महाराज नरेंद्रशाह ने रवाईं चार्टर की सभी 12 मांग जो की पद्म दत्त के नए कर प्रणाली से उत्पन्न थे को वापस ले लिया।

संदर्भ

भेंट वार्ता

1. जोत सिंह रवाँलटा - कनसेरू।
2. महावीर रवाँलटा - महरगाव ।
3. वासवानंद सेमवाल - गंगटाडी।
4. बुद्धि सिंह रावत - बड़कोट।
5. सकल चंद - नौगांव।
6. राधेश्याम बीजलवाण - पौरा।
7. प्रह्लाद सिंह रावत - खलाड़ी।

समाचारपत्र

1. नीलांबर दत्त जगुड़ी, मदनमोहन बिजल्वाण : वनों की सामंती लुटपाट के खिलाफ विद्रोह के कुछ अनखुले रहस्य, हिमालयन दर्पण 30 मई 1986
2. महावीर रवाँलटा, मसूरी टाइम्स, 28 मई 1995
3. लैंड सेंटलमेंट रिपोर्ट उत्तरकाशी (1930)

ग्रंथ

1. डबराल, शिव प्रसाद : टिहरी गढ़वाल राज्य का इतिहास-02, बीरगाथा प्रकाशन दुगड्डा गढ़वाल (विक्रम सम्वत 2032), पृष्ठ 310-311
2. पाठक शेखर : टिहरी रियासत में जन आंदोलन की रूपरेखा, उत्तराखंड में कुली बेगार प्रथा, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली (1987), पृष्ठ 268
3. स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक : सूचना विभाग उत्तरप्रदेश लखनऊ (1967) भूमिका।
4. रावत, राजेन्द्र सिंह - तिलाड़ी कांड का मौखिक इतिहास, पुस्तक - उत्तराखंड का जन इतिहास लोक संस्कृति एवं समाज, संपादक डॉ. विजय बहुगुणा, समय साक्ष्य, देहरादून (2017), पृष्ठ 420-430

5. नौटियाल, विकास – आधुनिक एवं समकालीन उत्तराखंड हिमालय, विन्सर प्रकाशन, देहरादून (2011), पृष्ठ 241–243
6. शाह, प्रमोद : उत्तराखंड के इतिहास में एतिहासिक शर्म का दिन : काफल ट्री (वेब मेगजीन) 30 मई 2018
7. शाह, प्रमोद : तिलाड़ी काण्ड की पृष्ठभूमि तैयार करने वाले जन आन्दोलन का एक विस्तृत अध्ययन : काफल ट्री (वेब मेगजीन), दिनांक 23 मई 2020
8. लोहानी, ग्रीश : रवाई लोटे के छाप की मुहर और तिलाड़ी काण्ड, काफल ट्री (वेब मेगजीन) दिनांक 30 मई 2019
9. लोहानी, ग्रीश : तिलाड़ी गोलीकांड के बाद क्या हुआ था उत्तराखंड के जनरल डायर चक्रधर जुयाल का, काफल ट्री (वेब मेगजीन) दिनांक 30 मई 2019
10. मैखुरी, इन्द्रेश : तिलाड़ी काण्ड के अट्ठासी बरस, काफल ट्री (वेब मेगजीन), 18 अगस्त 2018)

❑❑